Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हिन्दी शिक्षण

TEACHING OF HINDI

बी० एल० शर्मा
बी० एम० सक्सैना

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

OUR OTHER PUBLICATIONS

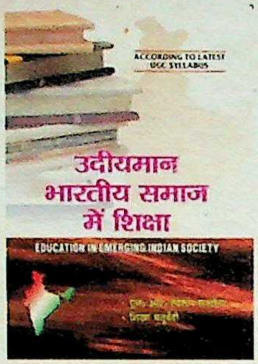

उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षा
एन0आर0 स्वरूप सक्सेना
शिखा चतुर्वेदी

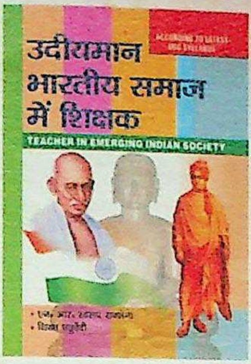

उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक
एन0आर0 स्वरूप सक्सेना
शिखा चतुर्वेदी

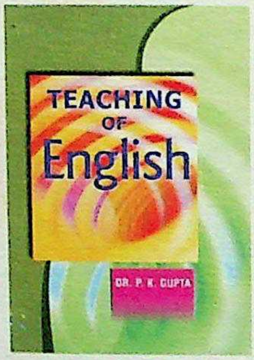

Teaching of English
Dr. P. K. Gupta

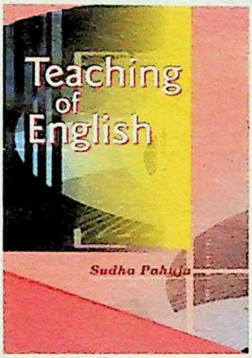

Teaching of English
Sudha Pahuja

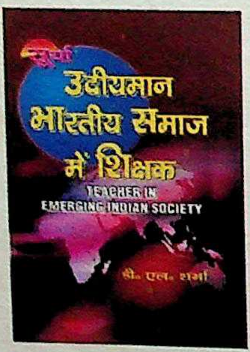

उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक
डी0 एल0 शर्मा

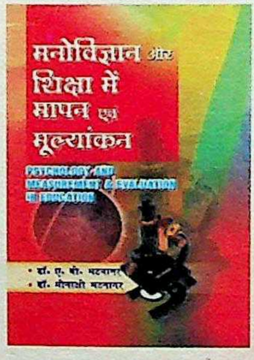

मनोविज्ञान और शिक्षा के
मापन एवं मूल्यांकन
डॉ0 ए0 बी0 भटनागर, मीनाक्षी भटनागर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हिन्दी शिक्षण

(TEACHING OF HINDI)

लेखक

बी० एल० शर्मा

भूतपूर्व प्रभारी

अध्ययन केन्द्र

चौ० चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ

एवं

बी० एम० सक्सेना

G.M. College of Education
Raipur, Bantalab
Jammu.
Acc No....8649....
Dated...23/9/2009

एकमात्र वितरक

आर. लाल बुक डिपो

(AN ISO 9001-2008 Certified Company)

निकट राजकीय इण्टर कॉलेज, बेगम ब्रिज रोड, मेरठ-250001

8649

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

प्रकाशक : Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विनय रखेजा

C/o आर॰ लाल बुक डिपो

(AN ISO 9001-2008 Certified Company)

निकट गवर्नमेन्ट कॉलिज, बेगम ब्रिज रोड,

मेरठ–250001 ।

फोन नं॰ : 0121-2643623, 2666235

फेक्स नं॰ : 0121-4006142

Website : www.rlall.in

E-mail : info@rlal.in, rlall_meerut@yahoo.com

Order Booking No. 0121-3243685

ISBN 978-93-81466-27-8

मूल्य : 75/-

लेजर टाइपिंग तथा सैटिंग

शिप्रा . कम्प्यूटर्स

पुराना के-467, शास्त्रीनगर, मेरठ

मुद्रक :

राज प्रिन्टर्स

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विषय सूची

अध्याय — पृष्ठ सं०

1. भाषा शिक्षण — **1–9**
1. भाषा का अर्थ
2. भाषा की परिभाषा
3. भाषा की प्रकृति एवं विशेषताएँ
4. मनुष्य के व्यक्तिगत व सामाजिक जीवन में भाषा का महत्व
5. भाषा प्रयोग
6. भाषा शिक्षण के सामान्य सिद्धान्त

2. साहित्य शिक्षण — **10–14**
1. भाषा और साहित्य में सम्बन्ध
2. साहित्य के उद्देश्य
3. साहित्य शिक्षण के प्रमुख सिद्धान्त

3. मातृभाषा-शिक्षण का महत्व एवं स्थान — **15–19**
1. मातृभाषा का अर्थ
2. मातृभाषा एवं उसका महत्व
3. मातृभाषा का पाठ्यक्रम में स्थान

4. मातृभाषा-शिक्षण का महत्व एवं स्थान — **20–25**
1. मातृभाषा शिक्षण के सामान्य सिद्धान्त

5. मातृभाषा शिक्षण के उद्देश्य — **26–31**
1. मातृभाषा शिक्षण के उद्देश्य
2. हिन्दी भाषा (मातृभाषा) शिक्षण के सामान्य उद्देश्य
3. प्राथमिक स्तर पर हिन्दी भाषा (मातृभाषा) शिक्षण के उद्देश्य
4. माध्यमिक स्तर पर हिन्दी भाषा (मातृभाषा) शिक्षण के उद्देश्य
5. उच्चतर माध्यमिक स्तर पर हिन्दी भाषा (मातृभाषा) शिक्षण के उद्देश्य
6. उद्देश्यों की प्राप्ति के माध्यम

6. मातृभाषा का अन्य विषयों से समन्वय — **32–33**
1. समन्वय का अर्थ
2. समन्वय के विभिन्न रूप
3. मातृभाषा का विज्ञान से सम्बन्ध
4. मातृभाषा का इतिहास से समन्वय
5. मातृभाषा का भूगोल से समन्वय

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

6. मातृभाषा का कला से समन्वय
7. मातृभाषा का अन्य विषयों से समन्वय

7. भाषा-शिक्षण की विधियाँ 34–36
1. हिन्दी भाषा (मातृभाषा) शिक्षण की विधियाँ
2. (i) प्रत्यक्ष विधि (ii) परोक्ष विधि
3. गठन विधि
4. वेस्ट विधि या नवीन विधि

8. हिन्दी भाषा (मातृभाषा) पाठ्यक्रम-निर्माण 37–42
1. पाठ्यक्रम का अर्थ
2. हिन्दी भाषा पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धान्त
3. पाठ्यक्रम निर्माण के सामान्य सिद्धान्त
4. पाठ्यक्रम की आवश्यकता एवं महत्व

9. हिन्दी भाषा पाठ्य-पुस्तक 43–48
1. पाठ्य-पुस्तक का अर्थ
2. पाठ्य-पुस्तकों की उपयोगिता
3. हिन्दी भाषा की पाठ्य-पुस्तक का चयन
4. हिन्दी भाषा की पाठ्य-पुस्तक के गुण
5. हिन्दी भाषा पाठ्य-पुस्तकों के दोष
6. हिन्दी भाषा पाठ्य-पुस्तकों से हानियाँ

10. वाचन शिक्षण 49–60
1. वाचन का अर्थ
2. वाचन के उद्देश्य
3. वाचन का महत्व
4. वाचन शिक्षण का क्रम
5. वाचन शिक्षण की विधियाँ
6. संश्लेषण विधि
7. विश्लेषण विधि
8. वाचन के प्रकार
9. सस्वर वाचन करते समय ध्यान रखने योग्य बातें
10. सस्वर वाचन के उद्देश्य
11. उत्तम सरवर वाचन के गुण
12. सस्वर वाचन के प्रकार
13. मौन वाचन का अर्थ
14. मौन वाचन करने के उद्देश्य

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

15. मौन वाचन का महत्व
16. मौन वाचन के क्षेत्र
17. मौन वाचन के प्रकार
18. मौन वाचन के लाभ
19. मौन वाचन से होने वाली हानियाँ
20. मौन वाचन का संचालन

11. लेखन शिक्षण 61–66
1. लखन शिक्षण के उद्देश्य
2. लेखन शिक्षण का महत्व
3. लेखन शिक्षण की विधियाँ
4. सुन्दर तथा शीघ्र लिखने के उपाय
5. लेखन शिक्षण के लिये आवश्यक सावधानियाँ

12. कविता तथा उसका शिक्षण 67–78
1. पद्य अथवा कविता का अर्थ
2. कविता शिक्षण की विशेषताएँ
3. विभिन् स्तरों पर कविता शिक्षण के उद्देश्य
4. काव्य शिक्षण के अन्य उद्देश्य
5. काव्य शिक्षण के विशिष्ट उद्देश्य
6. कविता शिक्षण की प्रणालियाँ
7. कविता शिक्षण के सोपान
8. गद्य एवं पद्य में अन्तर
9. पद्य के स्वरूप
10. काव्य शिक्षण क्रे उद्देश्य
11. कविता तथा गद्य की शिक्षण विधियों में अन्तर
12. काव्य में रुचि उत्पन्न के साधन

13. गद्य शिक्षण 79–83
1. गद्य शिक्षण के सामान्य उद्देश्य
2. मुख्य उद्देश्य
3. गद्य शिक्षण का महत्व
4. गद्य शिक्षण की प्रणाली

14. व्याकरण शिक्षण 84–89
1. व्याकरण शिक्षण का अर्थ
2. व्याकरण शिक्षण के उद्देश्य
3. व्याकरण शिक्षण का महत्व
CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

4. व्याकरण शिक्षण की उपयोगिता
5. व्याकरण शिक्षण को रोचक तथा सरल बनाने के उपाय
6. व्याकरण की शिक्षा किस स्तर पर प्रारम्भ हो
7. व्याकरण शिक्षण की प्रणालियाँ

15. रचना शिक्षण 90–93
1. रचना शिक्षण का अर्थ
2. रचना शिक्षण के उद्देश्य
3. रचना शिक्षण की प्रणालियाँ
4. रचना शिक्षण का महत्व
5. रचना शिक्षण से सम्बन्धित ध्यान योग्य बातें
6. रचना सम्बन्धी आवश्यक बातें

16. नाटक शिक्षण 94–98
1. नाटक शिक्षण का अर्थ
2. नाटक की परिभाषा
3. नाटक शिक्षण के उद्देश्य
4. नाटक शिक्षण के अन्य उद्देश्य
5. नाटक शिक्षण का महत्व
6. नाटक शिक्षण की प्रणालियाँ
7. नाटक शिक्षण के सोपान

17. कहानी शिक्षण 99–102
1. कहानी का अर्थ
2. कहानी के उद्देश्य
3. कहानी का महत्व
4. कहानी कहना एक कला

18. मौखिक अभिव्यक्ति 103–105
1. मौखिक अभिव्यक्ति
2. मौखिक अभिव्यक्ति के उद्देश्य
3. मौखिक अभिव्यक्ति का महत्व
4. मौखिक अभिव्यक्ति के विकास के लिये साधन

19. द्रुत पाठ (व्यापक अध्ययन) 106–107
1. द्रुत पाठ के उद्देश्य
2. द्रुत पाठ के सोपान
3. द्रुत पाठ तथा गद्य पाठ में अन्तर
4. द्रुत पाठ और गद्य पाठ के शिक्षण में अन्तर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

20. खेल द्वारा भाषा शिक्षण अथवा हिन्दी भाषा शिक्षण में खेल विधि 108–111

1. खेल की परिभाषा
2. कार्य और खेल में अन्तर
3. खएल तथा शिक्षण
4. खेल के सिद्धान्त
5. खेल विधि एक अध्यापक
6. खेल विधि के लाभ

21. भाषा शिक्षण में सहायक सामग्री 112–117

1. सहायक सामग्री का अर्थ
2. सहायक सामग्री की आवश्यकता
3. सहायक सामग्री का महत्व
4. हिन्दी भाषा शिक्षण में प्रयुक्त होने वाली सहायक सामग्री
5. मौखिक साधन
6. दृश्य-श्रव्य साधन

22. हिन्दी में मूल्यांकन 118–127

1. मूल्यांकन का अर्थ एवं परिभाषायें
2. मूल्यांकन तथा मापन में अंतर
3. मूल्यांकन के उद्देश्य
4. मूल्यांकन का महत्व
5. मूल्यांकन की विशेषतायें
6. मूल्यांकन की प्रविधियाँ
7. निबन्धात्मक परीक्षा के गुण
8. निबन्धात्मक परीक्षा के दोष
9. निबन्धात्मक परीक्षा प्रणाली में सुधार के उपाय
10. वस्तुनिष्ठ परीक्षा का अर्थ
11. वस्तुनिष्ठ परीक्षा के प्रकार
12. वस्तुनिष्ठ परीक्षा के गुण
13. वस्तुनिष्ठ परीक्षा के गुण
14. वस्तुनिष्ठ
परीक्षा के दोष

परिशिष्ट 128–144

1. पाठ योजना
2. पाठ योजना तथा उसकी उपोयगिता
3. पाठ योजना की आवश्यकता

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

4. पाठ योजना का महत्व
5. पाठ योजना की विशेषतायें
6. पाठ योजना का नमूना
7. पाठ योजना (1) हिन्दी गद्य शिक्षण
8. पाठ योजना (2) हिन्दी पद्य शिक्षण
9. पाठ योजना (3) व्याकरण शिक्षण
10. पाठ योजना (4) हिन्दी निबन्ध शिक्षण

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

1

भाषा शिक्षण
(TEACHING OF HINDI)

भाषा का अर्थ

मनुष्य सामाजिक प्राणी है और समाज में रहने के कारण उसे सदैव विचार विनिमय ना पड़ता है। इस विचार-विनिमय का सर्वोत्तम एवं माननीय साधन भाषा है। इस प्रकार स वार्तालाप या लेख के माध्यम से अपने विचारों को प्रकट करते हैं, वही भाषा है। भाषा दो रूप हैं— (1) मौखिक भाषा (2) लिखित भाषा।

प्रयोक्ता अपने विचारों को प्रकट करने के लिए कुछ शब्दों का आश्रय लेता है और ये द किन्हीं सार्थक प्रतीकों से निर्मित होते हैं। इसी प्रकार लेखन के अन्तर्गत की सार्थक नि प्रतीक चिन्होंन का आश्रय लेते हैं। अतएव भाषा सार्थक ध्वनि प्रतीकों की वह वस्था है जिसके माध्यम से इसके प्रयोक्ता या श्रोता परस्पर विचारों का आदान-प्रदान करते । विचारों का यह आदान-प्रदान मौखिक या लिखित दोनों रूपों में हो सकता है।

भाषा की परिभाषा

भाषा के सम्बन्ध में कुछ विद्वानों की परिभाषाएँ निम्न प्रकार हैं—

रामचन्द्र वर्मा के अनुसार— **"मुख से उच्चारित होने वाले शब्दों और वाक्यों आदि का समूह जिसके द्वारा मन की बात बतायी जाती है, भाषा कहलाती है।"**

स्वीट के अनुसार— "ध्वन्यात्मक शब्दों के द्वारा विचारों को प्रकट करना ही भाषा है।"

प्लेटो के अनुसार— "विचार आत्मा की एक मूक या अथवान्यात्मक बातचीत है, पर जब ध्वन्यात्मक होकर होठों पर प्रकट होती है तो उसे भाषा की संज्ञा देते हैं।"

भोलानाथ के अनुसार— "भाषा उच्चारण-अवयवों से उच्चारित स्वेच्छाचारी rbitrary) ध्वनि प्रतीकों की वह अवस्था है जिसके द्वारा एक समाज के लोग आपस में ों और विचारों का आदान-प्रदान करते हैं।"

वान्द्रिरा के अनुसार— "भाषा एक प्रकार का चिन्ह है, चिन्ह से आशय उन प्रतीकों से जिनके द्वारा मानव अपना विचार दूसरों पर प्रकट करते हैं। ये प्रतीक कई प्रकार के होते जैसे— स्पर्श ग्राह्य, नेत्रग्राह्य और श्रोतग्राह्य।"

भाषा की प्रकृति एवं विशेषताएँ

1. भाषा पैतृक सम्पत्ति नहीं है— कुछ विद्वानों के मतानुसार पिता की भाषा पुत्र को ती है अर्थात् जिस पैतृक सम्पत्ति पर पुत्र का अधिकार होता है उसी प्रकार भाषा भी उसे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

धरोहर के रूप में मिल जाती है, किन्तु यह मत सदैव सत्य नहीं है। यदि किसी भारतीय बच्चे को जन्म के कुछ ही दिन पश्चात् पालन-पोषण के लिये इंग्लैड भेज दिया जाये तो वह वहाँ पर भारतीय भाषा नहीं बोल सकेगा, वहाँ उसकी मात्र भाषा अंग्रेजी ही होगी। यदि भाषा पैतृक सम्पत्ति रही होती तो वह बालक भारतीय भाषा ही बोलता।

2. भाषा परम्परागत है, व्यक्ति उसका अर्जन कर सकता है, उसे उत्पन्न नहीं कर सकता— भाषा परम्परा से चली आ रही है, व्यक्ति परम्परा तथा समाज से उसका अर्जन करता है। एक व्यक्ति उसे उत्पन्न नहीं कर सकता, किन्तु वह उसमें परिवर्तन आदि कर सकता है। यदि भाषा का कोई जनक तथा जननी है तो वह, परम्परा तथा समाज है।

3. भाषा का कोई अन्तिम स्वरूप नहीं है— भाषा कभी भी पूर्ण नहीं होती, अर्थात् य कभी नहीं कहा जा सकता कि अमुक भाषा का अन्तिम रूप अमुक है। वस्तुतः भाषा हमारा अभिप्रायः जीवित भाषा से होता है। मृत भाषा का अन्तिम रूप तो अवश्य अन्ति होता है किन्तु जीवित भाषा में यह बात नहीं है। भाषा परिवर्तनशील विकास की ए प्रक्रिया है।

4. भाषा संयोगावस्था से वियोगावस्था की ओर जाती है— पहले व्यक्तियों का विच था कि भाषा वियोगावस्था से संयोगावस्था की ओर जाती है। कुछ व्यक्तियों का विचार कि भाषा दोनों परिस्थितियों से होकर गुजरती है, परन्तु अब दोनों ही विचारों में कोई तथ नहीं रह गया है। भाषा वस्तुतः संयोगावस्था से वियोगावस्था की ओर जाती है। वियोग तात्पर्य है— विघटित होना जैसे 'मोहनः खादति' से 'मोहन खाता है' का हो जाना। अ यह कहा जा सकता है कि संस्कृत से हिन्दी वियोगात्मक हो गयी है।

5. भाषा आद्यन्त सामाजिक वस्तु है— भाषा का अर्जन समाज के सम्पर्क से ही सकता है। वास्तविकता यही है कि भाषा का जन्म समाज में होता है, उसका विकास समा में होता है, तथा उसका प्रयोग भी समाज में होता है, क्योंकि मनुष्य एक सामाजिक प्रा है। इसीलिये उसे विचार-विनिमय के लिये भाषा की आवश्यकता पड़ती है।

6. भाषा स्थूलता से सूक्ष्मता और अप्रौढ़ता से प्रौढ़ता की ओर जाती है— भाषा शु से स्थूल होती है परन्तु धीरे-धीरे वह सूक्ष्म भावों तथा विचारों के आदान-प्रदान के लि सूक्ष्म तथा अप्रौढ़ से प्रौढ़ होती जाती है, परन्तु ये सभी बातें प्रयोग पर भी निर्भर करती वर्तमान समय की हिन्दी, प्राचीन समय की हिन्दी की तुलना में सूक्ष्म तथा प्रौढ़ है, पर संस्कृत की तुलना में उसे सूक्ष्म तथा प्रौढ़ नहीं कहा जा सकता क्योंकि हिन्दी अभी तक अनेक क्षेत्रों में प्रयुक्त होकर विकसित नही हुई जिनमें संस्कृत आज से हजारों वर्ष पहले चुकी है।

7. भाषा अर्जित सम्पत्ति है— मनुष्य भाषा का अर्जन अपने चारों ओर के वातावरण करता है। इस तथ्य की पुष्टि कई उदाहरणों से की जा सकती है जैसे— यदि एक भारत बालक का अंग्रेजी के वातावरण में पालन-पोषण किया जाये तो वह अग्रेजी ही सीखता है अतः स्पष्टतः भाषा अर्जित सम्पत्ति है न कि पैतृक सम्पत्ति।

8. भाषा का अर्जन अनुकरण द्वारा होता है— भाषा का अर्जन अनुकरण द्वारा हो है। बच्चे के सामने माँ रोटी को 'रोटी' कहती है, वह उसे सुनाता है तथा धीरे-धीरे स्वयं कहने का प्रयत्न करता है। वस्तुतः अनुकरण मनुष्य का सबसे बड़ा गुण है। हम भा को अनुकरण के सहारे ही सीखते हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

9. भाषा कठिनता से सरलता की ओर अग्रसर होती है— सत्यता यही है कि मनुष्य न्यूनतम श्रम में महत्तम कार्य करना चाहता है। मनुष्य की यही प्रवृत्ति भाषा के लिये भी उत्तरदायी है। जैसे— टेलीविजन को केवल टी॰वी॰ कहकर ही काम चला लिया जाता है। वास्तविक शब्द कष्ट साध्य होने के कारण सिर्फ टी॰वी॰ कहकर काम चला लिया गया। व्याकरण में भी यही नियम लागू होता है जिसके अन्तर्गत आरम्भ में तो अनेक रूपों तथा अपवादों की अधिकता थी परन्तु धीरे-धीरे आधुनिक भाषाओं तक आते-जाते नियम बनकर रूप कम हो गये तथा अपवादों की अधिकता भी कम हो गयी।

10. भाषा चिर परिवर्तनशील है— वस्तुतः भाषा के मौखिक रूप को भाषा कहा जाता है। लिखित रूप तो उसके पीछे-पीछे ही चलता है। मौखिक भाषा को व्यक्ति अनुकरण द्वारा सीखता है परन्तु अनुसरण हमेशा अपूर्ण होता है। इसी कारण भाषा में सदैव परिवर्तन होते रहते हैं। अनुकरण पर शारीरिक तथा मानसिक विभिन्नता का प्रभाव पड़ता है, जिनकी सूक्ष्म विभिन्नता भी भाषा में परिवर्तन का कारण बन जाती है।

भाषा के बिना मनुष्य पशु के समान है। भाषा के कारण ही मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। भाषा का आविष्कार एवं विकास वस्तुतः मनुष्य का विकास है। मनुष्य के व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन में भाषा के महत्त्व को निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. ज्ञान प्राप्ति का प्रमुख साधन— भाषा के माध्यम से ही एक पीढ़ी समस्त संचित ज्ञान सामाजिक विरासत के रूप में दूसरी पीढ़ी को सौंपती है। भाषा के माध्यम से ही हम प्राचीन और नवीन, आत्म और विश्व पहचानने की सामर्थ्य प्राप्त करते हैं। भाषा के द्वारा ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास होता है।

2. विचार-विनिमय का सरलतम एवं सर्वोत्कृष्ट साधन— बालक जन्म के कुछ ही दिनों पश्चात् परिवार में रहकर भाषा सीखने लगता है। यह भाषा वह स्वाभाविक एवं अनुकरण के द्वारा सीखता है। इसे सिखने के लिये किसी अध्यापक की आवश्यक नहीं होती। यह विचार विनिमय का सर्वोत्तम साधन है क्योंकि भाषा संकेतों एवं चिन्हों से श्रेष्ठ है।

3. सामाजिक जीवन में प्रगति का साधन— भाषा समाज के सदस्यों को एक सूत्र में बाँधती है। भाषा के माध्यम से ही समाज प्रगति के पथ पर आगे बढ़ता है। भाषा जितनी विकसित होगी, समाज उतना ही विकासशील होगा। भाषा के माध्यम से समाज के नैतिक व्यापार ही सम्पन्न नहीं होते अपितु उसकी संस्कृति भी अक्षुण रहती है। वह भाषा ही है जिसके आधार पर विभिन्न क्षेत्रों, विभिन्न जातियों एवं धर्मों के लोग मिल-जुलकर रहते हैं। वस्तुतः भाषा समाज को जोड़ने में सहायक है। अतएव यह कहा जा सकता है कि भाषा सामाजिक जीवन में प्रगति का साधन है।

4. व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक— भाषा व्यक्तित्व के विकास का महत्वपूर्ण साधन है। व्यक्ति अपने आन्तरिक भावों भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त करता है तथा इसी अभिव्यक्ति के साथ अन्दर छिपी अनन्त शक्ति अभिव्यक्त होती है। अपने विचारों एवं भावों को सफलतापूर्वक अभिव्यक्त कर सकना तथा अनेक भाषायें बोल सकना विकसित व्यक्तित्व के ही लक्षण हैं। अतएव् किसी व्यक्ति की अभिव्यक्ति जितनी स्पष्ट होगी उसके व्यक्तित्व का विकास भी उतने ही प्रभावशाली ढंग से होगा।

5. भाषा राष्ट्र की एकता का आधार— समस्त राष्ट्र प्रशासन का संचालन भाषा के माध्यम में होता है। भाषा राष्ट्रीय एकता का मूलाधार है। इसके साथ ही कोई अन्य भाषा भी विभिन्न राष्ट्रों के बीच विचार-विनिमय, व्यापार एवं सांस्कृतिक आदान-प्रदान का साधन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बनती है। ऐसी भाषाओं के अभाव में विभिन्न राष्ट्रों के विद्वानों की विचार-धारायें राष्ट्र विशेष तक ही सीमित रह जातीं।

6. चिन्तन एवं मनन की स्रोत— हम भाषा के द्वारा ही विचार, चिन्तन एवं मनन करते हैं। मानव अपने विचारों की ऊँचाइयों के कारण ही सभी प्राणियों में शिरोमणि समझा जाता है। शुकसारिकादि पक्षी केवल थोड़े से समझने योग्य विचार व्यक्त कर सकते हैं। इसी कारण अन्य नभचारियों की अपेक्षा आदृत समझे जाते हैं। विचारों की ऊँचाइयों के कारण ही आज मानव विभिन्न ग्रहों की जानकारी लेने में सक्षम हैं। विश्वशान्ति एवं मानव एकता के प्रयास निरन्तर प्रयत्नशील हैं। अतएव यह स्पष्ट हो [illegible] है कि विचार चिंतन और मनन शक्तियों का विकास भाषा पर ही आधारित होता है।

7. शिक्षा की प्रगति की आधारशिला— भाषा, शिक्षा का आधार है। सभी ज्ञान-विज्ञान के ग्रन्थ भाषा में ही लिपिबद्ध होते हैं। अगर भाषा न होती तो भाषा के स्वरूप का भी निर्माण नहीं होता तथा यदि शिक्षा की व्यवस्था न होती तो मनुष्य, असभ्य, हिंसक तथा जंगली रहा होगा। भाषा के अभाव में पूर्वजों द्वारा उपलब्ध ज्ञान हमें कभी प्राप्त न होता।

8. साहित्य एवं कला, संस्कृति एवं सभ्यता का विकास— साहित्य भाषा में लिखा जाता है। भाषा का विकास उसके पल्लवित साहित्य के दर्पण में देखा जाता है। इसी तरह से कला के स्वर भी भाषा में मुखरित होते हैं। जब वायुमण्डल में स्वर गूँजते हैं तथा श्रोता गद्‌गद् हो जाते हैं तो यह सारा चमत्कार भाषा का ही होता है। भाषा के द्वारा ही हम अपने समाज के आचार-व्यवहार, तथा अपनी विशिष्ट जीवन शैली से अवगत होते हैं और भाषा के द्वारा ही हम नवीन आविष्कारों के आधार पर एक नवीन सृष्टि का सृजन करते हैं तथा अपनी भाषा को उन्नत बनाते हैं। **मर्टो ए० पाई** के अनुसार, "भाषा की कहानी वास्तव में सभ्यता की कहानी है।"

बालक जन्म के पश्चात् परिवार के सदस्यों में रहकर भाषा के तत्वों को ग्रहण करना प्रारम्भ करता है और अनुकरण द्वारा शनैः-शनैः उसे बोलने लगता है। किन्तु यह सत्य है कि भाषा का सही और स्तरीय प्रयोग केवल सुनने और बोलने से ही नहीं आता। इसके लिये उसे बहुत ही बातों को ध्यान में रखना होगा, तब उसे भाषा के प्रयोग में कुशलता एवं पूर्णता की प्राप्ति होगी। अब यहाँ भाषा एक कौशल है, पर विचार विमर्श करेंगे।

1. भाषा एक कला है— बोर्ड ऑफ लन्दन द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ में भाषा के विषय में कहा गया है कि **'भाषा एक कौशल, एक कला, एक भाव और एक क्रिया है।'** वास्तव में अन्य कलाओं की भाँति भाषा का भी पूर्णज्ञान प्राप्त करना एक कला है जिस प्रकार अन्य कलाओं को सीखने में अभ्यास की आवश्यकता होती है उसी प्रकार भाषा में कुशलता अर्जित करने के लिये भी अभ्यास करना आवश्यक होता है। शुद्ध उच्चारण, स्वच्छ व शुद्ध लेखन, वाचन में सन्तुलित गति, अक्षरों की बनावट, प्रभाव पूर्ण स्वर में आरोह-अवरोह व्याकरण शब्दों का बाहुल्य, वाक्य संरचना आदि बातों का ज्ञान तथा भाषा सीखने के लिये आवश्यक होता है।

2. भाषा निरन्तर अभ्यास एवं व्यवहार से आती है— भाषा को सीखना निरन्तर अभ्यास एवं व्यवहार पर निर्भर है। एक श्रेष्ठ गायक बनने के लिये विभिन्न राग-रागनियों का निरन्तर अभ्यास करना होगा। कार चलाने की दक्षता प्राप्त करने के लिये स्वयं कार चलाने का अभ्यास करना होगा। एक अच्छा तैराक अथवा गोताखोर बनने के लिये किसी [illegible]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE 2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

योग्यता प्राप्त करने के लिये भाषा पढ़ने, बोलने एवं लिखने आदि का निरन्तर अभ्यास करना आवश्यक है।

भाषा के शिक्षक का यह महत्वपूर्ण कर्तव्य है कि वह छात्रों को पढ़ने, बोलने व लिखने आदि में प्रवीण बनाये। उन्हें वास्तव में भाषा का कर्णाधार बनाये तथा उन्हें गलत प्रयोगों एवं अभ्यास से बचाये क्योंकि लेखन या उच्चारण में त्रुटिपूर्ण आदत पड़ जाने पर फिर उनका छोड़ना कठिन होता है। इस सम्बन्ध में **भोलानाथ तिवारी** का कथन है, **"अभ्यास के लिये की जाने वाली बातचीत भी यथासाध्य नियन्त्रित रखी जानी चाहिये तकि जो ध्वनियाँ, रूप, वाक्य आदि स्पष्ट हो चुके हों, वे ही आयें, ऐसा न हो कि कोई नई ध्वनि आदि स्पष्टीकरण के बहुत पहले प्रयोग में आ जाये। इससे हानि यह होती है कि थोड़ा भी दुरभ्यास हो जाने के पश्चात् उसे छोड़ना और फिर से शुद्ध रूप ग्रहण करना बहुत कठिन हो जाता है।"**

3. भाषा सीखने के प्रति अभिरुचि— किसी भी भाषा को सीखने की दृष्टि से यह आवश्यक है कि छात्रों में उस भाषा को सीखने की रुचि हो। रुचि उत्पन्न करने के लिये तीन बातों का होना आवश्यक है—

1. अनुकूल एवं प्रेरणाप्रद वातावरण के निर्माण।

2. छात्रों में उस भाषा को सीखने की आवश्यकता की अनुभूति।

3. शिक्षक भाषा-शिक्षण में भाषा को सीखने के प्रति जितनी अधिक अभिरुचि छात्रों में जागृत कर सकेगा वे उतने ही कम समय में भाषा का पूर्णज्ञान प्राप्त करने में समर्थ हो सकेंगे। एक भाषा के विद्वान के शब्दों में, **"भाषा सीखने का सम्बन्ध मानव प्रेरणाओं से है जिसका नियन्त्रण मानव-इच्छा करती है, अतः जितनी तीव्र प्रेरणा व इच्छा होगी, सीखने की गति भी उतनी ही तीव्र होगी।"**

4. चारों भाषा कौशलों में दक्ष बनना— छात्रों को भाषा में प्रवीण एवं सिद्ध बनाने के लिये यह आवश्यक है कि चारों क्षमताओं— पढ़ना, बोलना, लिखना तथा सुनना एवं समझना में दक्षता प्राप्त करें। भाषा-कौशल मात्र एक या दो क्षमताओं में निपुणता प्राप्त कर लेने तक सीमित नहीं है अपितु इसमें चारों क्षमताओं का सम्मिलित महत्व है। **एम०के० देशपाण्डे** ने अपने एक लेख 'भाषा सक्षम की नई तकनीक' में लिखा है, **"भाषा-शिक्षा का सम्बन्ध केवल ज्ञान प्रदान करना या सूचनायें प्रदान करना मात्र नहीं बल्कि भाषा सीखने वाले को इन चारों विविध कौशलों में दक्ष बनाना है— जैसे समझना, बोलना, पढ़ना और लिखना।"** **राबर्ट लाडो** ने अपनी पुस्तक **'भाषा-शिक्षण'** में लिखा है, **"स्पष्ट रूप से रुचिपूर्वक सस्वर वाचन करना एक कलापूर्ण कौशल ही है और यह कौशल सततान्यास का ही परिणाम होता है—लिखने की व्यवस्था का प्रयोग सद्अन्यास व आदतों का परिणाम है—समस्त भाषा-शिक्षण उच्चारण पर आश्रित है और भाषा की उच्चारण व्यवस्था भाषा विषयक आदक या आदतों पर। उच्चारण बोलने व सुनने में ध्वनि व्यवस्था का प्रयोग है। अतः मातृभाषा को सीखना नई आदतों के निर्माण व दृढ़ीकरण पर आश्रित है। ये नई आदतें मातृभाषा सम्बन्धी चारों क्षमताओं में विद्यार्थी को जब दक्ष बना दें, तब समझना चाहिये कि अब भाषा विद्यार्थी ने सीख ली।"**

5. भाषा सीखना मात्र व्याकरण सीखना नहीं है— भाषा सीखने की दृष्टि से पहले व्याकरण शिक्षण पर अधिक बल दिया जाता था परन्तु ऐसा करने में एक तो छात्र अध्ययन में अरुचि प्रदर्शित करते हैं, दूसरे यह आवश्यक नहीं कि किसी भाषा का व्याकरण सीखने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मात्र से छात्र उस भाषा को बोलने और लिखने में निपुणता प्राप्त कर लेंगे। अतएव वर्तमान समय में भाषा शिक्षण का मुख्य उद्देश्य उनका व्याकरण सीखना नहीं अपितु छात्रों को भाषा बोलने, पढ़ने, लिखने तथा सुनने व समझने में पारंगत बनाना है।

6. भाषा पर पूर्णाधिकार प्राप्त करना— छात्र स्कूलों में वैसे तो भाषा का औपचारिक रूप से ज्ञान प्राप्त करते ही हैं, परन्तु भाषा सीखने में प्रमुखतः छात्रों की अनुकरण की प्रवृत्ति ही काम आती है। भाषा शिक्षण में शिक्षक के पढ़ने, बोलने व लिखने आदि का प्रभाव छात्रों पर प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में पड़ता है। अतएव शिक्षक को पढ़ते, बोलते एवं लिखते समय विशेष रूप से सतर्क रहना चाहिए। छात्रों को औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनों रूपों में भाषा का इस प्रकार शिक्षण दिया जाना चाहिए जिससे उन्हें पढ़ते, लिखते एवं बोलते समय शब्दों के प्रयोग में बहुत सोचना न पड़े, शब्द अनायास ही वाक्यों में यथास्थान आते चले जायें, इसके लिये उन्हें कोई प्रयास न करना पड़े। इस स्थिति में छात्रों का भाषा का पूर्ण अधिकार माना जायेगा। **राबर्ट लाडो** के शब्दों में, **"भाषा सीखने की प्रारम्भिक अवस्था में पर्याप्त समय तक सीखने का स्तर शब्दों के चयन व अभिव्यक्ति तक ही सीमित रहता है। पर्याप्त समय के पश्चात् कहीं ये अभिव्यक्ति यन्त्रवत् प्रयासहीन आदत में परिणित हो जाती है। जब विद्यार्थी उपलब्धि के इस स्तर को प्राप्त कर लें ......तो समझना चाहिये कि उसने भाषा सीख ली।"**

भाषा शिक्षण के सामान्य सिद्धान्त

भाषा शिक्षण के सामान्य सिद्धान्त निम्नलिखित हैं—

1. स्वाभाविकता का सिद्धान्त— भाषा शिक्षण में यह ध्यान देना आवश्यक है कि भाषा शिक्षण इस प्रकार का हो कि बालक को भाषा सीखना स्वाभाविक एवं अच्छा लगे। शिक्षण में कहीं भी बाध्यता एवं कृत्रिमता न हो। इसके लिये कक्षा में भाषा शिक्षण के लिये एक स्वतंत्र, आनन्दप्रद एवं स्वाभाविक वातारण की रचना की जानी चाहिए।

इस सम्बन्ध में निम्नलिखित नियमों का अपनाना आवश्यक है—

(i) सर्वप्रथम मौखिक भाषा का शिक्षण देना चहिए। शिक्षण के प्रारम्भ में उच्चारण पर बल देना चाहिए।

(ii) श्रवण द्वारा समझना, पढ़ना, लिखना एवं बोलना विद्यार्थियों को भाषा के इन चार आधारभूत कौशलों को प्राप्त कराने का शिक्षण दिया जाना चाहिए।

(iii) 'मौखिक से लिखित की ओर' सिद्धान्त का अनुसरण किया जाना चाहिए।

(iv) भाषा की इकाई वाक्य है, शब्द नहीं। इसलिये भाषा शिक्षण में वाक्य से शब्द की ओर जाना चाहिए।

2. क्रियाशीलता का सिद्धान्त— बालक के द्वारा अर्थात् करके सीखने में आनन्द आता है। वस्तुतः सभी प्रमुख शिक्षाविदों एवं विद्वानों जैसे— फ्रोबेल, डीवी, मान्टेसरी, गांधी आदि ने शिक्षण में करके सीखने के सिद्धान्तों को सर्वोत्तम माना है। भाषा शिक्षण में इस सिद्धान्त को अपनाना आवश्यक है। भाषा शिक्षण के अन्तर्गत क्रिया को प्रोत्साहन देने की दृष्टि से निम्नलिखित नियमों को अपनाना चाहिए—

(i) मौखिक एवं लिखित कार्य कराना

(ii) प्रश्न पूछना

(iii) उत्तर लेना

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

(iv) पाठों का अभ्यास कराना
(v) साहित्यिक कार्यक्रमों का संयोजना कराना
(vi) नाटकों का अभिनय कराना
(vii) भाषा पर आधारित विभिन्न प्रतियोगिताएँ कराना
(viii) कविता पाठ करना आदि।

3. वैयक्तिक भिन्नता का सिद्धान्त— मनोविज्ञान के अनुसार शिक्षण में वैयक्तिक भिन्नता को ध्यान में रखना अत्यन्त आवश्यक है। प्रत्येक बालक अपने स्वभाव अथवा प्रकृति, रुचि योग्यता एवं क्षमता आदि में अन्य बालकों से भिन्न होता है। सभी के प्रकृति के स्तर भिन्न-भिन्न होते हैं। किसी का लेखन अशुद्ध होता है तो कोई वाचन ठीक नहीं कर पाता। कोई ठीक से नहीं बोल पाता, तो किसी का उच्चारण दोषपूर्ण होता है। कोई तथ्यों का स्मरण नहीं कर पाता तो किसी को गृह कार्य से डर लगता है। अतएव शिक्षक को इन सबकी वैयक्तिक भिन्नताओं एवं कठिनाइयों को ध्यान में रखकर शिक्षण कार्य करना चाहिए। वर्तमान युग में सभी शिक्षा शास्त्रियों ने वैयक्तिक विभिन्नता के सिद्धान्त पर बल दिया है।

4. अभ्यास का सिद्धान्त— अभ्यास बालक की भाषा को शक्ति प्रदान करता है तथा उसमें माधुर्य एवं सरलता उत्पन्न करता है। भावाभिव्यक्ति, शब्दावली एवं व्याकरण आदि अभ्यास पर निर्भर है। अभ्यास के द्वारा ज्ञान का निरन्तर विकास होता है तथा विस्मृति रुकती है। **थार्नडाइक** के शब्दों में, **"भाषा एक कौशल है और उसका विकास अभ्यास पर निर्भर करता है।"** मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के आधार पर यह देखा गया है कि बालक जितनी तेजी से पाठ याद करते हैं, उससे अधिक तेजी से विस्मृत करते हैं। अतएव अभ्यास आवश्यक है। अभ्यास का क्रम टूट जाने पर भाषा पर अधिकार धीरे-धीरे समाप्त हो जाता है।

5. रुचि या अभिप्रेणा का सिद्धान्त— हरबार्ट के अनुसार, "उन्हें (शिक्षकों को) बालक की रुचि का सर्वदा ध्यान रखना चाहिए। जब बालक की रुचि पढ़ने की ओर न हो, तब उन्हें नहीं पढ़ाना चाहिए। इससे उनके विकास में बाधा पहुँचती है। पाठ पढ़ाने से पूर्व उन्हें पाठ में बालकों की रुचि पैदा करनी चाहिए, जिससे वे पाठ को अच्छी प्रकार समझ सकें।"

हिन्दी-शिक्षण के संदर्भ में भी हरबार्ट का यह कथन अक्षरक्षः सत्य है। पाठ को रुचिकर बनाने हेतु निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है—

(i) पूर्व ज्ञान के आधार पर ही नवीन ज्ञान प्रस्तुत किया जाना चाहिए।
(ii) पाठ में विविधत लाई जानी चाहिये तथा पाठ को मनोरंजक बनाकर पढ़ाना चाहिए।
(iii) बालकों से जो प्रश्न पूछे जायें, वे उनकी रुचि एवं स्तर के अनुरूप हों।
(iv) शिक्षण में उचित, सार्थक एवं प्रभावपूर्ण श्रव्य-दृश्य सामग्री का प्रयोग किया जाना चाहिए।
(v) शिक्षण कार्य खेल द्वारा, क्रिया द्वारा तथा अनुभव द्वारा सम्पन्न किया जाये।
(vi) रचना एवं गद्य की अन्य विधाओं में चित्र, उदाहरण, तुलना एवं संस्मरण आदि का प्रयोग किया जाये।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

(vii) अभिव्यंजना के विकास हेतु वाद-विवाद व नाटक आदि का आश्रय ले चाहिये।

(viii) व्याकरण को अगमन एवं प्रायोगिक पद्धति के माध्यम से पढ़ाया जाये।

(ix) जहाँ तक सम्भव हो, छात्रों को दण्ड न दिया जाये। वस्तुतः उनके स सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार ही किया जाये।

6. अनुकरण का सिद्धान्त— बालक का अनुकरण करने का स्वभाव होता है। अतः प्रारम्भ में वे अधिकांशतः अनुकरण द्वारा ही सीखते हैं। भाषा में भी वे इसी प्रकृति : सहारा लेते हैं। शिक्षक जैसी भाषा बोलता है तथा लिखता है, वे भी धीरे-धीरे वैसी भा बोलने तथा लिखने लगते हैं। अतएव शिक्षक को भाषा शिक्षण के लिये यह आवश्यक कि उसे शब्दावली का विशद् ज्ञान हो, वाक्य-संरचना के विभिन्न रूपों से परिचित हो, व्याकरण का श्रेष्ठ ज्ञाता हो तथा अभिव्यक्ति की कला में पारंगत हो।

7. बाल केन्द्रिता का सिद्धान्त— वर्तमान युग की शिक्षा बाल-केन्द्रित है। भाषा शिक्ष में भी शिक्षक के लिये यह आवश्यक है कि वह शिक्षण के समय बालक के स्तर, रुं योग्यता, क्षमता, योग्यता आदि को ध्यान में रखें। कक्षा में वह अपने पांडित्य एवं ज्ञान : प्रदर्शन करने के लिये क्लिष्ट शब्दावली या दुर्बोध व्याख्या का सहारा न ले, वरन् इस विपरीत वह बालकों के स्तर के अनुरूप शिक्षण कार्य करे। बालकों के स्तर के अनुरूप वह भाषा एवं शैली का प्रयोग करे। शिक्षण को मनोरंजक बनाने हेतु रोचक उदाहरण प्रस् करे तथा उपयुक्त, सार्थक एवं आकर्षक दृश्य-श्रव्य सामग्री का प्रयोग करे जिससे सम्पूर्ण ज्ञ प्राप्त कर सके।

8. बोलचाल का सिद्धान्त— शिक्षण की प्राचीन पद्धति के अतर्गत कक्षा में शिक्षक शिक्षण कार्य में सक्रिय रहता था तथा बालक निष्क्रिय। शिक्षक बोलता रहता था अं बालक उसे मूक श्रोता की भांति सुनते रहते थे। परन्तु वर्तमान युग में शिक्षा शास्त्रि मनोवैज्ञानिकों एवं भाषाविदों ने बोलचाल के माध्यम के द्वारा भाषा शिक्षण पर बल दि है। कामेनियस एवं जॉन लॉक के मतानुसार भी, भाषा को पहले बोलचाल के माध्यम पढ़ाना चाहिये।

इस सिद्धान्त की उपयोगिता को निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

(i) भाषा का सम्बन्ध मुख एवं कान से है अर्थात भाषा का सम्बन्ध बोलने ए सुनने से है। अतएव बोलचाल भाषा शिक्षण के लिये उपयोगी है।

(ii) बोलचाल के द्वारा भाषा सीखने में कम समय लगता है।

(iii) इस पद्धति के द्वारा बालकों का ध्यान पाठ में आकृष्ट एवं एकाग्रित हो जा है।

(iv) इस पद्धति की सहायता से छात्रों का उच्चारण सुधरता है तथा वह, मात्रा, ल चिन्ह आदि का प्रयोग करना सीख जाते हैं।

(v) इस पद्धति की सहायता से छात्र अपने भावों एवं विचारों को अभिव्यक्त कर का अवसर प्राप्त होता है।

(vi) इस पद्धति से प्राप्त किया गया ज्ञान स्थाई होता है।

(vii) इस पद्धति की सहायता से बालक व्याकरण सम्मत, रोचक, स्वाभाविक ए शुद्ध भाषा बोलने लगते हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

(viii) इस पद्धति की सहायात से बालक शुद्ध भाषा का उच्चारण करते हैं।

(ix) इस पद्धति की सहायता से छात्रों को अपने भावों एवं विचारों को अभिव्यक्त करने का अवसर प्राप्त होता है।

9. चयन का सिद्धान्त— शिक्षक का यह आवश्यक कर्त्तव्य है कि वह शिक्षण से पूर्व छात्रों को स्तर, योग्यता एवं क्षमता आदि के आधार पर चयनित करे। यदि वह ऐसा करने में असमर्थ रहेगा तो छात्र उसके द्वारा प्रदत्त ज्ञान को ग्रहण नहीं कर पायेंगे। अतएव शिक्षक द्वारा उतने की ज्ञान का चयन किया जाये जितने को छात्र ग्रहण कर सकें। इसके साथ ही शिक्षक को यह भी ध्यान रखना चाहिए कि किसी पाठ को किस रूप में प्रस्तुत करे जिससे वह छात्रों के लिये सरल, सुबोध एवं सहज ग्राह्य हो सके तथा जो रूप अधिक प्रभावपूर्ण एवं मनोरंजक हो, उसका चयन करना चाहिये।

10. अनुपात एवं क्रम का नियम— भाषा शिक्षण के निम्नलिखित दो मुख्य अंग हैं—

(1) ग्रहण करना, (2) अभिव्यक्ति करना।

हम सुनकर एवं पढ़कर ग्रहण करते हैं तथा लिखकर एवं बोलकर हम अपने विचारों को अभिव्यक्त करते हैं। अतएव छात्र के समक्ष भाषा सीखने के निम्नलिखित चार उद्देश्य होते हैं—

(i) सुनकर समझने की योग्यता प्राप्त करना।

(ii) स्वयं बोलने की योग्यता प्राप्त करना।

(iii) पुस्तक व पत्र-पत्रिकायें आदि को पढ़कर समझने की योग्यता प्राप्त करना।

(iv) अपने भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति हेतु लिखने की योग्यता प्राप्त करना।

भाषा शिक्षण का क्रम भी यही है, अतएव शिक्षक को अनुपात एवं क्रम का ध्यान रखकर ही भाषा-शिक्षण का कार्य करना चाहिये। इसकी व्यवस्था निम्न प्रकार की जा सकती है—

(i) शिक्षक द्वारा बोलना तथा छात्र द्वारा उसे समझाना।

(ii) छात्र का अनुकरण के द्वारा बोलने का अभ्यास करना।

(iii) छात्रों द्वारा अपने भावों एवं विचारों को शुद्ध भाषा में प्रकट करना।

(iv) छात्र द्वारा उच्चारण, शब्द-रूप, शब्द-भण्डार तथा पुस्तकों आदि का अध्ययन एवं व्याकरण को सीखना आदि।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

2

साहित्य शिक्षण

(TEACHING OF LITERATURE)

व्युत्पत्ति के आधार पर 'साहित्य' शब्द का अर्थ है— सहित होने का भाव। इसमें विद्वानों ने सहित शब्द के दो अर्थ माने हैं— 1. 'हितेन सह सहित' 2. 'सह' अर्थात् साथ होना। 'हितेन सह सहितं' का अर्थ है हित के साथ होना अथवा जिससे हित सम्पादन हो। 'सह' शब्द का अर्थ साथ होने से है। साहित्य से यह भाव प्रतिपादित होता है कि जहाँ शब्द और अर्थ, विचार और भाव का पराम्परानुकूल सहभाव हो वह साहित्य है। साहित्य का दूसरा अर्थ है— जो हित सहित हो। भाषा के माध्यम से ही साहित्य हितकारी रूप में प्रकट होता है।

भाषा एवं साहित्य के विद्वानों तथा शिक्षाविदों द्वारा साहित्य की निम्नलिखित परिभाषायें दी गयी हैं—

गंगा प्रसाद पांडेय से शब्दों में, **"साहित्य विचारशील आत्माओं की अमर अभिव्यक्ति है। उसमें जीवन-सम्बन्धी उन विशेष विचारों का संकलन होता है, जो हमारे यथार्थ जीवन को प्रगति देते हैं। वास्तव में 'साहित्य' शब्द हमारा जीवन है, क्योंकि सभी साहित्यकार जीवन की जटिलता तथा विरसता एवं सरसता का उपयोग करने से बाद ही उसको अपनी शब्द-सीमा में बांधने का प्रयत्न करते हैं।"**

पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में, **"ज्ञान राशि के संचित कोश का नाम साहित्य है।"**

बाबू गुलाबराय के अनुसार, **"साहित्य संसार के प्रति मानसिक प्रक्रिया अर्थात् विचारों, भावों और संकल्पों की शाब्दिक अभिव्यक्ति है, और यह हमारे किसी न किसी प्रकार के हित का साधन करने के कारण संरणीय हो जाती है।"**

राजशेखर के अनुसार, **"शब्दार्थयोर्यथाहत्सभावेन विद्या साहित्य विद्या"** अर्थात् शब्द और अर्थ के यथायोग्य सहयोग वाली विद्या साहित्य विद्या है।

कवीन्द्र रवीन्द्र के शब्दों में, **"सहित शब्द से साहित्य में मिलने का एक भाव देखा जाता है। यह केवल भाव-भाव का, भाषा-भाषा का, ग्रन्थ-ग्रन्थ का ही मिलन नहीं है, अपितु मनुष्य-मनुष्य का, अतीत-वर्तमान का, दूर के साथ निकट का अत्यन्त अंगरंग मिलन भी है, जो साहित्य के अतिरिक्त अन्य द्वारा सम्भव नहीं है।"**

हेनरी हडसन के मतानुसार, **"साहित्य मूलतः भाषा के माध्यम द्वारा जीवन की अभिव्यक्ति है।"**

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भाषा और साहित्य में सम्बन्ध

भाषा और साहित्य निम्न प्रकार एक दूसरे से सम्बन्धित है—

1. भाषा और साहित्य एक दूसरे के पूरक हैं— भाषा के विभिन्न कालों में विभिन्न रूपों के दर्शन हमें साहित्य में ही होते हैं। भाषा जीवित हो अथवा मृत, उसका अध्ययन हम उस भाषा के साहित्य के आधार पर ही करते हैं। साहित्य के द्वारा हम जीवित भाषा की सजीवता व उसके उत्कर्ष से परिचित होते हैं। साहित्य के द्वारा ही हम जीवित भाषा के शब्दों की शक्ति से अवगत होते हैं।

राबर्ट लाडो के शब्दों में, **"कोई भी व्यक्ति भाषा के गठन में एकदम साहित्य की ओर बिना भाषा के मूल सांस्कृतिक पक्ष को समझे छलांग नहीं लगा सकता क्योंकि साहित्य भाषा के माध्यम से ही अभिव्यक्त होता है, इसलिये बिना भाषा को समझे, शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त सांस्कृतिक जीवन मूल्यों को बिना समझे किसी की साहित्यिक कृति को नहीं समझा जा सकता।"**

2. भाषा और साहित्य दोनों का सम्बन्ध समाज से है— भाषा समाज में ही उत्पन्न होती है एवं समाज में ही उसका पालन-पोषण होता है, उसका रूप समाज में ही निखरता है, उसको जीवन शक्ति समाज से ही प्राप्त होती है। समाज के विकास के साथ-साथ भाषा की क्षमतायें भी विकसित हो जाती हैं, नये-नये शब्दों, मुहावरों, सूक्तियों, लोकोक्तियों का प्रवेश होता है और वह नवीनतम एवं सूक्ष्मतम भावों और विचारों को व्यक्त करने में समर्थ होती है। उत्तम एवं समृद्ध साहित्य से भाषा समृद्ध होती है। अतएव भाषा और साहित्य दोनों का सम्बन्ध सामाजिक वातावरण से है। भाषा और साहित्य दोनों का कार्य क्षेत्र एक है, इसलिये दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध होना स्वाभाविक है। **इमरसन** का कथन है— "भाषा और साहित्य के विज्ञान भवन के निर्माण में प्रत्येक मानव ने एक ईंट पत्थर रखकर अपना योगदान दिया है।"

3. भाषा पर पूर्णाधिकार साहित्य के अध्ययन के बिना असम्भव है— भाषा पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करने के लिये साहित्य का गहन अध्ययन करना अनिवार्य है। साहित्य में हमें भाषा की विभिन्न शैलियों के दर्शन होते हैं। शब्दों, मुहावरों, सूक्तियों तथा लोकोक्तियों के विभिन्न प्रयोगों के दर्शन हमें साहित्य में ही होते हैं। साहित्य के अध्ययन के द्वारा ही बालक की अभिव्यक्ति सहज एवं उत्तम विकास सम्भव है।

साहित्य के उद्देश्य

साहित्य के प्रमुख उद्देश्य निम्न प्रकार हैं—

1. ज्ञान की प्राप्ति— साहित्य में किसी जाति या राष्ट्र के ज्ञान का भंडार होता है। कोई भी व्यक्ति सभी अनुभवों को स्वयं नहीं कर सकता, वस्तुतः उसके लिये यह अनिवार्य हो जाता है कि वह दूसरे व्यक्तियों के अनुभवों से लाभ उठाये। दूसरे व्यक्तियों के अनुभवों के दर्शन हमें साहित्य में ही होते हैं। साहित्य की अनेक विधायें हैं तथा इन विधाओं के अध्ययन से हमें समाज तथा मनुष्य के विचारों एवं भावों से परिचित होते हैं।

2. मानव एवं समाज का विकास करना— साहित्य के अध्ययन से मानव के विचारों में संकीर्णता नहीं रहती। साहित्य उसे मनुष्यत्व प्रदान करता है।

अतएव साहित्य समाज की यथास्थिति का वर्णन कर लोगों को उसमें सुधार लाने का प्रयास करता है, उनको जागृत करता है तथा सामाजिक क्रान्ति की आधार-शिला बनाता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

साहित्य लोगों में, समाज में, देश तथा विश्व प्रेम भावना को जागृत करता है। साहित्य लो में, समाज में, देश तथा विश्व में प्रेम भावना को जागृत करता है, उनके दृष्टिकोण को व्या बनाता हैं।

3. **सौन्दर्यानुभूति कराना**— साहित्य हमें जीवन की अनुभूति कराता है। जीवन सु एवं दुख की मिली-जुली प्रक्रिया है। साहित्य इन सुखों एवं दुखों की विभिन्न रगों में सृ करके हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है। साहित्य के माध्यम से हम न केवल प्रकृति के सौन् का आनन्द लेते हैं अपितु मानव के अन्तर्जगत से भी नाता जोड़ लेते हैं। कवि अप कविता के माध्यम से 'साधारण' में 'असाधारण' अथवा 'सामान्य' से 'असामान्य' के उत्पन्न कर देता है। इसके शब्द चित्र अथवा भाव चित्र लोगों को एक विलक्ष सौन्दर्यानुभूति तथा रसानुभूति प्रदान करते हैं। देखिए 'तोड़ती पत्थर' शीर्षक एक कविता एक चित्र—

वह तोड़ती पत्थर।
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर
वह तोड़ती पत्थर।
कोई न छायादार
पेड़, वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार
श्याम तन, भर बँधा यौवन,
नत नयन, प्रिय-कर्म-रत मन
गुरु हथौड़ा हाथ,
करती बार-बार प्रहार—
सामने तरु मालिका अट्टालिका आकार।
चढ़ रही थी धूप
गर्मियों के दिन
दिवा का तमतमाता रूप।
उठी झुलसती हुई लू
रुई ज्यों जलती हुई भू
गर्द चिनगीं छा गई
प्रायः हुई दुपहर;
वह तोड़ती पत्थर।
देखते देखा मुझे तो एक बार
उस भवन की ओर देखा, छिनतार।
देख कर कोई नहीं।
देखा मुझे उस दृष्टि से
जो मार खा रोई नहीं।
सजा सहज सितार,
सुनी मैंने वह नहीं जो थी सुनी झंकार

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एक क्षण के बाद व काँपी स्वर।
ढुलक माथे से गिरे सीकर,
लीन होते कर्म में फिर ज्यों कहा—
मैं तोड़ती पत्थर।

4. उदात्त भावनाओं का विकास— साहित्य मनुष्य की उदात्त भावनाओं में संवर्धन रता है एवं उसे पशुत्व के मार्ग से देवत्व के मार्ग की ओर अग्रसित करता है। मनुष्य में ुन्दरम्' के साथ-साथ 'शिवम्' का भी विकास होना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में ीन्द्रनाथ टैगोर ने अपनी एक कविता में लिखा है, "ईश्वर पुष्प से उसे दी हुई सुगन्ध की ंग करता है। कोयल से वह केवल उसे दी हुई कुह-कुह की आवाज की अपेक्षा रखता । वृक्ष से वह केवल उसके फल की आसा रखता है। परन्तु मनुष्य के सम्बन्ध में ईश्वर ा नियम निराला है। उसने मनुष्य को दुःख दिया है। उसकी इच्छा है कि मनुष्य उसमें से ख प्राप्त करे। उसने मनुष्य को अन्धकार दिया है। वह कहता है कि "इस अन्धकार में से काश उत्पन्न करो।" ईश्वर का मनुष्य के सम्बन्ध में पक्षपात क्यों है ? नहीं, ईश्वर कठोर हीं है, वह यह अनुभव करते हैं कि सारी सृष्टि में मानव प्राणी ही सर्वक्षेष्ठ है। यदि मानव ऐसी अपेक्षा न करें तो किससे करें। भगवान को यह आशा है कि वह श्रेष्ठ मानव-प्राणी री सृष्टि का मुकट मेरी आशा को व्यर्थ न जाने देगा।"

साहित्य शिक्षण के सिद्धान्त

साहित्य शिक्षण के प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैं—

1. भाषा शिक्षक की साहित्य में रुचि होनी चाहिए— भाषा शिक्षण के अध्यापकों को वयं भी साहित्य में रुचि लेना आवश्यक है। वस्तुतः उन्हें साहित्य का गहन अध्ययन करना ाहिये एवं साहित्य के सूक्ष्म विश्लेषण करने में समर्थ होना चाहिए। श्रेष्ठ साहित्यिक वनाओं को मधुर स्वर में एवं भाव-विभोर होकर पढ़ाना चाहिए। उसके विचारों एवं भावों र साहित्य की स्पष्ट झलक दिखाई देना चाहिए। इसका छात्रों पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

इस प्रकार उन्हें साहित्य के अध्ययन की प्रेरणा मिलेगी और वे साहित्य के अध्यापन ी ओर अग्रसरित होंगे।

2. भाषा की पुस्तकों में उत्कृष्ट साहित्यिक रचनाओं का समावेश होना चाहिए— शिक्षा प्रत्येक स्तर पर भाषा की पुस्तकों में कुछ उत्कृष्ट साहित्यिक रचनाओं का समावेश होना ाहिए। वस्तुतः इन उत्कृष्ट साहित्यिक रचनाओं को पढ़कर छात्रों में साहित्यिक चेतना उत्पन्न ती है। इसके परिणामस्वरूप भविष्य में छात्र सुन्दर साहित्यिक रचना करने की दिशा में ग्रसरित होंगे। यहाँ पर ध्यान रखना आवश्यक है कि साहित्यिक रचनाएँ छात्रों के स्तर के नुकूल होनी चाहियें। यदि ऐसा नहीं किया गया और रचनायें अधिक शैक्षिक स्तर की हुई छात्रों पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ेगा और उनकी साहित्य में रुचि समाप्त हो जायेगी। तएव यह आवश्यक है कि साहित्यिक रचनायें छात्रों के स्तर की ही हों।

3. शिक्षक को साहित्यिक रचनाओं का शिक्षण देते समय छात्रों को उत्कृष्ट एवं र्मिक स्थलों से अवगत कराना चाहिए— साहित्यिक रचनाओं का शिक्षण देते समय ाक्षक को चाहिए कि वह साहित्यिक रचनाओं का शिक्षण करते समय उनके मार्मिक एवं त्कृष्ट स्थलों की ओर छात्रों का ध्यान आकृष्ट करें। गद्य के अन्तर्गत लेखों, नाटकों व पन्यासों के कुछ अंश लेखक की विशेष साहित्यिक प्रतिभा की झलक प्रस्तुत करते हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इसी प्रकार किसी कविता, गीत तथा खण्ड-काव्य या महाकाव्य में कुछ पंक्तियाँ कवि व विशिष्ट प्रतिभा की ओर इंगित करती हैं— इन्हीं साहित्यिक विशेषताओं की ओर शिक्षः को छात्रों का ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।

4. भाषा की पुस्तकों में साहित्य की विभिन्न विधाओं में रचनायें संग्रहित होन चाहियें— साहित्य में अनेक विधायें होती हैं, जैसे— गद्य, पद्य, रचना, नाटक, रेखाचि आदि। इन सभी विधाओं में विशिष्ट शैलियाँ होती हैं। छात्रों के लिये निर्धारित भाषा व पुस्तकों में साहित्य की विभिन्न विधाओं का समावेश होना चाहिये जिससे छात्रों को साहित्‍ की पहचान हो सके। इसके साथ ही इन विभिन्न विधाओं की शिक्षण-विधि की भिन्न-भि होती है। इस प्रकार विभिन्न विधाओं के अध्ययन से छात्रों के व्यक्तित्व का विकास होगा।

5. शिक्षक छात्रों को साहित्यिक पत्र-पत्रिकायें पढ़ने के लिये प्रेरित करें— छात्रों साहित्यिक प्रतिभा पल्लवित कराने, अभिव्यक्ति के नवीन स्वरूपों से अवगत कराने तथ विचारों एवं भावनाओं की ऊँचाइयों से अवगत कराने के लिये शिक्षक को उन्हें उत्कृ साहित्यिक पत्रिकाओं के अध्ययन के लिये अवश्य प्रेरित करना चाहिए। शिक्षक को चाहि कि वह विद्यालय में देश की उत्कृष्ट साहित्यिक पत्रिकाओं को मंगवाने की व्यवस्था क क्योंकि देश में प्रकाशित होने वाली साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में नवीनतम एवं सुन्दरत रचनायें प्रकाशित होती हैं।

6. शिक्षक छात्रों को साहित्यिक रचनायें लिखने के लिये प्रेरित करें— शिक्षक द्वा साहित्य के शिक्षण के दो प्रमुख उद्देश्य होने चाहिएँ—

1. छात्र साहित्य की गहन अनुभूति करने में समर्थ हो सकें।
2. छात्र साहित्य की विभिन्न विधाओं में रचनाएँ लिखने में समर्थ हो सकें।

प्रारम्भ में तो छात्र साधारण ही रचना लिख सकेंगे। किन्तु उचित प्रेरणा एवं निर्देशन के आधार पर वे शनैः शनैः सुन्दर रचनाएँ लिखने में समर्थ हो सकेंगे।

शिक्षक को चाहिए कि छात्रों को रचनाएँ लिखने को दें और जो छात्र रचना लिखक लायें उसे कक्षा में सुनवायें तथा उसकी प्रशंसा कर उसे प्रोत्साहित करें। उस रचना में यदि कहीं त्रुटि हो तो उसमें संशोधन भी करें।

7. विद्यालय पुस्तकालय में सुन्दर एवं स्तरीय साहित्यिक कृतियाँ उपलब्ध होनी चाहियें— प्रत्येक विद्यालय के पुस्तकालय में विद्यार्थियों के विभिन्न स्तरों की दृष्टि से उपयुक्त साहित्यिक कृतियाँ उपलब्ध होनी चाहियें। अधिकांशतः विद्यालयों के पुस्तकालयों में शिक्षकगण अपने स्तर की अनुकूल पुस्तकें मंगवा लेते हैं परन्तु छात्रों की रुचि के अनुकूल पुस्तकें बहुत कम होती हैं, जिसके कारण छात्र पुस्तकालयों से पुस्तकें लेने औ पढ़ने में रुचि नहीं लेते। अतएव छात्रों में साहित्यिक रुचि का विकास करने की दृष्टि से विद्यालयों की पुस्तकालयों में छात्रों के स्तर के अनुकूल पुस्तकें अधिक संख्या में होन आवश्यक है।

8. विद्यालय में विभिन्न अवसरों पर विभिन्न साहित्यिक समारोह आयोजित कराना— विद्यालय में विभिन्न अवसरों पर साहित्यिक समारोहों का आयोजन किया जाना चाहिए जिसमें प्रसिद्ध साहित्यकारों को अपने विचारों व भावों को व्यक्त करने के लिये आमन्त्रि किया जाना चाहिए तथा प्रतिभाशाली छात्रों को अपनी रचनायें पढ़ने व सुनाने के लिये अवसर प्रदान किया जाना चाहिए। ये साहित्यिक समारोह विभिन्न साहित्यिक विद्वानों की जयन्तियों आदि के अवसर पर आयोजित किये जा सकते हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

3

मातृभाषा-शिक्षण का महत्व एवं स्थान

मातृभाषा का अर्थ

'मातृभाषा' का मूल अर्थ वह भाषा है जो बच्चे की माँग की भाषा होती है।

जिस भाषा को बच्चा अनुकरण द्वारा सीखता है उसे मातृ भाषा कहते हैं। अथवा बालक अपने परिवार में जन्म से ही जिस भाषा को सीखता है वही उसकी मातृभाषा है।

अपने बाल्यकाल से बालक अपने परिवार में रहता हुआ अपने माता-पिता, भाई-बहिनों, अपने साथियों का अनुकरण करके जिस भाषा को ग्रहण करता है वह ही उसकी मातृभाषा होती है। यदि बच्चे को जन्म लेते ही ऐसे परिवार में छोड़ दिया जाए जहाँ की भाषा उसके परिवार से भिन्न है तो निश्चित ही वह उस भाषा को सीखेगा जिसमें उसका पालन-पोषण हुआ है। अतएव उस भाषा को मातृभाषा कहना चाहिए जिसे कोई बालक प्रारम्भ से ही अपना पर्यावरण से सीखता है और जिस पर उसका जन्म सिद्ध अधिकार होता है।

शिक्षा के क्षेत्र में इसका और भी अधिक विस्तृत अर्थ होता है। शिक्षा के क्षेत्र में 'मातृभाषा से तात्पर्य किसी क्षेत्र विशेष की उस भाषा से होता है जिसके माध्मय से उस क्षेत्र के शिक्षित व्यक्ति मौखिक एवं लिखित रूप में विचार विनिमय करते हैं। वस्तुतः मातृभाषा व्यक्ति को उसका सामाजिक स्वरूप प्रदान करती है, उसे परम्परा एवं संस्कृति से परिचित कराती है तथा उसे माता-पिता का बोध कराती है।' अतएव यह कहा जा सकता है कि मातृभाषा ही व्यक्ति के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास की आधार-शिला है।

मातृभाषा एवं उसका महत्व

माता और मातृभूमि के समान मातृभाषा भी वन्दनीय होती है। यह बालक की शिक्षा का आधार होती है। हमारी शिक्षा का कोई भी उद्देश्य क्यों न हो, उसकी प्राप्ति में मातृभाषा का स्थान सर्वोपरि होता है। मातृभाषा का ज्ञान विकास के लिये आवश्यक है। मातृभाषा के ज्ञान के अभाव में शिक्षा का विकास असम्भव है। इसी कारण आज संसार के लगभग सभी देशों में मातृभाषा के महत्व को समझते हुए इसी के माध्यम से शिक्षा देने का प्रयोजन है। मातृभाषा के महत्व की विवेचना हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत कर सकते हैं—

1. मातृभाषा छात्रों का शारीरिक विकास करती है— शारीरिक विकास के लिये जितना आवश्यक पौष्टिक भोजन होता है उतना ही आवश्यक पूरी नींद सोना और प्रसन्नचित रहना। मातृभाषा इस आवश्यकता की पूर्ति में सहायक सिद्ध होती है। मातायें शिशुओं को संगीत प्रधान ध्वनियों (लोरियों) के उच्चारण द्वारा प्रसन्न करती है और निद्रा मग्न कराती है। इसलिये मातृभाषा को पालने की भाषा भी कहा जाता है। बाल्यकाल में बच्चे अपनी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तोतली बोली में बातचीत कर प्रसन्न होते हैं, यह भी सभी ने देखा है। मातृभाषा के सामान्य अध्ययन के पश्चात् जब बच्चे उसके साहित्याध्ययन की ओर बढ़ते हैं तब उन्हें सच्चे आनन्द की अनुभूति होती है। **रायबर्न** के अनुसार "मातृभाषा एक उपकरण है; आनन्द, प्रसन्नता और ज्ञान का एक स्रोत है, रुचियों एवं अनुभूतियों का एक निदेशक है और विधाता द्वारा मनुष्य को दी हुई उस सर्वोत्तम शक्ति के प्रयोग का साधन है जिसके द्वारा हम उस भगवान के निकटतम पहुँचते हैं।"

"It is atonce a tool, a source of joy and happiness and knowledge, a director of taste and feeling and a means of using the highest power, that God had given us where we come closest to Him." —*W.M Ryburn*

अतएव इसमें कोई सन्देह नहीं है कि मातृभाषा मनुष्य में साहित्याध्ययन की अभिरुचि जागृत करती है जिससे वह अपने अवकाश के क्षणों में साहित्यिक रचनाओं का रसास्वादन करता है। इससे आनन्द लाभ होता है एवं शारीरिक विकास होता है।

2. मातृभाषा छात्रों का बौद्धिक एवं मानसिक विकास करती है— मानसिक एवं बौद्धिक विकास की दृष्टि से भी मातृभाषा का अपना महत्व है। मानसिक विकास के लिये सबसे पहली आवश्यकता विचार शक्ति की होती है। विचार तथा भाषा का अटूट सम्बन्ध है— विचार भाषा को जन्म देते हैं और भाषा विचारों को। जिस व्यक्ति के पास जितनी सशक्त भाषा होगी, उतनी ही सशक्त उसकी विचार शक्ति होगी। विचार शक्ति के अभाव में मानसिक विकास असम्भव है। गाँधी जी ने "मानसिक विकास के लिये भाषा को उतना आवश्यक माना है जितना शिशु के शारीरिक विकास के लिये माता का दूध।"

"The mother tongue is as natural for the development of man's mind as mother's milk for the development of infant's body."

—*Mahatma Gandhi*

रायबर्न के शब्दों में, "**मातृभाषा की शिक्षा महत्वपूर्ण है क्योंकि मातृभाषा शिक्षण पर हमारे विद्यार्थियों का बौद्धिक विकास निर्भर है— बौद्धिक जीवन का विकास, ज्ञान में वृद्धि आत्माभिव्यक्ति की क्षमता का विकास, सृजनात्मक एवं उत्पादन क्षमता का विकास।**"

वस्तुतः मातृभाषा के माध्यम से वह अपने साहित्य, अन्य भाषाओं और समस्त ज्ञान-विज्ञान एवं विषयों को समझने में समर्थ होता है। इस प्रकार मातृभाषा हमारा मानसिक एवं बौद्धिक विकास करती है।

3. मातृभाषा छात्रों के भावात्मक विकास में सहायक होती है— बच्चे, मातृभाषा को माता और मातृभूमि के समान बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। यही कारण है कि एक मातृ-भाषाभाषी व्यक्तियों में आपस में प्रेम रहता है, वे एक दूसरे से सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करते हैं, बड़ों का अभिवादन तथा छोटों को प्यार करते हैं और एक दूसरे की सहायता करते हैं। एक भाषा-भाषी व्यक्तियों के बीच जो सद्भावना रहती है वह भिन्न भाषा-भाषी व्यक्तियों के बीच नहीं रहती। इसलिये **कलराज** ने कहा है कि, "मातृभाषा मनुष्य के हृदय की धड़कन की भाषा है।"

रायबर्न के शब्दों में, "**मातृभाषा एक ओर तो ज्ञान प्रसन्नता एवं आनन्द का स्रोत है, भावनाओं और रुचियों की पथ-प्रदर्शक है, तो दूसरी ओर ईश्वर प्रदत्त सर्वश्रेष्ठ शक्ति के प्रयोग का साधन है।**" अतः मातृभाषा भावात्मक विकास तथा एकता उत्पन्न एवं विकसित करने में सहायक होती है।

CC-0.Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

4. मातृभाषा छात्रों के सांस्कृतिक विकास में सहायक होती है— प्रत्येक बालक का अपनी मातृभाषा तथा उसके साहित्य से विशेष लगाव होता है। साहित्य समाज का दर्पण होता है। मातृभाषा में लिखित साहित्य वास्तव में जातीय संस्कृति, सभ्यता और रीति-रिवाजों का प्रतिनिधित्व करता है। जाकिर हुसैन कमेटी रिपोर्ट में लिखा है कि, "मातृभाषा को बालकों को अपने पूर्वजों को विचारों, भावों तथा महत्वाकांक्षाओं की समृद्ध थाती से परिचित कराने का सर्वोत्तम साधन है।" वास्तव में मनुष्य के सांस्कृतिक विकास के दो ही मूल आधार हैं— एक लोक जीवन और दूसरे उसकी मातृभाषा का साहित्य। बच्चा सर्वप्रथम मातृभाषा सीखता है और फिर विचार-विनियम कर अपने समाज में व्यक्तियों के विचार एवं व्यवहार से अवगत होता है। धीरे-धीरे वह लोक-रीति सीखने लगता है तथा लोक जीवन की शैली में ढलता चलता है। बस यही उसके सांस्कृतिक जीवन के विकास की प्रारम्भिक स्थिति है।

5. मातृभाषा छात्रों का सामाजिक विकास करने में सहायक होती है— मातृभाषा बालक को सामाजिक स्वरूप प्रदान करती है। बालक मातृभाषा में बोलना, लिखना तर्क करना, भाषण देना आदि सीखता है। वह अपने विचारों एवं भावों की अभिव्यक्ति जितनी प्रभावोत्पादकता के साथ करेगा, समाज में उसकी स्थिति उतनी ही दृढ़ होगी। मनुष्य को समाज के रूप में संगठित और विकसित करने का सर्वोत्तम श्रेय मातृभाषा को ही है। कोठारी आयोग ने कई राष्ट्रीय लक्ष्यों में से एक लक्ष्य सामाजिक एकता प्राप्त करना भी बताया है। मातृभाषा के सफल शिक्षण से सामाजिक एकता को प्राप्त किया जा सकता है। विचारों में प्रौढ़ता, विचार विनिमय और संपर्क में आती है। विचार विनिमय का सबसे अच्छा साधन मातृभाषा ही हो सकती है। इस प्रकार भाषा सामाजिक एकता में सहायक है।

6. मातृभाषा छात्रों का नैतिक एवं चारित्रिक विकास करने में सहायक होती है— यह सभी भली प्रकार जानते हैं कि बच्चों पर प्रारम्भिक जीवन में पड़े संस्कार एवं विचार अमिट छाप छोड़ते हैं और वे ही उसके चरित्र का निर्माण करते हैं, बच्चों के नैतिक विकास में परिवार एवं उसके सदस्यों का विशेष हाथ रहता है। यदि मातायें बच्चों को रोचक एवं नैतिक कहानियाँ सुनाती हैं तो आगे चलकर बच्चे मातृभाषा की पुस्तकों में भी इसी प्रकार की कहानी, नाटक, लेख और कवितायें पढ़ते हैं जिससे उनके चरित्र का विकास होता है। मातृभाषा के माध्यम से हम सामाजिक जीवन की परम्पराओं, रीति-नीति, आचार तथा मानवीय सम्बन्धों का ज्ञान प्राप्त करते हैं जिसका प्रभाव बालक के चरित्र पर अवश्य पड़ता है। इस प्रकार मातृभाषा और उसके साहित्य के अध्ययन से छात्रों का चारित्रिक एवं नैतिक विकास होता है।

7. मातृभाषा शिक्षा प्रदान करने का सर्वोत्तम साधन है— मातृभाषा विचार-विनियम का सर्वोत्तम साधन माना जाता है, इसलिये यह शिक्षा प्रदान करने का भी सर्वोत्तम साधन है। अतएव यह अन्य विषयों की भाँति एक विषय मात्र ही नहीं है वरन् यह एक आधारभूत विषय है जिसके अध्ययन एवं अध्यापन पर सम्पूर्ण शिक्षा अवलम्बित है। **सैम्पसन** के अनुसार, "स्पष्ट शब्दों में एवं साधारण अर्थ में अंग्रेजी (मातृभाषा) शिक्षण-विषय है ही नहीं, वह तो स्कूली जीवन का आधार है......उसे शिक्षण-विषय कहने की अपेक्षा जीवन का अनिवार्य आधार ही कहना चाहिये।" वस्तुतः मातृभाषा का महत्व इसके एक आधारभूत विषय के रूप में तो है ही, लेकिन शिक्षा के माध्यम के रूप में भी इसका महत्व बहुत अधिक है। मातृभाषा के माध्यम के प्रश्न पर डॉ. [illegible] ने कहा था, "मातृभाषा द्वारा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
शिक्षा के अभाव ने भारत को निश्चय ही, विश्व के सभ्य देशों में अत्यत अज्ञानी बना दिया है।" इसी संदर्भ में रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने 1905 में कहा था, "जब तक मातृभाषा को उच्च शिक्षा का माध्यम नहीं बनाया जायेगा, तब तक पाठ्य-पुस्तकें कैसे लिखी जायेंगी, नई शब्दावली कैसे बनेगी, भाषा का विकास उसके प्रयोग से होता है।" **ब्रेल्स फोर्ड** के शब्दों मे, "केवल एक ही भाषा में हमारे भावों की स्पष्ट व्यंजना हो सकती है, केवल एक ही भाषा के शब्दों के सूक्ष्म संकेतों को हम सहज और निश्चित रूप में ग्रहण कर सकते हैं। यह भाषा वह होती है, जिसे हम अपनी माता के दूध के साथ सीखते हैं, जिसमें हम अपनी प्रारम्भिक प्रार्थनाओं और हर्ष तथा शोक के उद्‌गारों को व्यक्त करते हैं। दूसरी किसी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाना विद्यार्थी के श्रम को अनावश्यक रूप से बढ़ाना ही नहीं, अपितु उसके मस्तिष्क की स्वतन्त्र गति को पंगु बना देना है।"

8. मातृभाषा अभिव्यक्ति का माध्यम है— संकुचित अर्थ में मातृभाषा कही जाने वाली भाषा को बच्चे जन्म के कुछ दिन पश्चात् ही सीखने लगता है। जैसे-जैसे उसके अंग और प्रत्यंग सुदृढ़ होते हैं और कर्मेन्द्रियाँ तथा ज्ञानेन्द्रियाँ क्रियाशील होती हैं तैसे-तैसे वह स्वर यन्त्र द्वारा अपने माता-पिता, भाई-बहिन तथा सम्पर्क में आने वाले अन्य व्यक्तियों की भाषा को अनुकरण द्वारा सीखता चलता है। आवृत्ति द्वारा उसका यह भाषा ज्ञान स्पष्ट एवं सुदृढ़ हो जाता है। माता और मातृभूमि के समान इस भाषा पर बच्चे का जन्मसिद्ध अधिकार होता है। मातृभाषा के माध्यम से ही उसका समाजीकरण होता है तथा वह अपने समाज में सभ्यता एवं संस्कृति से परिचित होता है। बच्चे के विचार उसकी मातृ-भाषा में उठते, पनपते और समाप्त होते हैं। इसलिये चाहे व्यक्ति किसी भी भाषा में निपुणता प्राप्त कर ले तब भी अपने विचार जितनी सुगमता से मातृभाषा में व्यक्त कर सकता है उतना सीखी हुई अन्य भाषा में नहीं कर सकता।

सैम्पसन से शब्दों में, **"मातृभाषा का शिक्षण ज्ञान प्राप्त करने का केवल एक अवसर ही नहीं है अपितु यह तो बालक को मनुष्य की जीवन में दीक्षित करने का एक भाव है।"**

9. मातृभाषा के साहित्य के अध्ययन से आनन्द की सृष्टि होती है— काव्य, कविता, उपन्यास, कहानी आदि मात्र भाषा में ही लिखे होते हैं। उनको पढ़कर बालक के मन में आनन्द की सृष्टि होती है— वह प्रसन्नता के समुद्र में डूबता-उतरता रहता है। मातृभाषा में लिखा लोक साहित्य पढ़कर जहाँ बालक को ज्ञान की प्राप्ति होती है, वहाँ उनमें भावनाओं का प्रक्षेपण पाकर उसे आनन्द की अनुभूति भी होती है।

रायबर्न के शब्दो में, **"मातृभाषा एक साथ ही एक करण (औजार) आनन्द, प्रसन्नता एवं ज्ञान का एक स्रोत, रुचियों एवं अनुभूतियों की निदेशक और विधाता द्वारा मनुष्य को दी हुई उस सर्वोत्तम शक्ति के प्रयोग का साधन है जिसके आधार पर हम उसके निकटतम पहुँचे जाते हैं।"**

10. मातृभाषा छात्रों में आदर्श नागरिकता के गुणों का विकास करती है— माइकेल वेस्ट के शब्दों में, "भाषा ही वह तत्व है जिससे हमारी आत्मा का गठन होता है। भाषा का महत्व केवल बौद्धिक विकास में ही नहीं है अपितु चारित्रिक विकास में भी है जिसके फलस्वरूप देश का प्रत्येक नागरिक अच्छे गुणों से युक्त हो सकता है।" अतएव मातृभाषा के साहित्य के अध्ययन से छात्रों को सामाजिक परम्पराओं तथा मानवीय सम्बन्धों का ज्ञान प्राप्त होता है जिसके आधार पर वे भविष्य में अपने जीवन मूल्य एवं जीवन-दर्शन का निर्धारण कर सकने में सक्षम हो सकते हैं। वस्तुतः मातृभाषा बालक के चारित्रिक विकास में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पूर्णरूप से सहायक सिद्ध होती है। वस्तुतः मातृभाषा बालक के चारित्रिक विकास में पूर्णरूप से सहायक सिद्ध होती है। इस सम्बन्ध में **रायबर्न** ने लिखा है, "वे समस्त गुण जो कि एक अच्छे नागरिक के लिये आवश्यक हैं— स्पष्ट विचार-क्षमता, स्पष्ट अभिव्यक्तिकरण, विचार, भावना और क्रिया की सत्यता, भावात्मक तथा सृजनात्मक जीवन की पूर्णता— इन समस्त गुणों का पल्लवन तथा विकास तभी सम्भव है, यदि केवल भावनात्मक तथा बौद्धिक जीवन की नींव अर्थात् मातृभाषा पर यथेष्ट ध्यान दिया जाये।"

माइकल वेस्ट के अनुसार, "भाषा ही वह सत्य है, जिससे हमारी आत्मा का गठन होता है। भाषा का महत्व केवल बौद्धिक विकास में ही नहीं है अपितु चारित्रिक विकास में भी है जिसके फलस्वरूप देश का प्रत्येक नागरिक अच्छे गुणों से युक्त हो सकता है।"

11. मातृभाषा छात्रों की सृजनात्मक प्रतिभा का विकास करती है— मातृभाषा पर धीरे-धीरे अधिकार कर लेने तथा मातृभाषा के साहित्य से पर्याप्त प्रेरणा प्राप्त कर लेने के पश्चात् छात्र मातृभाषा में अपनी इस क्षमता के आधार पर कवितायें, कहानियाँ, उपन्यास, लघु कथायें व लेख आदि लिखने लगते हैं। इस प्रकार आत्माभिव्यक्ति का अवसर मिलने से छात्रों की सृजनात्मक प्रतिभा का विकास होता है।

12. मातृभाषा ज्ञान का प्रसारण एवं संरक्षण करती है— संचित ज्ञान एवं उपलब्धियों की जानकारी तथा उसके प्रसारण एवं संरक्षम में मातृभाषा का विशेष महत्व है। मातृभाषा के शिक्षण से जहाँ ज्ञान एवं उपलब्धियों का पीढ़ी दर पीढ़ी प्रसार होगा वहीं आगामी पीढ़ियों के लिये उसके संचय और सरक्षण में भी सहायता मिलती है। मातृभाषा का सभी विषयों एवं सभी प्रकार के ज्ञान-विज्ञान का माध्यम अथवा वाहन होने के कारण इसके शिक्षण की आवश्यकता एवं महत्व और भी अधिक बढ़ जाते हैं। इसीलिये मातृभाषा को सभी ज्ञान-विज्ञान एवं सभी प्रकार की शिक्षा का आधार समझा गया है।

मातृभाषा का पाठ्यक्रम में स्थान

भाषा मनुष्य तथा पशु का अन्तर है। वह भावों तथा विचारों के संक्रमण, आदान-प्रदान एवं संकलन का सर्वोत्तम साधन है तथा मातृभाषा भाषाओं में सर्वोत्तम है। इस कारण पाठ्यक्रम में मातृभाषा को विशेष स्थान प्रदान किया जाना चाहिये। मातृभाषा पाठ्यक्रम में एक विषय तथा अध्यापक के माध्यम के रूप में स्थान मिलना चाहिये।

ब्रेल्सफोर्ड के अनुसार, "केवल एक ही भाषा में हमारे भावों की स्पष्ट व्यंजना हो सकती है, केवल एक ही भाषा के शब्दों के संकेतों को हम सहज तथा निश्चित रूप में ग्रहण कर सकते हैं। यह भाषा वह होती है जिसे हम अपनी माता के दूध के साथ सीखते हैं, जिसमें हम अपनी प्रारम्भिक प्रार्थनाओं तथा हर्ष एवं शोक से उद्गारों को व्यक्त करते हैं। दूसरी किसी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाना विद्यार्थी के श्रम को आवश्यक रूप से बढ़ाना ही नहीं बल्कि उसके मस्तिष्क की गति को पंगु बना देता है।"

अतएव यह कहा जा सकता है कि मातृभाषा समस्त शिक्षा की आधारशिक्षा है। मातृभाषा पाठ्यक्रम का केवल एक विषय ही न बनकर समस्त पाठ्यक्रम और उसके अन्य सभी पाठ्य-विषयों का माध्यम होने के कारण पाठ्यक्रम में अन्य विषयों की अपेक्षा प्रमुख स्थान रखती है तथा सम्पूर्ण पाठ्यक्रम का आवरण बनी रहती है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

4

मातृभाषा-शिक्षण के सामान्य सिद्धान्त

मातृभाषा शिक्षण के सामान्य सिद्धान्त

जहाँ तक शिक्षण सिद्धान्तों का सम्बन्ध है सभी विषयों के शिक्षण सिद्धान्त लगभग समान होते हैं। शिक्षण में बालकों की रुचियों, प्रवृत्तियों, व्यक्तिगत विभिन्नताओं, क्षमताओं आदि का ध्यान रखा जाता है। आधुनिक मनोविज्ञान शिक्षण में इन प्रवृत्तियों पर विशेष बल दिया जाता है। शिक्षण देते समय विषय एवं बालक दोनों का ही ध्यान रखा जाना आवश्यक है। किन्तु मातृभाषा के साथ यह एक और विशेषता जुड़ी हुई है कि बालक स्वयं ही अनुकरण द्वारा वातावरण से सीखना प्रारम्भ कर देता है। अतएव उसके मातृभाषा का अनुकरण उसी क्रम से कराना आवश्यक है जिस क्रम से बालक स्वाभाविक रूप से भाषा सीखता है। मातृभाषा शिक्षण में जिन सामान्य सिद्धान्तों का ध्यान रखा जाना आवश्यक है, वे निम्नलिखित हैं :—

1. अभिप्रेरणा एवं रुचि का सिद्धान्त— प्रायः यह देखा गया है कि बालक उसी विषय या क्रिया में रुचि लेते हैं जो उनकी जन्मजात इच्छाओं को सन्तुष्ट करती है। मातृभाषा शिक्षण करते समय भाषा एवं उसकी पाठ्य सामग्री के प्रति रुचि उत्पन्न करना आवश्यक है। अतएव हिन्दी पाठ्य सामग्री और उसकी शिक्षण प्रणालियों का चुनाव बच्चों की रुचि एवं आवश्यकताओं के अनुरूप किया जाना चाहिये। हिन्दी भाषा के शिक्षण में बच्चों की रुचि उत्पन्न करने के लिये अध्यापक अनेक उपाय कर सकता है। किसी वस्तु, उसके मॉडल या चित्र को दिखाकर वह बच्चों में उसके बारे में जानकारी की जिज्ञासा उत्पन्न कर सकता है। बच्चों को कवितायें कण्ठस्थ करने की भी प्रेरणा दे सकता है। बच्चों को अन्त्याक्षरी द्वारा भी भाषा सीखने की प्रेरणा दी जा सकती है। अन्त्याक्षरी प्रतियोगिता में जो दल जीतता है उसके प्रत्येक सदस्य की आत्मा गौरव की भावना जागृत होती है।

हरबर्ट ने लिखा है कि, "उन्हें (शिक्षकों को) बालक की रुचि का सर्वदा ध्यान रखना चाहिए। जब बालक की रुचि पढ़ने की ओर नहीं हो, तो उन्हें नहीं पढ़ाना चाहिए। इससे उनके विकास में बाधा पहुँचती है। पाठ पढ़ाने से पूर्व उन्हें पाठ में बालकों की रुचि पैदा करनी चाहिए जिससे पाठ को अच्छी तरह समझ सके।"

पाठ को रुचिकर बनाने के लिए हिन्दी अध्यापक को निम्नलिखित साधनों का प्रयोग करना चाहिए—

1. पाठ पढ़ाने से पूर्व पूर्वज्ञान का पता लगा लें। पूर्वज्ञान के आधार पर नवीन ज्ञान की ओर अग्रसर होवें।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

2. पाठ को मनोरंजक बनाकर पढ़ाना चाहिए।

3. बालकों की रुचि एवं क्षमता के आधार पर प्रश्न पूछें।

4. पाठन के समय दृश्य-श्रव्य उपकरणों (Audio-Visual Aids) का प्रयोग करना चाहिए।

5. छात्रों के साथ सहानुभूतिपूर्वक व्यवहार होना चाहिए।

6. छात्रों को यथासम्भव दण्ड न दिया जाये।

7. अध्यापन खेल द्वारा, क्रिया द्वारा एवं अनुभव द्वारा (Play way method, learning by doing and learning by experience) सम्पादित किया जाये।

8. व्याकरण एवं रचना छात्रों को नीरस ज्ञान पड़ते हैं। इन्हें निगमन एवं प्रायोगिक पद्धति के माध्यम से पढ़ाना चाहिए।

9. रचना तथा गद्य की अन्य विधाओं में चित्र, उदाहरण, तुलना, संस्मरण आदि का प्रयोग करना चाहिए ताकि छात्र पाठ में पूरा आनन्द लें।

2. क्रियाशीलता का सिद्धान्त— बालक क्रियाशील होता है। उसे करके सीखने (learning by doing) में आनन्द का अनुभव होता है। प्रायः सभी प्रमुख शिक्षा-शास्त्रियों ने, जिनमें फ्रोबेल, डिवी, गांधी, पार्क, मॉन्टेसरी, ईस्ट आदि मुख्य हैं, इस सिद्धान्त पर बल दिया है। भाषा की शिक्षा प्रदान करते समय भी क्रियाशीलता के सिद्धान्त को अपनाना आवश्यक है। भाषा शिक्षण के समय छात्रों को सतत् क्रियाशील रखने के लिए प्रश्न पूछना, स्कूल के साहित्यिक कार्यक्रम चलाना, छात्रों को उसमें क्रियाशील रखना, पाठों का अभ्यास कराना, मौखिक व लिखित कार्य कराना आदि कार्य अपनाये जा सकते हैं। इससे छात्रों की अध्ययन में रुचि बढ़ती है। पाठ शीघ्र सहज ग्राह्य होता है तथा कक्षा का वातावरण गतिशील होता है।

3. अभ्यास का सिद्धान्त— मनोविज्ञान का यह माननां है कि पाठ जितनी तेजी से बालक याद करते हैं, उससे तीव्रतर गति से विस्मृत करते हैं। इसी कारण अभ्यास का सिद्धान्त आवश्यक है। इससे विस्मृति रुकती है तथा छात्रों का ज्ञान उत्तरोत्तर विकसित होता है। भाषा के कलात्मक पक्ष के लिए अभ्यास सर्वथा आवश्यक है।

थार्नडाइक ने कहा है कि, "भाषा एक कौशल है और इसका विकास अभ्यास पर ही निर्भर है।" अभ्यास का क्रम टूट जाने पर भाषा का अधिकार धीरे-धीरे समाप्त हो जाता है। अभ्यास से ज्ञान में उत्तरोतर वृद्धि होती है। भाषा की ज्ञान-वृद्धि के लिये अभ्यास, लगन, रुचि, निष्ठा एवं परिश्रम की आवश्यकता है। भाषा को बोलने एवं लिखने का निरन्तर अभ्यास बालक की भाषा को सशक्त बनाता है, उसमें सरसता, सौष्ठव एवं माधुर्य लाता है। भावाभिव्यक्ति, व्याकरण, शब्दावली आदि अभ्यास पर निर्भर है।

4. जीवन समन्वय का सिद्धान्त— प्रत्येक स्तर पर बच्चों का एक संसार होता है और जैसे-जैसे वे बड़े होते जाते हैं वैसे-वैसे ही अपने ढंग से एक नये संसार की कल्पना करनने लगते हैं। मनोवैज्ञानिकों ने यह सिद्ध किया है कि बच्चे उन विषयों एवं क्रियाओं में अधिक रुचि लेते हैं जो उनके वास्तविक जीवन से सम्बन्धित होती है। अतः अध्यापक को चाहिये कि जो वह बच्चों को पढ़ाने के लिये पाठ्यसामग्री चुने, उनका सम्बन्ध इनके जीवन से हो। पाठ्य-पुस्तक की सामग्री का सम्बन्ध उनके जीवन से अवश्य जोड़ना चाहिये अन्यथा वे उसे सीखने में रुचि नहीं लेंगे। साहित्य के दो पक्ष होते हैं— गद्य एवं पद्य। अध्यापक को

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चाहिए कि बच्चों को गद्य शिक्षण के समय व्याकरण का व्यावहारिक ज्ञान एवं पद्य शिक्षण के समय शब्द-शक्ति, शब्द-योजना, छन्द, अलंकार एवं रसों का ज्ञान अवश्य कराये।

5. निश्चित उद्देश्य एवं पाठ्य सामग्री का सिद्धान्त— हिन्दी भाषा शिक्षण के एक नहीं अनेक उद्देश्य होते हैं। हमें बच्चों के ज्ञान, कौशल, रुचि एवं अभिवृत्ति का विकास करना होता है। प्रत्येक उद्देश्य की प्राप्ति एक निश्चित अनुपात में होनी चाहिए। किसी उद्देश्य पर आवश्यकता से अधिक बल देना अथवा किसी को बिल्कुल ही छोड़ देना ठीक नहीं है। कुछ निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए हमें पाठ्य-सामग्री का चयन करना आवश्यक है। पाठ्य-सामग्री की एक रूपरेखा होनी चाहिए, उसे स्थूल रूप में देना शिक्षक का कार्य है। प्राथमिक स्तर पर बच्चों को वर्णनात्मक निबन्ध लिखना सिखाया जाये और उन निबन्धों का क्या स्तर हो, यह अध्यापक को स्वयं निश्चित करना चाहिये। हिन्दी शिक्षण द्वारा अध्यापक को बच्चों में सौन्दर्यानुभूति को जागृत करने का प्रयत्न करना चाहिये। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि अध्यापक को शिक्षा देने से पूर्व पाठ के उद्देश्य और उन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये विषय का चयन बच्चों के स्तर के अनुकूल करना चाहिये।

6. वैयक्तिक विभिन्नता का सिद्धान्त— मनोविज्ञान व्यक्तिगत विभिन्नता के आधार पर शिक्षण देना चाहता है। सभी प्रगतिशील शिक्षाशास्त्रियों ने वैयक्तिक विभिन्नता के सिद्धान्त पर बल दिया है। एक ही कक्षा का छात्रों में वैयक्तिक विभिन्नतायें होती हैं। कोई छात्र शुद्ध उच्चारण नहीं करता, तो किसी का लेख स्पष्ट नहीं होता, किसी का वांचन ठीक नहीं, तो किसी का लेख अशुद्ध है, कोई मौन पाठ नहीं कर पाता तो कोई कई बार याद करने पर भी तथ्य भूल जाता है। इसलिए अध्यापक को इन सबकी वैयक्तिक विभिन्नता एवं कठिनाइयों को ध्यान में रखकर शिक्षण प्रदान करना चाहिए। छात्रों की व्यक्तिगत कठिनाइयों का भी निवारण करने का प्रयास करना चाहिए। इसी कारण शिक्षा शास्त्रियों एवं मनोवैज्ञानिकों ने वैयक्तिक भिन्नता के सिद्धान्त पर विशेष बल दिया है।

7. अनुपात और क्रम का सिद्धान्त— अध्यापक भाषा सिखाने के लिए पाठ्यपुस्तक के एक दो पृष्ठ पढ़ाने, व्याकरण के नियम बताने और रचना कार्य देने के अतिरिक्त अपना कर्त्तव्य और कुछ भी नहीं समझता। परिणामतः भाषा के सभी अंगों की शिक्षा अधूरी रहती है। भाषा सिखाने के केवल व्यावहारिक उद्देश्य के लिए भी बोलकर समझाने, लिखकर समझाने और सुनकर समझाने तथा पढ़कर समझाने की आवश्यकता है। भाषा शिक्षण के दो अंग हैं— ग्रहण और अभिव्यक्ति। दूसरों के विचारों को ग्रहण करने प्रक्रिया दो प्रकार से होती है—

1. पढ़ने से 2. सुनने से।

इसी प्रकार अपने विचारों को प्रकट करने की प्रक्रिया भी दो प्रकार से होती है—

1. पढ़ने से 2. बोलने से।

संक्षेप में विद्यार्थी के सामने भाषा सीखने के चार उद्देश्य हैं—

(i) दूसरों के मुख से सुनकर समझने की योग्यता प्राप्त करना।

(ii) स्वयं बोलने की योग्यता प्राप्त करना।

(iii) पुस्तक आदि को पढ़ने और पढ़कर समझने की योग्यता प्राप्त करना।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

(iv) तथा अपने विचारों को व्यक्ति करने के लिये सीखने की योग्यता प्राप्त करना।

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भाषा के इन चार अंगों में उपयुक्त क्रम ही अपेक्षित है— अध्यापक को यह क्रम ध्यान में रखना चाहिये। सिखाने के लिए क्रम यह है—

1. अध्यापक का बोलना और विद्यार्थी का समझना।

2. विद्यार्थी का अनुकरण करना और बोलने का अभ्यास करना।

3. विद्यार्थी की पुस्तक पढ़ना, शब्दावली आदि के ज्ञान की वृद्धि करना, व्याकरण सीखना, समझने की योग्यता प्राप्त करना।

4. रचना द्वारा अपने विचारों को शुद्ध भाषा में प्रकट करना।

8. जीवन एवं अनुभवों से सम्बन्ध— जिस विषय-वस्तु का बच्चों के अपने निजी अनुभवों एवं दैनिक जीवन से सम्बन्ध रहता है और जो उनके दिन-प्रतिदिन के जीवन में उनके अनुभव में आती रहती है उनसे यदि शिक्षण का सम्बन्ध जोड़कर अध्यापन कार्य किया जाये तो बच्चे सरलता से सीखेंगे और रुचि भी लेंगे। अतः बच्चों को उनके खेल-खिलौने, पशु-पक्षी, कथा-कहानी आदि से शिक्षण का सम्बन्ध बनाते हुए पढ़ाना चाहिये।

9. अनुकरण सिद्धान्त— बच्चे अनुकरण द्वारा शीघ्रता से सीखते हैं। इसलिये बच्चे अपने शिक्षक के बोलने, लिखने, स्वर एवं गति आदि का अनुकरण करके वैसा ही सीखने का प्रयत्न करते हैं। यदि माता-पिता और विद्यालय में शिक्षक के बोलने के ढंग में अन्तर हो तो बच्चे शिक्षक के बोलने के ढंग का अनुकरण करना अधिक पसन्द करते हैं। यही कारण है कि बच्चों को विद्यालय में भेजने से उनके बोलने तथा भाषा ज्ञान आदि में विकास होता है और वे सुधरी, सँवरी शुद्ध भाषा बोलना सीख जाते हैं। अतः शिक्षकों को स्वयं अपने उच्चारण, स्वर, बोलने की गति, लेखन आदि को शुद्ध, स्वच्छ रखने का ध्यान रखना चाहिए जिससे छात्र भी उनका अनुकरण करके शुद्ध, स्वच्छ और ठीक स्वर एवं गति से पढ़ना-लिखना सीख सकें।

10. बोलचाल का सिद्धान्त— भाषा-शिक्षण की पुरानी पद्धति के अनुसार कक्षा में अध्यापक आता था, पाठ को पढ़ाता था, धाराप्रवाह बोलता था, कक्षा के बालक मूक श्रोता बनकर सुनते थे, परन्तु कक्षा का वातावरण शान्त हो, अध्यापक सक्रिय और बालक बहरे, गूँगे जैसे बैठे हों, तो भाषा-शिक्षण कदापि प्रभावकारी नहीं होगा। इसी कारण आज के शिक्षा शास्त्रियों एवं मनोवैज्ञानिकों ने बोलचाल के माध्यम से भाषा की शिक्षा पर बल दिया है। बोलचाल के शिक्षण में दो बातें मुख्य हैं—

1. कानों द्वारा सुनना।

2. मुख द्वारा बोलना।

कॉमेनियम और **जौनलॉक** ने कहा है कि, "भाषा को पहले बोलचाल के माध्यम से पढ़ाना चाहिए।" बोलचाल के सिद्धान्त की निम्नलिखित उपयोगिता है—

1. भाषा का सम्बन्ध मुख एवं कान से है। इसका अर्थ बोलने एवं सुनने से है। इस कारण बोलचाल भाषा शिक्षण के लिए उपयोगी है।

2. बोलचाल की पद्धति से बालकों का ध्यान पाठ की ओर तीव्र गति से आकृष्ट होता है। उनका ध्यान पाठ में एकाग्रित हो जाता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE 2025-Grant

3. बोलचाल के द्वारा अगर भाषा की शिक्षा प्रदान किया जाये तो भाषा सीखने में कम समय लगता है।

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

4. बोलचाल के माध्यम से प्राप्त किया गया ज्ञान विस्मृत नहीं होता है। वह स्थायी हो जाता है।

5. इससे छात्र व्याकरणसम्मत, शुद्ध, परिष्कृत, गतिशील, रोचक एवं स्वाभाविक भाषा बोलने लगता है।

6. बोलचाल की पद्धति से छात्रों को अपने विचारों एवं भावों की अभिव्यक्ति का पूर्ण अवसर प्राप्त होता है। इससे उनकी सृजनात्मक शक्ति एवं अभिव्यक्तिकरण की क्षमता में वृद्धि होती है।

7. इस पद्धति से छात्रों का उच्चारण सुधरता है, लय, मात्रा, चिन्ह आदि का समुचित प्रयोग होने लगता है।

इस प्रकार भाषा-शिक्षण की यह विधि बड़ी उपयोगी एवं आकर्षक है।

11. चयन का सिद्धान्त— हिन्दी भाषा शिक्षण के लिए कब, किस सिद्धान्त या पद्धति का सहारा लिया जाये, इसकी सटीक जानकारी अध्यापक को होनी चाहिए। किसी पाठ को किस रूप में उपस्थित करके छात्रों को सरल एवं सहज ग्राह्य बनाया जाये, इसके लिए अध्यापक को बहुमुखी प्रयास करना चाहिए और जो रूप अधिक प्रभावकारी हो, उसका चयन करना चाहिये जिससे छात्र लाभान्वित हो सकें।

12. बालकेन्द्रिता का सिद्धान्त— भाषा शिक्षण के समय इस बात पर पर्याप्त ध्यान देना चाहिये कि शिक्षण का केन्द्र बालक है। अध्यापक के समय इतना आत्मविभोर नहीं होना चाहिए कि बालक विस्मृत हो जाए। इसलिए भाषा-शिक्षण का केन्द्र बालक हो। बालक को स्वभाव, क्षमता, रुचि, स्तर आदि का ध्यान रखकर शिक्षण प्रदान करना चाहिये।

13. शिक्षण सूत्रों का सिद्धान्त— शिक्षण के कुछ सामान्य सूत्र हैं जिनके अनुसार शिक्षण कार्य करने से बचचों को सीखने में सरलता, सुगमता और स्थायीत्व प्राप्त होता है, जैसे 'सरल से कठिन की ओर', 'ज्ञात से अज्ञात की ओर', 'मूर्त से अमूर्त की ओर', 'विशिष्ट से सामान्य की ओर', 'अगमन के निगमन की ओर', 'विश्लेषण से संश्लेषण की ओर' आदि। शिक्षण में इन सूत्रों का आधार और पालन करने से शिक्षण अधिक प्रभावकारी होता है।

14. साहचर्य सिद्धान्त— बच्चे दूसरों को सुनकर बोलना तो सीखते ही रहते हैं परन्तु इस प्रकार सीखे गये शब्दों को समझने के लिये साहचर्य का होना आवश्यक है। बच्चा माँ को माँ या मम्मी कहने के साथ पहचानना और समझना तभी सीख सकेगा जब शब्द (माँ) के उच्चारण के साथ स्वयं माँ को और शब्द पिताजी या पापा के उच्चारण के साथ स्वयं पिता को भी देखेगा। इस प्रकार शब्दोच्चारण और वस्तु अथवा व्यक्ति विशेष दोनों का साथ-साथ अर्थात् साहचर्य होने से ही बच्चों को उस शब्द की समझ और पहचान हो सकेगी। इसी प्रकार अन्य शब्द जैसे दूध, पानी, चिडिया, कुत्ता, बिल्ली आदि को दिखाकर इन शब्दों को बोलने से वह इन शब्दों को समझने लगता है और इन वस्तुओं को देख कर उनका नाम उच्चारण करना सीख जाता है। यह सब साहचर्य के सिद्धान्त की ही महिमा है कि बच्चे आरम्भ में लिपि का ज्ञान भी अक्षर 'अ' की आकृति के साथ-साथ वस्तु 'अमरूद' का चित्र भी साथ में बना हुआ देखते हैं और इसी प्रकार 'क' अक्षर से साथ 'कबूतर' आदि का चित्र और दोनों के साहचर्य से अक्षर ज्ञान सरलता पूर्वक प्राप्त कर लेते हैं। अतएव बच्चों को भाषा शिक्षण के लिए जितनी अधिक प्रत्यक्ष वस्तुओं अथवा उनकी आकृतियों,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चित्रों, माडल आदि दिखाकर साहचर्य का अवसर दिया जायेगा उतनी ही सरलता एवं सुगमता से वे भाषा सीखने में समर्थ होंगे।

15. आवृत्ति का सिद्धान्त— मनोवैज्ञानिक प्रयोगों से सिद्ध हो चुका है कि हिन्दी सीखने में आवृत्ति का बहुत बड़ा महत्व है। सीखी हुई बात को जितना अधिक दोहराया जायेगा वह उतनी ही अधिक देर तक याद रहेगी। बच्चों को जो कुछ पढ़ाया जाये उसकी आवृत्ति उसी समय अथवा उसी दिन तो की ही जा सकती है, साथ-साथ जब भी अवसर मिले उस ज्ञान अथवा क्रिया का प्रयोग करते रहना चाहिये। कुछ विद्वान् इस सिद्धान्त को प्रयोग का सिद्धान्त भी कहते हैं। प्रयोग में सीखे हुए ज्ञान या क्रिया की ही आवृत्ति होती है। इसलिए हमें इसे आवृत्ति का सिद्धान्त ही कहना उचित है। एक क्रिया या ज्ञान की किसी बात को बार-बार दोहराने से वह अच्छी प्रकार से याद हो जाती है। इसलिए किसी ने कहा है कि बार-बार दोहराना स्मृति के माता और पिता हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

5

मातृभाषा-शिक्षण के उद्देश्य

हिन्दी भाषा को मातृभाषा के रूप में भारत के अधिकांश क्षेत्रों में पढ़ाया जाता है। दक्षिण भारत तथा अन्य कुछ राज्यों में इस हिन्दी भाषा को द्वितीय भाषा के रूप में रखा गया है।

भाषा के विषय में **श्री पंत** ने लिखा है, "भाषा संसार का नामदय स्वरूप है। यह विश्व हृदय यंत्रों की झंकार है जिनके स्वर में यह अभिव्यक्ति पाती है।" भाषा वह शक्ति है जिसके माध्यम से हम अपने विचार दूसरों पर प्रकट करते हैं तथा दूसरे के विचारों को समझते हैं। भाषा के आधार पर ही मनुष्य शाश्वत साहित्य को जन्म देता है। इस दृष्टि से भाषा शिक्षण के तीन मुख्य उद्देश्य हैं—

1. भाव प्रकाशन, 2. भाषा ग्रहण, 3. सृजन

भाषा शिक्षण के विषय में विभिन्न विद्वानों के द्वारा व्यक्त किये गये विचार निम्नलिखित हैं—

के क्षत्रिया के अनुसार, "भाषा शिक्षण विद्यार्थियों को शुद्ध, सरल, मधुर, स्पष्ट तथा प्रभावोत्पादक भावाभिव्यक्ति में सफल बना सके, चाहे वह अभिव्यक्ति मौखिक हो या लिखित। दूसरी ओर दूसरों की कथित अथवा लिखित बात को समझने की क्षमता प्रदान कर सके।"

सीताराम चतुर्वेदी के अनुसार, "भाषा की शिक्षा का यह उद्देश्य है कि हम दूसरों की कही तथा लिखी हुई बातें ठीक-ठीक समझ तथा पढ़ सकें और शुद्ध प्रभावोत्पादक तथा रमणीक ढंग से लिख तथा बोल सकें।"

मातृभाषा शिक्षण के उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

1. ज्ञानात्मक उद्देश्य— भाषा का साहित्य से सम्बन्धित ज्ञान ही ज्ञानात्मक उद्देश्य हैं। ज्ञानात्मक उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

(i) सूक्तियों तथा लोकोक्तियों का ज्ञान।

(ii) काव्य-कथा-निबन्ध-उपन्यास तथा नाटक आदि का ज्ञान।

(iii) विद्यार्थियों को ऐतिहासिक, भौगोलिक, वैज्ञानिक आदि तथ्यों का परिचय देना।

(iv) विद्यार्थियों को ध्वनि तत्व का ज्ञान देना।

(v) कल्पना तुलना मनोविश्लेषण तथा वर्गीकरण आदि का बोध कराना।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

(vi) शब्द का वाक्य-विन्यास की कला का ज्ञान।

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

(vii) हिन्दी का साहित्यिक तथा सौन्दर्यानुभूत्यात्मक ज्ञान।

2. कौशलात्मक उद्देश्य— कौशलात्मक उद्देश्य में लेखन, पठन, श्रवण, कथन और अर्थभाव-ग्रहण आदि आते हैं।

कौशलात्मक उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

(i) अर्थ ग्रहिका शक्ति, भाव संयोजन कथा तथा अभिव्यक्ति की क्षमता का विकास।

(ii) मुहावरों तथा लोकोक्तियों का समुचित विकास।

(iii) मूल्यांकन की क्षमता।

(iv) विद्यार्थियों को शुद्ध तथा परिष्कृत सस्वर वाचन का ज्ञान देना।

(v) वक्तृत्व कला का विकास करना।

(vi) गति-यति-लय तथा आरोह व अवरोह क्रम से वाचन की क्षमता।

3. सृजनात्मक उद्देश्य— सृजनात्मक उद्देश्य में कविता, गद्य, निबन्ध, कथा, पत्र, उपन्यास तथा संवाद आदि आते हैं। सृजनात्मक उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

(i) काव्य कथा, निबन्ध, पत्र, सम्वाद तथा उपन्यास आदि की रचना को प्रोत्साहन।

(ii) स्वानुभूति का परिचय तथा स्वाध्याय की प्रेरणा देना।

(iii) रचना की प्रवृत्ति का विकास तथा प्रोत्साहन।

(iv) विद्यार्थियों की मौलिकता का विकास।

(v) विविध शैली का परिचय, चिन्तन, कल्पना तथा तर्क आदि के अनुसार संरचना।

4. अभिवृत्यात्मक उद्देश्य— अभिवृत्तियों का उचित विकास, कृतियों का उद्भव तथा मौलिकता का उदय होता है। इसमें दो अभिवृत्तियों का विकास होता है।

(1) सद्वृत्तियों का विकास। (2) भाषा तथा साहित्य में रुचि।

अभिवृत्यात्मक उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

(i) पाठ्यक्रम के साथ-साथ अन्य ग्रन्थों का अध्ययन।

(ii) शैक्षणिक साहित्यिक आयोजनों में विद्यार्थियों को उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य सम्पादन।

(iii) ग्रन्थालय का उपयोग।

(iv) संस्कृति, सभ्यता अध्ययन तथा सांस्कृतिकता।

(v) विद्यार्थियों में रुचि का उत्पादन।

(vi) विद्यालय की पत्रिका से विद्यार्थियों का योगदान।

(vii) कवियों की कृतियाँ, उनके साहित्य ग्रन्थों का अध्ययन करके उनके विचारों को रचनाबद्ध करना।

(viii) साहित्यिक गतिविधियों में पाठ्येतर क्रियाकलापों में सहयोग देना।

हिन्दी-भाषा (मातृभाषा) शिक्षण के सामान्य उद्देश्य

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

(i) शुद्ध लिखना तथा बोलना हिन्दी-शिक्षण का उद्देश्य है।

 Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

(ii) शुद्ध, सरल, प्रभावपूर्ण एवं स्पष्ट भाषा में अपने भावों, अनुभूतियों एवं विचारों को व्यक्त करना।

(iii) दूसरों की लिखित एवं मौखिक भाषा को समझने की योग्यता उत्पन्न करना।

(iv) विद्यार्थियों को उचित हाव-भाव आरोह एवं अवरोहों के साथ वाचन की कला बताना भी भाषा-शिक्षण का उद्देश्य है।

(v) विद्यार्थियों के ज्ञान, विवेक एवं चरित्र का विकास करना।

(vi) पठन-पाठन के प्रति रुचि पैदा करना तथा साहित्य का रसास्वादन करना।

(vii) विद्यार्थियों की सृजनात्मक व रचनात्मक क्षमता का विकास करना, पुस्तकों के निहित ज्ञान का ज्ञानार्जन करना तथा स्वाध्याय की क्षमता पैदा करना भाषा-शिक्षण का लक्ष्य है।

(viii) विद्यार्थियों को सद्साहित्य की रचना के योग्य बनाना तथा मानव-जीवन की विविध परिस्थितियों का अध्ययन कराकर उन्हें भावी जीवन के लिये तैयार करना।

(ix) हिन्दी भाषा की विविध शैलियों का ज्ञान कराना भी भाषा-शिक्षण का लक्ष्य है।

(x) विविध लोकोक्तियों, मुहावरों आदि का ज्ञान कराना।

(xi) विद्यार्थियों में क्रमबद्ध विचार, भावाभिव्यंजना तथा ज्ञानार्जन के प्रति गहरी रुचि उत्पन्न करना।

(xii) साहित्य का लक्ष्य उत्तम नागरिक पैदा करना भी है। इसलिए हिन्दी-शिक्षण का उद्देश्य नागरिकता के उत्तमोत्तम गुणों का विकास भी है।

1. प्राथमिक स्तर पर हिन्दी भाषा (मातृभाषा) शिक्षण के उद्देश्य

प्राथमिक स्तर पर हिन्दी-शिक्षण के उद्देश्य निम्नांकित हैं—

(i) छात्रों को इस योग्यता तक पहुँचाना कि वे निर्धारित पाठ्यक्रम की शब्दावली व समकक्ष स्तर की शब्दावली को समझ सकें।

(ii) छात्रों को इस प्रकार की क्षमता से युक्त करें कि वे निर्धारित ज्ञान का सस्वर वाचन कर सकें।

(iii) छात्रों के उच्चारण को शुद्ध बनाना तथा पाठ्यक्रम के स्तर की भाषा को भली-भाँति बोल सकें, ऐसी क्षमता प्रदान करना।

(iv) छात्रों के विचारों को क्रमशः क्रमबद्ध रूप से विकसित करना।

(v) छात्रों को इस प्रकार क्षमताशील बनाना चाहिये कि वे मौनवाचन करके तथ्यों को याद कर लें या सहजग्राह्य कर लें।

(vi) छात्रों में शब्द-भण्डार में क्रमशः वृद्धि करना। बालकों में ऐसी क्षमता भी लानी है कि वे छोटे-छोटे वाक्य या वाक्यांश बना लें।

(vii) वाचन को शुद्ध बनाना, प्रवाहपूर्ण बनाना तथा प्रभावोत्पादक बनाना हिन्दी-शिक्षण का उद्देश्य है।

(viii) छात्रों को इस प्रकार से तैयार करना चाहिए कि उनसे जो प्रश्न (उनके स्तर का) पूछा जाये, उसका उत्तर अपने शब्दों में दे सकें।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

(ix) कविता पाठ का वाचन छात्रों को सस्वर करना चाहिये।

(x) सुलेख एवं श्रुतिलेख पर विशेष बल देना चाहिये।

(xi) छात्रों को लिपी का सही ज्ञान कराया जाये तथा उनका जमकर अभ्यास कराया जाये।

(xii) छात्रों में पढ़ने की आदत डालना, लेख या पाठ का भाव ग्रहण करने के योग्य बनाना हिन्दी-शिक्षण का उद्देश्य है।

(xiii) पढ़ने की गति के अतिरिक्त पठन की शुद्धता पर भी पर्याप्त ध्यान देना चाहिये।

(xiv) छात्रों को पढ़े हुए तथ्यों को वार्तालाप या नाटकीयता के रूप में ढालना चाहिये। इससे उनमें अभिव्यक्ति व भावाभिव्यक्ति के भावों का विकास होता है।

(xv) छात्रों की बोध शक्ति का विकास करने के लिये उनके शब्द-भण्डार का विकास करना एवं विभिन्न विषयों को पढ़ने की योग्यता उत्पन्न करना।

2. जूनियर-स्तर हिन्दी भाषा (मातृभाषा) शिक्षण के उद्देश्य—

(i) विद्यार्थी भाषा की शुद्धता समझ सकें, इसके लिये उन्हें व्याकरण का ज्ञान प्रदान करना।

(ii) विद्यार्थियों की सौन्दर्य भावना को विकसित करना।

(iii) विद्यार्थियों में स्वाध्याय की प्रवृत्ति का विकास करना।

(iv) प्राथमिक स्तर के निर्धारित उद्दश्यों का धीरे-धीरे इस स्तर तक पूर्ण विकास करना।

माध्यमिक स्तर पर हिन्दी-भाषा (मातृभाषा) शिक्षण के उद्देश्य

इस स्तर पर पहुँचने के पूर्व छात्र को अपनी मातृभाषा हिन्दी की जानकारी हो जाती है। वह लेखन एवं पाठन में कुछ दक्षता प्राप्त कर लेता है। उसमें श्रवण एवं अभिव्यक्ति की भी क्षमता रहती है। इसलिए इस स्तर पर हिन्दी शिक्षण के उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

(i) छात्रों में पठन कला की निपुणता की भावना भरना।

(ii) छात्रों में सौन्दर्यानुभूति की भावना का विकास करना तथा बालकों में पाठ के रस भावों को समझने एवं ग्रहण करने की क्षमता पैदा करना।

(iii) छात्रों को उचित गति से लिखने का अभ्यास करना।

(iv) छात्रों को क्षेत्रीय लोकोक्तियों एवं मुहावरों का ज्ञान कराना।

(v) छात्रों के शब्द एवं सूक्ति भंडार में वृद्धि करना।

(vi) छात्रों को निबन्ध, संवाद, सारांश-पत्र आदि लिखने की कला में दक्षता पैदा करने का प्रयास करना।

(vii) उनमें स्वाध्याय की प्रवृत्ति विकसित करना।

(viii) छात्रों को व्याकरण के नियमों आदि से परिचित कराना।

(ix) छात्रों में अभिनय, अनुकरण एवं संवाद की योग्यता पैदा करना।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

(x) छात्रों में मौन वाचन की आदत का विकास करना तथा मौनवाचन के माध्यम से तथ्यों को ग्रहण करने की क्षमता पैदा करना।

उच्चतर माध्यमिक स्तर पर हिन्दी भाषा (मातृभाषा) शिक्षण के उद्देश्य

उच्चतर माध्यमिक स्तर का छात्र हिन्दी भाषा एवं साहित्य की विविध विधाओं की सामान्य जानकारी रखने लगता है। इस स्तर पर भाषा शिक्षण के निम्नांकित उद्देश्य होंगे—

(1) छात्रों में भाषा के अधिकाधिक अध्ययन करने की प्रेरणा पैदा करना।

(2) उनमें स्वरचित कविता तथा निबन्धादि के लिए प्रोत्साहन प्रदान करना।

(3) छात्रों में मौखिक एवं लिखित भाषा के माध्यम से बोध व भावग्रहण करने की क्षमता का विकास करना।

(4) छात्रों को इस योग्य बनाना कि पाठ्यक्रम की विविध शाखाओं की शब्दावली, भाव, अभिव्यंजना आदि ग्रहण करने की प्रवृत्ति का विकास हो।

(5) अपनी मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा के अन्य विषयों या पाठ्यक्रम के अन्य विषयों को समझने की क्षमता पैदा करना।

(6) छात्रों में सस्वर एवं मौन वाचन के माध्यम से उन्हें भाव ग्रहण के लिये तैयार करना।

(7) छात्रों में शुद्ध उच्चारण तथा सृजनात्मक क्षमता की वृद्धि करना।

(8) छात्रों में मौखिक एवं लिखित कुशलता एवं क्षमता की प्रवृत्ति पैदा करना।

(9) छात्रों में लिखित अभिव्यक्ति की शैलियों एवं विधाओं का ज्ञान कराना।

(10) छात्रों में सौंदर्यानुभूति की भावना का विकास करना।

(11) छात्रों में हिन्दी भाषा एवं उसके साहित्य का सामान्य ज्ञान कराना।

(12) कविता के विविध पक्षों एवं गद्य शैली की विविध शैलियों से विद्यार्थियों को परिचित कराना।

(13) छात्रों में चिन्तन की प्रवृत्ति का विकास करना।

(14) छात्रों में सामान्य समालोचना की प्रवृत्ति पैदा करना।

(15) छात्रों को भाषा के व्यावहारिक विश्लेषण में समर्थ बनाना।

(16) छात्रों का चरित्र एवं भावनाओं को विकसित एवं परिष्कृत करना।

(17) भारतीय संस्कृति एवं मातृभाषा के साहित्य का विद्यार्थियों को ज्ञान कराना।

(18) छात्रों को पाठ्यपुस्तकों के अतिरिक्त मातृभाषा की अन्य पुस्तकों एवं साहित्य को पढ़ने के लिए प्रेरणा एवं प्रोत्साहन प्रदान करना।

(19) उच्च कोटि के लेखकों की लेखन शैली का ज्ञान कराकर उन्हें स्वयं अपनी शैली का निर्माण करने में सहयोग प्रदान करना।

(20) उन्हें व्यवहारिकता का ज्ञान एवं अन्य विषयों का साहित्यिक अध्ययन कराना।

उद्देश्यों की प्राप्ति के माध्यम

1. लेखन कला द्वारा— लेखन कला के द्वारा विद्यार्थियों को विचार-अभिव्यक्ति का अवसर दिया जाता है और उन्हें स्वयं वाक्य विन्यास करने का शिक्षण दिया जाता है। पद्य

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अथवा गद्य पढ़ाने के पश्चात् विद्यार्थियों को गृह कार्य प्रदान किया जाता है। विद्यार्थी घर पर अपने आप बगैर किसी के सहयोग के अपना गृह कार्य पूरा करते हैं तथा शिक्षक उनके दोष निकालते हैं। निबन्ध, रचना तथा लेख प्रतियोगिताओं द्वारा विद्यार्थियों की सृजनात्मक शक्ति का विकास होता है। भाषा तथा शैली के विकास के लिये लिखित तथा मौखिक दोनों प्रकार की रचनाओं का अभ्यास कराना अत्यन्त आवश्यक है।

2. प्रश्नों के द्वारा— शिक्षक विद्यार्थियों से उनके बोध-ज्ञान का पता लगाने के लिये परिस्थिति के अनुरूप प्रश्न करता है। विद्यार्थियों द्वारा दिये गये उत्तरों से उनके बोध-ज्ञान का पता लगाने के अतिरिक्त उनके शुद्ध बोलने की शक्ति का भी पता करता है। शिक्षक विद्यार्थियों के शुद्ध उत्तरों को ही स्वीकारता है जिसके कारण विद्यार्थी शुद्ध बोलना सीखते हैं।

3. काव्य शिक्षण के द्वारा— विद्यार्थियों में सौन्दर्यानुभूति को उत्पन्न करने तथा विकसित करने में काव्य शिक्षण का अत्यधिक महत्व है। शिक्षक कक्षा में स्वयं काव्य-पाठ करके वातावरण को सौन्दर्यमय तथा सरस बनाता है। एक विद्वान ने लिखा है कि, "कविता का बोध होने के पश्चात् विद्यार्थियों को भावों की गहराई में उतारने का प्रयत्न किया जाता है। कुछ प्रश्नों की सहायता से विद्यार्थियों को ऐसी स्थिति में लाया जाता है कि वे स्वयं भावों की गहराई में पहुँचकर डुबकियाँ लगाने लगते हैं। समान भाव की कविताओं अथवा पंक्तियों को सुनने एवं सुनाने से इस ओर बहुत सहायता मिलती है।"

4. वाचन द्वारा— विद्यार्थियों को वाचन कला में कुशलता प्रदान करने हेतु सस्वर वाचन कराया जाता है। काव्य-पाठ में विद्यार्थियों से आरोह व अवरोह का मुख्य रूप से ध्यान दिया जाता है।

5. मौन पाठ द्वारा—विद्यार्थियों में बोध शक्ति का विकास करने के लिये मौन-पाठ का अभ्यास कराया जाता है।

6. व्याकरण शिक्षा द्वारा— भाषा की शुद्धता तथा अशुद्धता का ज्ञान कराने के लिये व्याकरण का ज्ञान प्रदान किया जाता है।

7. विभिन्न क्रियाओं द्वारा— वाद-विवाद, नाटक, भाषण तथा सुलेख प्रतियोगिताओं के माध्यम से भी छात्रों की सृजनात्मक तथा रचनात्मक शक्तियों का विकास किया जाता है। इन क्रियाओं में भाग लेने से बालक शुद्ध बोलना तथा मनन करना सीखते हैं। उन्हें आत्म-अभिव्यक्ति के भी अवसर मिलते हैं।

उपर्युक्त माध्यमों के द्वारा मातृभाषा शिक्षण के उद्देश्यों को किसी सीमा तक प्राप्त किया जा सकता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

6

मातृभाषा का अन्य विषयों से समन्वय

आधुनिक शिक्षा का प्रमुख दोष उसका समन्वय-रहित होना है। पढ़ाये जाने वाले विभिन्न विषयों में किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं स्थापित किया जाता। हिन्दी भाषा का शिक्षण करते समय इतिहास तथा भूगोल की चर्चा व्यर्थ समझी जाती है।

समन्वय का अर्थ

समन्वय का अर्थ है विद्यालय में पढ़ाये जाने वाले विभिन्न विषयों में परस्पर सह-सम्बन्ध स्थापित करना। सह-सम्बन्ध के अर्थ को स्पष्ट करने के लिये अनेक विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से निम्नलिखित परिभाषायें दी हैं—

इस विषय में माध्यमिक शिक्षा आयोग के अनुसार, "पाठ्यक्रम में विषयों को एक-दूसरे से अलग कर दिया गया है। विभिन्न विषयों में जो पारस्परिक सम्बन्ध होता है उसका जरा भी ध्यान नहीं रखा गया है। प्रत्येक विषय को एक-दूसरे से अलग करके पढ़ाया जाता है।"

(1) डमविल के अनुसार, "एक विषय को दूसरे विषय के आधीन करने के सिद्धान्त को सामान्यतः समन्वय के नाम से उल्लेख किया जाता है।"

(2) बरनार्ड के अनुसार, "समन्वय विद्यालय के विषयों को यथा सम्भव एक दूसरे से सम्बन्धित करने की कोशिश करता है।"

(3) शाह के अनुसार, "सानुबन्ध शिक्षण विद्यार्थी को उसके अनुभवों के स्तर के अनुसार शिक्षा देने के अलावा कुछ नहीं है।"

एक विद्वान के अनुसार, "शिक्षण के विभिन्न विषयों का एक उद्देश्य होने के कारण अलग-अलग होते हुये भी एकता रखते हैं। भिन्न-भिन्न दिशाओं में आने वाली ज्ञान-रश्मियाँ शिक्षा बिन्दु पर केन्द्रित होती हैं तथा उसके प्रकाश को पाकर विद्यार्थी का व्यक्तित्व खिल जाता है। इस कारण से अनेक विषयों में एक पारस्परिक सम्बन्ध है।"

समन्वय के विभिन्न रूप

(1) क्षितिजीय समन्वय— इसमें विषयों के बीच में सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। यदि शिक्षक भाषा का शिक्षण कर रहा है तो वह इतिहास तथा भूगोल, विज्ञान आदि विषयों का भी वर्णन करेगा। दूसरे शब्दों में वह अन्य विषयों की सामग्री का प्रयोग भाषा के पाठ को समझने के लिये करेगा।

(2) ऊर्ध्वाकार समन्वय— ऊर्ध्वाकार समन्वय में एक ही प्रकार के विभिन्न उप-विषयों में समन्वय स्थापित किया जाता है। जिस प्रकार इतिहास और भूगोल आदि को परस्पर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सम्बन्धित किया जाता है, इसी प्रकार पद्य का शिक्षण करते समय गद्य का पद्य के साथ तथा पद्य का गद्य के साथ समन्वय किया जाता है। ऊर्ध्वाकार समन्वय पाठ को आकर्षक तथा रोचक बनाता है।

मातृभाषा का विज्ञान से समन्वय— आधुनिक युग विज्ञान का युग है। इसलिये भाषा की पाठ्यपुस्तकों में विज्ञान से सम्बन्धित पाठों को रखना आवश्यक है। बेतार का तार, परमाणु शक्ति तथा अणु शक्ति अदि इस प्रकार के ही पाठ हैं। इसलिये शिक्षक का कर्त्तव्य है कि वह इन पाठों को पढ़ाने से पहले इनके विषय में पर्याप्त ज्ञान प्राप्त करे।

मातृभाषा का इतिहास से समन्वय— अनेक ऐतिहासिक काव्य लिखे गये हैं। 'झाँसी की रानी', 'मृगनयनी' आदि ऐतिहासिक उपन्यास लिखे गये हैं। रक्षा-बन्धन, अजातशत्रु, चन्द्रगुप्त तथा स्कन्दगुप्त आदि ऐतिहासिक नाटक हैं। इसलिये यह आवश्यक हो जाता है कि 'झाँसी की रानी' नामक कविता का पाठ कराकर विद्यार्थियों को 1857 के ऐतिहासिक महत्व को समझाया जाये तथा चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त आदि नाटकों के माध्यम से विद्यार्थियों को ऐतिहासिक महत्व समझाया जाये। **क्षत्रिया** के अनुसार, "साहित्य समाज के भूत, वर्तमान, भविष्य तीनों कालों की दर्शन कराता है। हाँ, उस घटनाओं को ज्यों का त्यों अंकित न करके साहित्यकार उसमें अपनी कल्पना के सहारे कुछ नवीन रंग अवश्यक भर देता है परन्तु होता वह सत्य ही है। अतः साहित्य में ऐतिहासिक घटनाओं का स्पष्ट दर्शन होता है।"

मातृभाषा का भूगोल से समन्वय— व्यक्ति का जीवन भौगोलिक परिस्थितियों से प्रभावित होता है, इसलिये भाषा का शिक्षण करते समय उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती है। गद्य के अनेक पाठ भूगोल से सम्बन्धित होते हैं; जैसे— 'हिमालय पर्वत' आदि। ऐसे पाठों को पढ़ाते समय भौगोलिक वर्णन करना आवश्यक हो जाता है। भाषा के शिक्षक को इस प्रकार के स्थलों का उल्लेख प्रभावशाली तथा भावयुक्त शब्दों में करना चाहिये और उसकी भौगोलिक व्याख्या करनी चाहिये।

मातृभाषा का कला से समन्वय— नृत्य-कला, चित्रकला तथा संगीत-कला से सम्बन्धित पाठ भाषा की पाठ्य-पुस्तकों में सम्मिलित किये जा सकते हैं। शिक्षक को इन कलाओं के विषय में यथासम्भव जानकारी प्राप्त करनी चाहिये। कविता के वर्णित दृश्य विद्यार्थियों से बनवाने चाहियें।

मातृभाषा का अन्य विषयों से समन्वय— मातृभाषा का विकास करने के लिये अन्य भाषाओं की अच्छाइयों को सम्मिलित किया जाना आवश्यक है। इसी प्रकार विभिन्न भाषाओं के महत्वपूर्ण ग्रन्थों का अनुवाद मातृभाषा में करवाया जाये। इस प्रकार के अनुवादों से मातृभाषा के साहित्य भण्डार की आसानी से अभिवृद्धि हो सकती है। अंग्रेजी की कविता को पढ़ाते समय उसी से सम्बन्धित हिन्दी की कविता को भी पढ़ाया जाये। अन्य शब्दों में, अंग्रेजी के शब्दों के अर्थों का ज्ञान कराते समय हिन्दी के शब्दों के अर्थों का ज्ञान कराया जाये।

समन्वय करते समय यह ध्यान रहे कि वह स्वाभावित हो, उसमें व्यर्थ की बातों पर जोर न दिया जाये तथा समन्वय विद्यार्थियों के मानसिक स्तर के अनुकूल हो। समन्वय में आवश्यकता से अधिक विषयों का समन्वय न किया जाये। समन्वय का प्रयोग साधन के रूप में किया जाना चाहिये न कि साध्य के रूप में।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

7

भाषा-शिक्षण की विधियाँ

हिन्दी भाषा (मातृभाषा) शिक्षण की विधियाँ

हमारे देश की राष्ट्रभाषा हिन्दी है। किन्तु कुछ प्रदेशों में हिन्दी का चलन नहीं है। जिन प्रदेशों में हिन्दी का चलन नहीं है, वहाँ हिन्दी भाषा-शिक्षण की विधियों का ज्ञान आवश्यक है, जिससे सरलता से सर्वसाधारण राष्ट्रभाषा को समझ सके। प्रशिक्षित शिक्षकों के अभाव में हिन्दी भाषा शिक्षण को प्रभावशाली नहीं बनाया जा सकता। हिन्दी भाषा शिक्षण की प्रमुख विधियाँ निम्नलिखित हैं—

1. प्रत्यक्ष विधि (Direct Method)— प्रत्यक्ष विधि में नवीन भाषा को उसी ढंग से सिखाया जाता है जिस विधि से बालक अपनी मातृभाषा को सीखता है। इस विधि में निम्नलिखित नियमों को अपनाया जाता है—

(i) वार्तालाप की प्रधानता— भाषा-शिक्षण का प्रारम्भ वार्तालाप से किया जाता है। बालक पहले वाक्य बोलना सीखता है। वार्तालाप की बालक को पूर्ण स्वतन्त्रता दी जाती है।

(ii) वार्तालाप के पश्चात् लेखन का आरम्भ— जब बालक वार्तालाप में सफलता प्राप्त कर लेता है तो उसे भाषा की लिपि का भी ज्ञान कराया जाता है तथा लिखने के लिए उत्साहित किया जाता है।

(iii) व्याकरण शिक्षा की आगमन प्रणाली (Inductive Method)-- इस प्रणाली में व्याकरण शिक्षा को अधिक महत्व नहीं दिया जाता। बालक व्याकरण के नियम नहीं रटते, वरन् व्याकरण का ज्ञान उन्हें व्यावहारिक दृष्टि से कराया जाता है। बालक को भाषा का ज्ञान प्राप्त करने के साथ-साथ व्याकरण के नियम भी सिखाये जाते हैं।

इस विधि का प्रयोग करके बालक उच्चारण की शुद्धता सीखते हैं तथा उन्हें वार्तालाप का अभ्यास होता है। व्यर्थ के अनुवाद करके तथा व्याकरण के नियमों को रटने में बालकों का समय व्यर्थ नहीं होता। इस विधि की शिक्षण-प्रणाली भी प्रभावशाली होती है। परन्तु यह प्रणाली पूर्णतया दोषमुक्त नहीं है। बालकों को अपनी मातृभाषा से लगाव जन्म से होता हैं। अतः जो कुछ भी सिखाया जाता है, उसके विषय में सर्वप्रथम मातृभाषा में ही सोचते हैं। डॉ० श्रीधरनाथ मुकर्जी इस विषय में लिखते हैं कि......**किसी भी शिक्षण-विधि में मातृभाषा का उपयोग एकदम बन्द नहीं किया जा सकता। प्रत्यक्ष वस्तु, क्रिया या हाव-भाव दिखाकर, अथवा दृष्टान्तों द्वारा थोड़े-बहुत शब्द अवश्य समझाये जा सकते हैं, किन्तु सभी शब्द इस पद्धति के अनुसार नहीं सिखाये जा सकते, जैसे— विशेषण, भाववाचक संज्ञाएं, इत्यादि।**

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

2. परोक्ष विधि (Indirect Method)— इस विधि में मातृभाषा के माध्यम से किसी नवीन भाषा को पढ़ाया जाता है। इस विधि में निम्नलिखित नियमों को ध्यान में रखा जाता है—

(i) प्रत्येक वाक्य का शब्द मातृभाषा में अनुवादित करके पढ़ाया जाता है।

(ii) पाठ्य-पुस्तकों की रचना व्याकरण के आधार पर ही की जाती है तथा सम्पूर्ण व्याकरण का अनुवाद कर लिया जाता है।

(iii) अनुवाद के माध्यम से नवीन शब्द और मुहावरे उचित प्रकार से समझाये जाते हैं।

(iv) अनुवाद के माध्यम से नवीन भाषा तथा मातृभाषा की तुलना की जाती है।

इस विधि में अनेक दोष हैं— अनुवाद के माध्यम से भाषा सीखने में नवीन भाषा के भाव ठीक प्रकार प्रकट नहीं हो पाते। इस विधि में व्याकरण के नियमों को विशेष महत्व दिया जाता है जिससे शिक्षण बंधा-सा रहता है। छोटे बालक व्याकरण के नियमों से भयभीत होते हैं। अतः उन्हें नवीन भाषा सीखने से भी भय लगता है। इस विधि में केवल वाचन पर ही बल दिया जाता है, जिससे बालक बोलचाल की शिक्षा उचित प्रकार से नहीं प्राप्त कर पाते।

3. गठन विधि (Structure Method)— इस विधि में भाषा के कुछ चुने हुए प्रमुख शब्द और निर्मित समान वाक्यों के माध्यम से भाषा-शिक्षण आरम्भ होता है। इस पद्धति के जन्मदाताओं का विश्वास है कि इस प्रकार के छांटे गये शब्द तथा वाक्यों के ढांचों का प्रयोग करते-करते बालक तीन या चार वर्ष में भाषा का ज्ञान प्राप्त कर लेगा। परन्तु यह पद्धति अंग्रेजी भाषा के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती है। हिन्दी भाषा के वाक्य की रचना में तथा अंग्रेजी भाषा के वाक्य की रचना में अत्यधिक अन्तर है। परन्तु इस विधि का अन्य दोष यह भी है कि इसमें शब्द-रचना का ध्यान नहीं दिया जाता जिससे शब्द-भण्डार के विकसित होने की सम्भावना नहीं रहती। दूसरे मौखिक कार्य पर आवश्यकता से अधिक बल देने के कारण भाषा के अत्य अंग उपेक्षित हो जाते हैं।

इस विधि के आधारभूत सिद्धान्त निम्नलिखित हैं—

(i) मौखिक कार्य को भाषा-शिक्षण का आधार बनाया जाता है।

(ii) छात्रों को भाषा सीखने के लिये प्रेरित किया जाता है।

(iii) वाक्यों के गठन को कण्ठस्थ करा दिया जाता है।

(iv) वाक्यों की संरचनाओं पर विशेष बल दिया जाता है।

(v) अन्य भाषा का प्रयोग किया जा सकता है।

4. वेस्ट की विधि या नवीन पद्धति (West's Method or New Method)— इस पद्धति के निर्माता **डॉ० माइकेल वेस्ट** थे। उन्होंने अंग्रेजी-शिक्षण में प्रयल विधि का प्रयोग किया तथा स्वयं अंग्रेजी पढ़ाने की पद्धति का आविष्कार किया, जो **'वेस्ट की विधि'** या **'नवीन पद्धति'** कहलाई। वेस्ट की विधि के सिद्धान्त निम्नलिखित हैं—

(i) भाषा-शिक्षण में वाचन की प्रधानता— वेस्ट महाशय के अनुसार भाषा शिक्षण का आरम्भ वाचन से किया जाना चाहिये। किसी भाषा में निपुण हो के लिए आवश्यक है कि शब्द का विकास किया जाये। वाचन के द्वारा बालक नये-नये शब्दों की सीखता है जिससे उसके शब्द-कोश का विकास होता है। वाचन के महत्व पर प्रकाश डालते हुए मि० वेस्ट

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लिखते हैं, "Learning to read a language is by far the shortest read to learning, to speak and to write it." वाचन से बालक सरलता से नवीन भाषा सीख जाता है तथा आगे चलकर लिखने में निपुण हो जाता है।

(ii) विभिन्न पद्धतियाँ— वेस्ट महोदय के अनुसार वाचन, लेखन तथा भाषण सिखने के लिये अलग-अलग पद्धतियों का प्रयोग किया जाये किसी पाठ को पढ़ाते समय एक साथ ही तीनों का अभ्यास करना अनुचित है।

(iiii) मातृभाषा का महत्व— वेस्ट महोदय नवीन भाषा के शिक्षण में मातृभाषा के उपयोग को उचित समझते हैं। उनके विचार में नवीन भाषा के शब्दों का ज्ञान कराने के लिये अनुवाद को भी स्थान मिलना चाहिये।

वेस्ट महोदय की यह पद्धति किस सीमा तक उपयोगी सिद्ध हुई है। अंग्रेजी भाषा का शिक्षण भारतीय अध्यापकों के लिए इस पद्धति द्वारा अत्यन्त सुलभ हो गया। इस पर भी इस पद्धति में अनेक दोष भी हैं। वेस्ट महाशय का यह विचार भ्रामक है कि साधारण छात्र वाचन की शिक्षा प्राप्त करें तथा सुलेख और भाषण का अध्ययन केवल प्रतिभावान छात्र ही करें। भाषण-शिक्षण को सफल बनाने के लिए यह आवश्यक है कि समस्त छात्र सही बोल, लिख तथा पढ़ सकें, साथ ही वाचन, लेखन एवं भाषण— तीनों परस्पर एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं, इनको अलग-अलग करके पढ़ाना पूर्णतया अमनोवैज्ञानिक है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

8

हिन्दी भाषा (मातृभाषा) पाठ्यक्रम-निर्माण

पाठ्यक्रम का अर्थ

पाठ्यक्रम के अर्थ के विषय में दो धारणायें हैं—

1. प्राचीन धारणा 2. आधुनिक धारणा।

प्राचीन धारणा के अनुसार, पाठ्यक्रम विभिन्न प्रकार के ज्ञान एवं कुशलताओं का संग्रह है, जो बालक के दृष्टिकोण से नहीं वरन् किसी शिक्षा विशेषज्ञ के दृष्टिकोण से होता है।

आधुनिक धारणा के अनुसार, पाठ्यक्रम अनुभवों, क्रियाओं अथवा जीवन की वास्तविक परिभाषा है। इस धारणा के अनुसार स्थितियों का संचय होता है, जिसमें बालक भाग लेता है और जिसका सामना करता है। हम कह सकते हैं कि पाठ्यक्रम-पाठ्य पुस्तकों, विषय वस्तु अध्ययन के कोर्स से अधिक होता है।

पाठ्यक्रम का शाब्दिक अर्थ (Meaning of Curriculum)– Curriculum शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के currer से हुई है जिसका अर्थ दौड़ का मैदान है। शिक्षा में इसका तात्पर्य विद्यार्थी के दौड़ के मैदान से है। यहाँ पर शिक्षा एक दौड़ के समान है एवं पाठ्यक्रम उस दौड़ के मैदान के समान है, जिसे आरपार करके बालक अपने लक्ष्य को पा जाता है (It is a run-away, a course which runs to reach goal)।

(i) शाब्दिक अर्थ के अनुसार पाठ्यक्रम वह मार्ग है जिसके अनुसार चलकर विद्यार्थी शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल होता है।

(ii) संकुचित अर्थ (Narrower meaning)– संकुचित अर्थ में इसे 'अध्ययन का कोर्स' (Course of Study) या सिलेबस (Syllabus) का दूसरा रूप माना जाता है। इस अर्थ के अनुसार पाठ्यक्रम केवल पुस्तकीय ज्ञान (Bookish Knowledge) माना जाता है।

पाठ्यक्रम कलाकार (अध्यापक) के हाथ में एक साधन है, जिससे वह अपने स्टूडियो (स्कूल, विद्यालय) में अपनी सामग्री (छात्र) को अपने आदर्शों (उद्देश्य एवं लक्ष्य) के अनुसार ढालता है। (Curriculum is a tool in the hand of the artist (Teacher) to mould his Material (Pupil) according to his ideals (aims and objectives) in his sudio (school).

—Conninghm

संकुचित अर्थ के अनुसार पाठ्यक्रम का तात्पर्य अध्ययन के उस कोर्स से है, जिस में बालकों को पुस्तकीय ज्ञान प्रदान करने मात्र की व्याख्या होती है।

(iii) व्यापक अर्थ (Wider Meaning)– वर्तमान समय में पाठ्यक्रम एक व्यापक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

अर्थ में प्रयोग किया जाता है। कुछ विद्वानों के मत 'पाठ्यक्रम में वे समस्त शैक्षणिक अनुभव सम्मिलित होते हैं जो शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्राप्त किये जाते हैं।' **मुनरो,** "संक्षेप में पाठ्यक्रम पाठ्यवस्तु (Contents of Studies) का सुव्यवस्थित रूप है, जो बालकों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तैयार किया जाता है।" **—क्रोनेनवर्ग**

शिक्षा के तीनो अंग— शिक्षक, छात्र और पाठ्यक्रम शिक्षण प्रक्रिया में अपना-अपना विशेष महत्व रखते हैं। विभिन्न शिक्षाविदों ने पाठ्यक्रम की निम्नलिखित परिभाषाएँ दी हैं।

(1) "पाठ्यक्रम विद्यालय के बाहर एवं भीतर शिक्षार्थी के उन समस्त अनुभवों को सम्मिलित करता है जो उस कार्यक्रम में शामिल हैं। जिन्हें उनके सामाजिक, शारिरिक, भावात्मक एवं नैतिक विकास में मदद देने के लिए लागू किया गया है।" **—क्रो और क्रो**

(2) **माध्यमिक शिक्षा आयोग 1952-53** के अनुसार, "पाठ्यक्रम का अर्थ केवल उन सैद्धान्तिक विषयों से नहीं है जो विद्यालय में परम्परागत रूप में पढ़ाये जाते हैं वरन् इनमें बच्चे के वे सभी अनुभव सम्मिलित हैं जिन्हें वह स्कूल, कक्षा, पुस्तकालय, प्रयोगशाला, कार्यशाला, खेल के मैदान के बहुमुखी क्रियाओं से प्राप्त करता है। इसमें वे अनुभव भी सम्मिलित हैं जो बच्चे शिक्षकों और छात्रों के अनौपचारिक सम्बन्धों से प्राप्त होते हैं। इस प्रकार स्कूल का सम्पूर्ण जीवन ही पाठ्यक्रम बन जाता है जो छात्रों के जीवन के सभी पक्षों को प्रभावित कर सकता है और उनके सन्तुलित व्यक्तित्व के विकास में सहायक है।"

(3) "पाठ्यक्रम सम्पूर्ण मानव जाति के ज्ञान एवं अनुभव की कड़ी है।" **—फ्रोबेल**

"Curriculum should be conceived as an epitome of the rounded whold of the knowledge and experience of the human race." **—Frobel**

(4) पाठ्यक्रम वह है जो शिक्षार्थियों को पढ़ाया जाता है। यह सीखना एवं शांतिपूर्ण पढ़ने से अधिक है। इसमें उद्योग, व्यवसाय, ज्ञानोपार्जन, अभ्यास तथा क्रिया सम्मिलित होते हैं। इस प्रकार वह शिक्षार्थी के स्नायुमंडल के संगठन में होने वाले गतिवादी एवं संवेदनात्मक तत्वों को व्यक्त करता है। समाज के क्षेत्र में यह वह सब अभिव्यक्त करता है जो जाति ने संसार के सम्पर्क में कार्य किये हैं। **—होर्नी**

"The curriculum is that which the pupil is taught. It involves more than the acts of learning and quiet study. It involves occupations production, achievements exercise, activity. It thus is nervous system of the side of society, it is representative at what the race, has done in its contact with its world." **—Horne**

(5) सीखने का विषय या पाठ्यक्रम पदार्थों, विचारों और सिद्धांतों का चित्रण है, जो कि उद्देश्यपूर्ण लगातार क्रियान्वेषण से साधन या बाधा के रूप में आ जाते हैं। **—डीवी**

"Subject-matter of learning of curriculum is identical with all the objects, ideas, and principles which enter as resources or obstacles into the continuous intentional pursuit of a course of action." **—Dewey**

हिन्दी भाषा पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धान्त— पाठ्यक्रम के निर्माण में निम्नलिखित सिद्धान्तों को ध्यान में रखना आवश्यक है।

1. बाल केन्द्रीयता का सिद्धान्त— बाल केन्द्रीयता वर्तमान शिक्षा का स्वर है। पाठ्यक्रम बालकों की क्रियाओं और आवश्यकताओं के आधार पर बनाया या पाठ्यक्रम स्कूल के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दायित्वों को पूरा करने का प्रभावकारी साधन है। अतएव वे अनुभव जिनसे बुद्धिमानी विकसित होती है, वे क्रियायें जो व्यक्ति की आत्माभिव्यक्ति और उपक्रम को प्रेरित करती है और सामूहिक प्रोजैक्ट भी पाठ्यक्रम में सम्मिलित किये जाने चाहिएँ।

2. सीखने के अनुभवों में निरन्तरता का सिद्धान्त— पाठ्यक्रम को इस प्रकार आयोजित किया जाना चाहिए कि उनमें प्राप्त अनुभवों को जटिल सामग्री को समझने में भी सहायता मिले और उसमें अभिव्यक्ति की प्रभावशाली कलाओं का अधिक से अधिक विकास हो। जिस पाठ्यक्रम में सीखने के अनुभवों की निरन्तरता होती है वह बालक को धीरे-धीरे परिचित और ठोस तथ्यों से अपरिचित एवं भावात्मक तथ्यों की ओर ले जाता है।

3. एकीकरण का सिद्धान्त— पाठ्यक्रम इस प्रकार गठित किया जाना चाहिए कि वह व्यक्ति की आन्तरिक पूर्णता में सहायत सिद्ध हो और व्यक्ति तथा वातावरण में एकीकरण स्थापित करे। यह सिद्धान्त इस बात पर भी बल देता है कि पाठ्यक्रम को विभिन्न स्कूल विषयों में बाँटने का ढंग पुराना तथा तर्कसंगत नहीं है। पाठ्यक्रम को बच्चों की आवश्यकताओं के अनुसार गठित किया जाना चाहिए ताकि वे अपने सामाजिक वातावरण के साथ तालमेल स्थापित कर सकें।

4. उपयोगिता का सिद्धान्त— साधारणतया यह कहा जाता है कि आज का बालक कल का प्रौढ़ है। अतः शिक्षा का यह कार्य है कि वे उसे प्रौढ़ जीवन के उत्तरदायित्वों के योग्य बनाये, इसीलिए पाठ्यक्रम में केवल उन्हीं विषयों को स्थान दिया जाना चाहिए जो बालक के भावी जीवन में उपयोगी सिद्ध हों और उसे समाज का योग्य सदस्य बनाने में सहायता प्रदान करें।

5. समुदाय का सिद्धान्त— प्राथमिक स्तर पर पाठ्यक्रम इस प्रकार से आयोजित किया जाना चाहिये जिससे विभिन्न विषयों के समुदाय ज्ञान में वृद्धि हो सके। समुदाय का सिद्धान्त इन तथ्य की ओर संकेत करता है कि ज्ञान एक सम्पूर्ण इकाई है और इसे अलग-अलग टुकड़ों में बांटा नहीं जा सकता। समवाय एकीकरण को ठोस बनाता है। अतः पाठ्यक्रम के निर्माण में इसकी ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये।

6. सामुदायिक जीवन के साथ सम्बन्ध— शिक्षा सामाजिक प्रक्रिया है। अतः पाठ्यक्रम का सामुदायिक जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध होना चाहिये। सैयद का विचार है कि जनता का विद्यालय जनता की आवश्यकताओं पर आधारित होना चाहिए। इनमें उत्पादन क्रियाओं को महत्व देना चाहिये क्योंकि यह सामुदायिक जीवन का आधार है। पाठ्यक्रम का निर्माण स्थानीय आवश्यकताओं और परिस्थितियों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिये।

7. खेल और कार्य के समवाय का सिद्धान्त— पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय ज्ञान प्राप्त करने की क्रियाओं को इतना रोचक बनाया जाये कि बालक उसे खेल समझकर प्रभावशाली ढंग से ग्रहण कर सकें। **क्रो और क्रो** का कथन है कि 'जो लोग सीखने की क्रिया को निर्देशित करते हैं, उनका उद्देश्य यह होना चाहिये कि वे ज्ञानात्मक क्रियाओं की ऐसी योजना बनाए जिसमें खेल के दृष्टिकोण को स्थान प्राप्त हो सके।'

8. लचीलेपन का सिद्धान्त— पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय लचीलेपन के सिद्धान्त को भी ध्यान में रखना चाहिये अर्थात् पाठ्यक्रम में बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार बच्चों की तात्कालिक आवश्यकताओं को विशेष स्थान देने की सुविधा होनी चाहिए।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

9. प्रजातान्त्रिक मूल्यों के विकास का सिद्धान्त— पाठ्यक्रम की सहायता से बालक के

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चरित्र के उन आधारभूत गुणों का विकास किया जाना चाहिए जो प्रजातान्त्रिक मूल्यों के लिए आवश्यक है। यह मूल्य है— सामाजिक संवेदनशीलता, उदार दृष्टिकोण, सहयोग, तार्किक विचार, शक्ति, ईमानदारी इत्यादि। पाठ्यक्रम का संगठन सहयोगपूर्ण विचार, सहयोगपूर्ण क्रियाशीलता तथा सहयोगपूर्ण जीवन के आधार पर होना चाहिये।

10. व्यक्तिगत विभिन्नताओं का सिद्धान्त— बालकों में व्यक्तिगत रुचियों, क्षमताओं आदि में भिन्नता पाई जाती है। अतः पाठ्यक्रम का आयोजन व्यक्तिगत विभिन्नताओं के आधार पर किया जाना चाहिये। एक जैसा पाठ्यक्रम सभी बालकों की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता। पाठ्यक्रम में व्यक्तिगत विभिन्नताओं को ध्यान में रखते हुए अनेक प्रकार की क्रियाओं और अध्ययन सामग्री को उचित स्थान दिया जाना चाहिये।

11. पाठ्यक्रम में स्तर निर्माण का सिद्धान्त— पाठ्यक्रम निर्माण करते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि पाठ्यक्रम बालकों के स्तर के अनुरूप बनाया जाना चाहिये।

12. राष्ट्रीय भावना का सिद्धान्त— पाठ्यक्रम की सहायता से बालक के चरित्र के उन आधारभूत गुणों का विकास किया जाना चाहिए जो राष्ट्रीय भावना के लिये आवश्यक है।

पाठ्यक्रम निर्माण के सामान्य सिद्धान्त— पाठ्यक्रम निर्माण के सामान्य सिद्धान्त निम्नलिखित हैं—

1. पाठ्यक्रम के बाल केन्द्रता का सिद्धान्त।
2. उद्देश्यों की प्राप्ति का सिद्धान्त।
3. पाठ्यक्रम की उपयोगिता का सिद्धान्त।
4. पाठ्यक्रम की समाजोपयोगिता का सिद्धान्त।
5. व्यक्तिगत विभिन्नता का सिद्धान्त।
6. पाठ्यक्रम के सह सम्बन्ध का स्थान।
7. पाठ्यक्रम की व्यापकता का सिद्धान्त।
8. पाठ्यक्रम की स्पष्टता का सिद्धान्त।
9. पाठ्यक्रम में स्तर निर्माण का सिद्धान्त।
10. पाठ्यक्रम में सामाजीकरण का सिद्धान्त।
11. पाठ्यक्रम में परिवर्तनशीलता का सिद्धान्त।
12. जीवन से सह-सम्बन्ध का सिद्धान्त।
13. लोकतन्त्रात्मकता का सिद्धान्त।
14. अवकाश की उपयोगिता का सिद्धान्त।
15. पाठ्यक्रम में व्यावसायिकता का सिद्धान्त।
16. राष्ट्रीय भावना का सिद्धान्त।
17. अन्तर्राष्ट्रीय भावात्मकता का सिद्धान्त।
18. मानवीय विचारों की मान्यता का सिद्धान्त।

पाठ्यक्रम की आवश्यकता एवं महत्व

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

[illegible] शिक्षा के लिये पाठ्यक्रम की आवश्यकता होती है। जिस प्रकार से शरीर को संचालित करने के लिए आत्मा की आवश्यकता होती है। ठीक इसी तरह शिक्षा रूपी या

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विद्यालय रूपी शरीर में पाठ्यक्रम का स्थान आत्मा की तरह है। एक सुनियोजित, सुव्यवस्थित, सुसंगठित, सुसज्जित, स्वस्थ पाठ्यक्रम ही शिक्षा की प्रक्रिया को प्रगतिशील बना सकता है। पाठ्यक्रम शिक्षा की नींव है। जिस प्रकार से एक भव्य भवन को खड़ा करने वाली नींव आधार ही भवन की भव्यता का कारण है। नींव जितनी मजबूत होगी भवन उतना ही प्रभावशाली होगी। पाठ्यक्रम जितना प्रभावशाली होगा, छात्र का व्यक्तित्व भी उसी प्रकार का होगा। इसलिए पाठ्यक्रम का शिक्षा विशेष महत्व है।

प्रत्येक समाज एवं राष्ट्र के अपने मूल्य, मान्यतायें और आवश्यकतायें होती हैं। इनकी पूर्ति के लिए शिक्षा का आयोजन किया जाता है और उसके लक्ष्य निर्धारित किए जाते हैं। इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए जिन विषयों का ज्ञान एवं क्रियाओं का प्रशिक्षण आवश्यक समझा जाता है उन्हें पाठ्यक्रम में उचित स्थान दिया जाता है। इस प्रकार नियोजित, शिक्षा के लिए पाठ्यक्रम की बहुत आवश्यकता होती है। इसके महत्व को हम निम्न रूपों में देख सकते हैं—

(1) **समय और शक्ति का सदुपयोग**— पाठ्यक्रम की सीमा निश्चित हो जाने के पश्चात् अध्यापक को इस बात की जानकारी मिल जाती है कि उसे क्या पढ़ाना है और विद्यार्थी को यह पता चल जाता है कि उसे क्या पढ़ना है। इससे समय और शक्ति का सदुपयोग करने में सहायता मिलती है।

(2) **शिक्षा की प्रक्रिया व्यवस्थित होती है**— पाठ्यक्रम ही शिक्षण सामग्री का निर्धारण कता है। इसकी सहायता से यह स्पष्ट किया जाता है कि शिक्षा के किस स्तर पर विद्यालयों में किन पाठ्य विषयों का कितना ज्ञान एवं किन क्रियाओं में कितनी दक्षता का विकास किया जाएगा। इस प्रकार निश्चित पाठ्यक्रम शिक्षा की क्रिया को व्यवस्थित करता है।

(3) **बच्चों को मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है**— निश्चित पाठ्यक्रम बच्चों की मनोवैज्ञानिक वृत्तियों को सन्तुष्ट करने में सहायता प्रदान करता है। मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जो सप्रयोजन क्रियाओं में रुचि लेता है और ऐसा कार्य करना चाहता है जिससे उसकी वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति होती है और भावी आवश्यकताओं की पूर्ति की सम्भावना बढ़ती है, पाठ्यक्रम का निर्माण इन तीनों बातों को ध्यान में रखकर किया जाता है। इसलिये बच्चे उसे पूरा करने में रुचि दिखाते हैं।

(4) **पाठ्यक्रम शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायता करता है**— पाठ्यक्रम का निर्माण शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति के लिये किया जाता है। यदि हमारे सम्मुख कोई निश्चित पाठ्यक्रम नहीं होगा तो हम यह नहीं जान सकते कि हम किन विषयों के ज्ञान और किन क्रियाओं के प्रशिक्षण से बच्चे उद्देश्यों की प्राप्ति कर रहे हैं और कौन सी क्रियायें निरर्थक हैं।

(5) **पाठ्यपुस्तकों के निर्माण में सुविधा**— निश्चित पाठ्यक्रम विभिन्न लेखकों को पाठ्यपुस्तकों के निर्माण करने में मार्गदर्शन करता है। लेखक पाठ्यपुस्तक तैयार करते समय उसमें आवश्यक सामग्री को ही प्रवेश देते हैं।

(6) **मूल्यांकन करने में आसानी**— पाठ्यक्रम की सहायता से बच्चों का मूल्यांकन करने में आसानी होती है। विशेष स्तर के लिये पाठ्यक्रम के निर्माण के पश्चात् विद्यार्थियों की योग्यता का मूल्यांकन करना आसान हो जाता है। यदि किसी स्तर के लिये कोई पाठ्यक्रम नहीं होगा तो अध्यापक बच्चों की योग्यता का मूल्यांकन कैसे कर सकेंगे।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

संक्षेप में पाठ्यक्रम का महत्व निम्न प्रकार है—

1. पाठ्यक्रम के पथ प्रदर्शक है।
2. पाठ्यक्रम अध्यापक एवं छात्र दोनों के लिए उपयोगी है।
3. अभिभावकों के लिए उपयोगी है।
4. हिन्दी शिक्षण की अनेक प्रकार की प्रवृत्तियों का विकास होता है।
5. शिक्षा की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।
6. शैक्षिक उद्देश्य, लक्ष्यों, आदर्शों की पूर्ति करता है।
7. शिक्षा में अपव्यय एवं अवरोधन करता है।
8. शिक्षण प्रक्रिया में समय की ओर ध्यान दिया जाता है।
9. पाठ्यक्रम के माध्यम से व्यवस्थित शिक्षण प्रक्रिया चलती है।
10. पाठ्यक्रम के द्वारा विद्यालय की सम्पूर्ण प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है।
11. शिक्षा की प्रक्रिया में सुगमता आती है।
12. पाठ्यक्रम शिक्षण प्रक्रिया को व्यवस्थित रूप देता है।
13. पाठ्यक्रम बालक की शिक्षा की व्यवस्था स्तरानुसार करता है।
14. पाठ्यक्रम बालक के सर्वांगीण विकास का उत्तरदायित्व वहन करता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

9

हिन्दी भाषा पाठ्य-पुस्तक

आज की शिक्षा पाठ्य-पुस्तकों पर आधारित है। शिक्षा के क्षेत्र में किसी न किसी रूप में पुस्तकों का महत्वपूर्ण स्थान है। एक विद्वान लेखक के अनुसार, "पाठ्य-पुस्तक ज्ञान को मितव्ययी ढंग से प्रदान करने के लिये आवश्यक है। यह छात्रों तथा अध्यापकों का समय बचाती है। एक ही समय में लाखों मनुष्यों के हृदयों को प्रभावित करती है। इसके द्वारा स्वाध्याय तथा आत्मविश्वास की वृद्धि की जा सकती है।" पाठ्य-पुस्तकों के द्वारा अध्यापक और छात्र दोनों को लाभ होता है। पाठ्य-पुस्तक के अभाव में शिक्षा प्रक्रिया दिशाहीन नाविक की भाँति है।

पाठ्य पुस्तक का अर्थ

पाठ्य-पुस्तक के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए कुछ विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किये हैं जो निम्नलिखित हैं—

हॉलक्वेस्ट (Hall-quest) के अनुसार— "पाठ्य-पुस्तक शिक्षण अभिप्रायों के लिये व्यवस्थित प्रजातीय चिन्तन का एक अभिलेख है।"

बेकन के मतानुसार— "पाठ्य-पुस्तक कक्षा प्रयोग के लिये विशेषज्ञों द्वारा सावधानी के साथ तैयार की जाती है। यह शिक्षण युक्तियों से भी सुसज्जित होती है।"

हैरोलिकर के शब्दों में— "पाठ्य-पुस्तक ज्ञान, आदतों, भावनाओं, क्रियाओं तथा प्रवृत्तियों का सम्पूर्ण योग है।"

हर्ल आर० डगलस के द्वारा— "अध्यापकों के बहुमत ने अन्तिम विश्लेषण के आधार पर पाठ्य-पुस्तक को 'वे क्या और किस प्रकार पढ़ायेंगे' की आधार-शिला बताया गया है।"

पाठ्य पुस्तकों की उपयोगिता

पाठ्य-पुस्तकों की उपयोगिता निम्न कारणों से है—

1. पाठ्य-पुस्तकें अध्यापक को कक्षा में जाने से पूर्व पाठ की तैयारी करने का अवसर प्रदान करती हैं।

2. पाठ्य-पुस्तकें अध्यापक तथा छात्र दोनों का समय बचाती हैं।

3. छात्रों को कम मूल्य पर समस्य आवश्यक तथा महत्वपूर्ण तथ्य तथा सूचनायें एक पुस्तक में ही एकत्रित मिल जाती हैं। जिससे उन्हें इधर-उधर भटकने की आवश्यकता नहीं होती।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

4. पाठ्य-पुस्तकों के माध्यम से छात्र घर पर भी अध्ययन कर सकते हैं तथा गृह कार्य करने में भी वे सहायता प्राप्त कर सकते हैं। अध्यापक को गृहकार्य प्रदान करने में पुस्तकें पर्याप्त सहायक सिद्ध हो सकती हैं।

5. पाठ्य-पुस्तकों की सहायता से एक साथ अनेक छात्रों को पढ़ाया जा सकता है।

6. छात्रों को निर्धारित पाठ्यक्रम का ज्ञान पाठ्य-पुस्तकों से ही होता है। वे ज्ञात कर सकते हैं कि वर्ष भर में उन्हें कितना पढ़ना है तथा कितना वे पढ़ चुके हैं।

7. मौन अध्ययन का अभ्यास पाठ्य-पुस्तकों के द्वारा ही कराया जा सकता है। मौन-अध्ययन छात्रों को स्वाध्याय की प्रेरणा देता है।

8. प्रत्येक अध्यापक मौखिक शिक्षण में निपुण नहीं हो सकता। सामान्य बुद्धि के अध्यापक के लिए पाठ्य-पुस्तकों का सहयोग आवश्यक हो जाता है।

9. शिक्षा की डाल्टन पद्धति एवं योजना-प्रणाली में पाठ्य-पुस्तकों की परम आवश्यकता होती है। बालक अपनी रुचि के अनुसार मानसिक विकास करते हैं।

10. पाठ को दोहराने का कार्य पाठ्य-पुस्तकों के बिना सम्भव नहीं है। अध्यापक द्वारा बताई गई अनेक बातें छात्र कक्षा में भूल जाते हैं, उनकी स्मरण शक्ति इतनी तीव्र नहीं होती कि वे एक बार बात सुनकर याद कर लें। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि कक्षा में बताई गई बात को घर पर जाकर पुनः दोहरा लें।

11. अतीत के ज्ञान का संचय पाठ्य-पुस्तकों द्वारा ही सम्भव है।

12. पाठ्य-पुस्तक के द्वारा शिक्षकों एवं छात्रों को उपयोगी एवं बहुमूल्य अनुभव प्राप्त होते हैं।

13. पाठ्य-पुस्तक में छात्रों को विषय सामग्री के सन्दर्भ में पूर्ण निर्देशन प्राप्त होते हैं।

14. पाठ्य-पुस्तक में ज्ञान को क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

15. पाठ्य-पुस्तकें परीक्षा के समय छात्रों की सहायक होती है।

पाठ्य-पुस्तकों की उपयोगिता के सम्बन्ध में कुछ विद्वानों के विचार निम्नलिखित हैं—

मेकाम्बर के अनुसार— "आधुनिक पाठ्यक्रम में पाठ्य-पुस्तकें स्वयं साध्य बनने की अपेक्षा शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहयोग देती है।"

हार्न के शब्दों में— "शिक्षण विधि एवं पाठ्यवस्तु के सुधार में अच्छी पाठ्यपुस्तकों का स्थान सर्वोपरि है।"

क्रो एवं क्रो के अनुसार— "पाठ्य-पुस्तकों का सीखने-सिखाने की क्रियाओं में अन्य साधनों के साथ महत्वपूर्ण स्थान है।"

क्रो एवं क्रो के ही अनुसार— "न तो केवल पाठ्य-पुस्तक और न केवल शिक्षक, शिक्षा का सर्वोत्तम साधन है। यदि तरुण व्यक्तियों को अपने उत्तरदायित्वों को वहन करने के लिये प्रशिक्षित किया जाता है, तो भली-भाँति चुनी हुई पाठ्य-पुस्तकों और भली-भाँति प्रशिक्षित शिक्षक के संयोग की आवश्यकता है।"

हिन्दी भाषा की पाठ्य-पुस्तक का चयन

पाठ्य-पुस्तकों के चयन में प्रधानाचार्य को विशेष सावधानी की आवश्यकता है। उसे सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि कक्षाओं में व्यक्तिगत स्वार्थ को लेकर अध्यापक दोषपूर्ण पुस्तक न पढ़ायें। यथा-सम्भव उत्तम-से-उत्तम पाठ्य-पुस्तकों का चयन किया जाये।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इस कार्य के लिये योग्य अध्यापकों की सलाह आवश्यक है। प्रधानाचार्य को यह बात ध्यान में रखनी है कि पाठ्य-पुस्तकों को प्रतिवर्ष न बदला जाये। जल्दी-जल्दी पाठ्य-पुस्तकों को बदल देने से छात्रों के अभिभावकों को परेशानी उठानी पड़ती है, क्योंकि एक बड़े परिवार के बच्चे अपने भाइयों की पढ़ी पुस्तकों के साम नहीं चला सकते।

प्रधानाचार्य को पाठ्य-पुस्तकों के चयन में निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिये—

1. पुस्तक का लेखक— पाठ्य-पुस्तक के चयन में चयन में सर्वप्रथम यह देखना चाहिये कि पुस्तक का लेखक अनुभवी, योग्य तथा विषय पर पूर्ण अधिकार रखने वाला होना चाहिये। पाठ्य-पुस्तक का लेखक विद्वान ही नहीं वरन् शिक्षा मनोविज्ञान से भी परिचित होना चाहिये। बालकों के स्तरों को ध्यान में रखकर ही पुस्तकें लिखी जानी चाहियें।

2. पुस्तक की भाषा— पाठ्य-पुस्तक की भाषा छात्रों की आयु तथा मानसिक योग्यता के अनुकूल होनी चाहिए। छोटी कक्षा के लिए जो पुस्तकें लिखी जायें उनकी भाषा अत्यन्त सरल तथा बोधगम्य होनी चाहिये। छोटी कक्षा के छात्रों के लिए कठिन भाषा का प्रयोग अनुचित है।

3. पाठ्य पुस्तक की पाठ्य-वस्तु— प्रत्येक पाठ्य-पुस्तक की पाठ्य-वस्तु को निम्न बातों से आँका जाये—

(i) पाठ्य-सामग्री छात्रों की मानसिक आयु तथा योग्यता के अनुसार ही निर्धारित की जाये।

(ii) पाठ्य-वस्तु का बालकों के जीवन से सम्बन्धित होना आवश्यक है। जो कुछ भी विषय उसमें रखा जाये वह मानव-जीवन की विभिन्न क्रियाओं से सम्बन्धित हो। यदि पुस्तक में प्रस्तुत किये जाने वाले उदाहरण तथा तथ्य घर के वातावरण से चुने जायें, तो उत्तम रहेगा।

(iii) पाठ्य-वस्तु का व्यवस्थापन इस प्रकार का हो कि प्रकरणों तथा पाठों का तारतम्य बना रहे। उनका परस्पर सम्बन्ध न टूटे।

(iv) पाठ्य-वस्तु सरल तथा विभिन्न रुचियों वाली होनी चाहिए। किसी एक बात पर या सिद्धान्त पर आवश्यकता से अधिक बल देना उचित नहीं है। पाठ्य-पुस्तकों में विभिन्न रुचियों का समावेश किया जाये।

(v) पाठ्य-वस्तु छात्रों को प्रेरणा प्रदान करने वाली होनी चाहिए। उसमें विषय को इस प्रकार रखा जाये कि छात्रों का चारित्रिक तथा नैतिक विकास हो।

(vi) पाठ्य-वस्तु का सुव्यवस्थित होना परम आवश्यक है। **एस के० अग्रवाल** के अनुसार, **"पाठ्य-वस्तु कितनी ही मूल्यवान क्यों न हो, यदि यह सुव्यवस्थित न होगी, तो उसको सरलता से पढ़ना तथा समझना कठिन होगा। अतः सामग्री को पाठों, सोपानों और इकाइयों में बाँट लेना चाहिए।"** प्रधान अध्यापक तथा अध्यापकों का कर्त्तव्य है कि पाठ्य-पुस्तक में देखें कि विषय को ठीक प्रकार से सुव्यवस्थित किया गया है या नहीं।

4. लेखन शैली मनोवैज्ञानिक हो— पुस्तक के विषय सामग्री मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रतिपादित होनी चाहिए। प्राथमिक कक्षाओं में कहानी तथा वर्णनात्मक प्रणाली का अनुसरण **किया जाये तथा उच्च स्तर पर गम्भीर निबन्ध शैली अपनाई जाये।**

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

5. पुस्तक की आन्तरिक साज-सज्जा— पाठ्य-पुस्तक की आन्तरिक साज-सज्जा पर ध्यान देना आवश्यक है। मुख्य तथा कठिन बातों को सरल तथा सुबोध बनाने के लिए उदाहरणों तथा चित्रों का आवश्यकतानुसार प्रयोग किया जाये। प्राथमिक कक्षा के छात्रों की पुस्तकों में रंगीन आकर्षक चित्रों का संकलन होगा चाहिए। चित्र तथा मानचित्र भी छात्रों की आयु तथा योग्यता के अनुसार चित्रित किए जायें। चित्रों का स्पष्ट होना परम आवश्यक है।

6. पुस्तक का गेट-अप (Get-up)— पुस्तक की जिल्द का आकर्षक होना भी आवश्यक है। पाठ्य-पुस्तक का कागज सुन्दर और मजबूत होना चाहिये। पुस्तक की जिल्द भी मजबूत होनी चाहिये ताकि बच्चे आसानी से फाड़ न सकें। पाठ्यपुस्तक का आकार भी इस प्रकार का होना चाहिये कि छात्र उनको सुगमतापूर्वक अपने हाथों में ले सकें। पुस्तक न तो अधिक लम्बी हो, न अधिक छोटी और न अधिक भारी।

7. पाठ्य-पुस्तक की छपाई— पाठ्य-पुस्तकों का मुद्रण भी छात्रों की आयु के अनुसार किया जाना चाहिये। पुस्तक में शीर्षक बड़े व छोटे टाइप में आवश्यकतानुसार दिये जाने चाहियें।

8. पुस्तक का मूल्य— पुस्तक का मूल्य भी अधिक नहीं होना चाहिये जिसे निर्धन छात्र सरलता से खरीद सकें।

पाठ्य पुस्तकों का प्रयोग— पाठ्य-पुस्तकों का प्रयोग करना भी एक कला है। यदि अध्यापक पाठ्य पुस्तकों का प्रयोग सावधानी से नहीं करता तो लाभ होने के बजाय हानि होने की अधिक सम्भावना रहती है। अतः छात्राध्यापकों को पाठ्य पुस्तकों का प्रयोग करते समय निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है—

(1) पाठ्य-पुस्तकों का प्रयोग करते समय छात्रों की मानसिक आयु तथा कक्षा स्तर को अवश्य ध्यान में रखा जाये। प्राथमिक कक्षा के छात्रों से पाठ्य पुस्तकों का प्रयोग कम कराया जाये। इस स्तर पर मौखिक-शिक्षण को ही महत्ता दी जाये। माध्यमिक कक्षा के छात्रों से पाठ्य-पुस्तक का प्रयोग अधिक से अधिक कराया जा सकता है।

(2) प्रत्येक पाठ्य-पुस्तक में विषय अपनी सीमाओं में बँधा रहता है, परिणामस्वरूप अन्य विषयों से उसका सम्बन्ध नहीं रहता। अध्यापक चाहिए कि वह पाठ्य-पुस्तक में प्रतिपादित विषयों को अन्य विषयों से सम्बन्धित करके पढ़ाये। दूसरे शब्दों में, समन्वय के सिद्धान्त को न भुलाया जाये।

(3) पाठ्य-पुस्तकों का पूर्ण रूप से अनुकरण किया जाये। जो अध्यापक छात्रों से पुस्तक का प्रत्येक पाठ पढ़वाकर शिक्षण-कार्य करते हैं, छात्रों के साथ बौद्धिक अत्याचार करते हैं।

(4) पाठ्य-पुस्तकों में दिये गये तथ्यों तथा सूचनाओं का ही ज्ञान का विराम न माना जाये। अध्यापक को चाहिये कि छात्रों के ज्ञान-विस्तार के लिये अन्य पुस्तकों से भी सहायता ले।

(5) पाठ्य-पुस्तकों में आने वाले कठिन स्थलों की उचित प्रकार व्याख्या की जाये।

(6) कक्षाध्यापन में पाठ्य-पुस्तकों का प्रयोग करते समय प्रश्नोत्तर-प्रणाली का प्रयोग अवश्य किया जाये तथा आवश्यकतानुसार श्यामपट का भी प्रयोग करना चाहिये। अस्पष्ट तथ्यों को श्यामपट पर स्पष्ट किया जाये।

CC-0.Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हिन्दी भाषा की पाठ्य-पुस्तक के गुण

भाषा की श्रेष्ठ पुस्तक में निम्नलिखित गुण होने चाहियें—

(1) भाषा की पाठ्य-पुस्तक में प्रयुक्त भाषा-शैली छात्रों की रुचियों, योग्यताओं और विकास के स्तरों के अनुसार होनी चाहिये, साथ ही यह रोचक तथा मनोरंजक भी होनी चाहिए।

(2) भाषा की पाठ्य-पुस्तक में वर्णित पाठों को भाषा-ज्ञान वृद्धि का उद्देश्य पूरा करना चाहिये।

(3) पाठ्य-वस्तु के शब्दों का चुनाव तथा वाक्यों की योजना ऐसी होनी चाहिए कि छात्रों के सुक्ति भंडार और शब्द-भंडार में वृद्धि हो और भाषा पर उनका अधिकार बढ़ सके।

(4) पुस्तक के प्रारम्भ में विषय-सूची और अन्त में अनुक्रमणिका की व्यवस्था होनी चाहिये।

(5) पाठ्य-पुस्तकों का मुखपृष्ठ तथा आवरण आकर्षक व सुन्दर होना चाहिये।

(6) पाठ्य-सामग्री में नैतिक शिक्षा की बातें अवश्य शामिल की जानी चाहिए।

(7) पाठ्य-पुस्तकें छात्रों के पूर्व ज्ञान पर आधारित होनी चाहिए।

(8) पाठ्य-सामग्री को वस्तुतः, विभिन्न पाठों, सोपानों तथा इकाइयों में विभक्त करके नियोजन को उत्त स्वरूप दिया जाना चाहिये।

(9) इसमें वर्णित विचार और भाव पूर्णरूप से स्पष्ट, मौलिक और बोधगम्य होने चाहिएं।

(10) इसमें मूल्यांकन के लिये पाठ के अन्त में अभ्यास-प्रश्न होने चाहिएं।

(11) इनका मूल्य उचित हो तथा ये सभी स्थानों पर उपलब्ध हों।

(12) इसमें सैद्धान्तिक बातों के साथ-साथ व्यावहारिकता और लोकाचार की शिक्षा को भी उचित स्थान प्रदान किया जाना चाहिये।

(13) पाठ्य-पुस्तकों की विषय-वस्तु से किसी सम्प्रदाय, वर्ग, संस्था अथवा व्यक्ति विशेष की भावनाओं को ठेस नहीं पहुँचनी चाहिए।

(14) इसमें आवश्यक स्थलों पर चार्ट, चित्र, रेखाचित्र, आदि होने चाहियें ताकि विषय-सामग्री अधिक रोचक प्रतीत हो।

(15) इनकी विषय-वस्तु ऐसी होनी चाहिये जिसके द्वारा छात्रों में राष्ट्रीय एकता, अतर्राष्ट्रीय भ्रातृभाव, विश्व प्रेम तथा सहकारिता की भावनाओं का विकास हो सके।

हिन्दी भाषा पाठ्य-पुस्तकों के दोष

(1) निम्न कक्षाओं की पाठ्य-पुस्तकों की सामग्री का चयन ठीक प्रकार से नहीं किया जाता है। नैतिक उपदेशों की अधिकता इस स्तर पर ठीक नहीं है।

(2) आधुनिक पाठ्य-पुस्तकें छात्रों के ज्ञान विस्तार के लिए न लिखी जाकर व्यापारिक दृष्टि से लिखी जाती है। उनमें सस्ता कागज लगा दिया जाता है और टाइप भी छात्रों के मानसिक आयु के अनुरूप नहीं होता है।

(3) पाठ्य-पुस्तकों की भाषा दोषपूर्ण होती है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

(4) पाठ्य-पुस्तकों में पुराने लेखों की अधिकता है। इसका आधुनिक जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं होता।

(5) पाठ्य-पुस्तकों की सामग्री कक्षा-स्तर से ऊँची होती है।

हिन्दी भाषा पाठ्य-पुस्तकों से हानियाँ

(1) पाठ्य-पुस्तकों का सबसे मुख्य दोष यह है कि अन्वेषण करने की प्रवृत्ति का हनन करती है। पाठ्य-पुस्तकें मिल जाने पर छात्र विषय वस्तु से सन्तुष्ट हो जाते हैं और उनमें अन्वेषण करने की भावना का उदय नहीं होता है।

(2) पाठ्य-पुस्तकें अध्ययन के क्रम में उलझन पैदा करती हैं।

(3) पाठ्य-पुस्तकों में किसी विषय का प्रतिपादन अत्यन्त सीमित दृष्टिकोण में किया जाता है। फलस्वरूप छात्रों का दृष्टिकोण विस्तृत न होकर संकुचित हो जाता है। छात्र लेखक के दृष्टिकोण के बिना सोचे-समझे स्वीकार कर लेते हैं।

(4) पाठ्य-पुस्तकें पाठ्यक्रम को व्यावहारिक न बनाकर सैद्धान्तिक बना देती है। छात्र जीवन की विभिन्न समस्याओं को मानने की क्षमता अपने अन्दर उत्पन्न नहीं कर पाते हैं। वे केवल पुस्तकों के कीड़े-मात्र बनकर रह जाते हैं।

(5) पाठ्य-पुस्तकें छात्रों को विषय को समझने की प्रेरणा देने के बजाए विषय को रटने की प्रेरणा देती है।

(6) शिक्षक और छात्र पाठ्य-पुस्तक में लिखी हुई बात को पूर्णतया सत्य मान लेते हैं। **सिंह और शास्त्री** के अनुसार— "कभी-कभी पाठ्य-पुस्तकों में ऐसे तथ्यों, नियमों और सिद्धान्तों आदि का संकलन मिलता है जो पुस्तकें लिखने और बिकने के बीच विद्वानों द्वारा अस्वीकार कर दिए गए होते हैं। इससे छात्रों के मन में भ्रमपूर्ण धारणायें बन जाती हैं। पाठ्य-पुस्तक में लिखे गए सिद्धान्त बाद में जाकर असत्य सिद्ध होते हैं।"

(7) प्रत्येक लेखक को पाठ्य-पुस्तक में विषय, पाठ्यक्रम के अनुसार निर्धारित करना पड़ता है जिससे छात्रों की रुचि की अपेक्षा की जाती है जो कि पूर्णतया अमनोवैज्ञानिक है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

10
वाचन शिक्षण

वाचन का अर्थ

सामान्यतः वाचन से अभिप्राय पठन, साक्षरता एवं शिक्षा से लिया जाता है। संस्कृत भाषा में 'वाचनम्' शब्द की व्युत्पत्ति 'वच' धातु से हुई है। इसका अर्थ है— पढ़ना, पाठ करना, उच्चारण, घोषणा प्रकथन आदि संस्कृत भाषा में ही वाचन के लिये 'पठ' या 'पठनम्' शब्द का भी प्रयोग किया जाता है जिसका तात्पर्य होता है— ऊँचे स्वर में पढ़ना, सस्वर पाठ करना या दोहराना, आदि। अंग्रेजी भाषा में वाचन के लिये 'रीडिंग' शब्द का प्रयोग किया जाता है जिसका तात्पर्य होता है— पढ़ना, व्याख्या करना आदि। हमारे देश में ग्रामीण बोलियों में वाचन का अभिप्राय 'वाचना' से है जिसका अर्थ किसी पुस्तक या पत्र को पढ़ना या पढ़कर सुनाना है।

शिक्षा के क्षेत्र में वाचन से तात्पर्य सार्थक ध्वनियों के प्रतीक लिपि चिन्हों को पहचानना मात्र न होकर उनके अर्थ ग्रहण करने से है। किन्तु वास्तव में वाचन की प्रक्रिया की समाप्ति पठित शब्दों के अर्थ ग्रहण करने से ही नहीं हो जाती वरन अर्थ ग्रहण करने के पश्चात् उस पर मंतव्य स्थिर करने और फिर तदानुसार व्यवहार करने पर ही होती है।

वाचन के उद्देश्य— वाचन के उद्देश्य निम्न प्रकार है—

1. बालकों में ऐसी क्षमता उत्पन्न करना कि वे पाठ पढ़कर उसके भाव ठीक-ठीक समझ सकें।
2. वाचन द्वारा छात्रों को शुद्ध उच्चारण का अभ्यास कराना।
3. पढ़ते समय स्वरों के उतार-चढ़ाव तथा विराम आदि का ध्यान रखना।
4. आत्मसात किये गये विषय को बालक दूसरों को भी समझा सके, उनमें ऐसी योग्यता उत्पन्न करना।
5. बालकों में ऐसी क्षमता उत्पन्न करना कि वे पाठ का वाचन इस प्रकार से कर सकें कि सुनने वाला सरलता से समझ सके।
6. उनमें पढ़ते हुए लिपिबद्ध विचारों के अर्थ ग्रहण करने की क्षमता उत्पन्न करना।
7. बालकों को क्रमशः त्वरित गति से पढ़ने का अभ्यास कराना अर्थात् वे अपने एक दृष्टि विराम में अधिक से अधिक शब्दों व वाक्यों को ग्रहण कर सकें।
8. पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त छात्र कहानियों, कविताओं, नाटकों, उपन्यासों तथा समाचार पत्रों के पढ़ने में रुचि लें तथा इस प्रकार मनोरंजन के साथ-साथ उनके ज्ञान क्षेत्र का विकास हो।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

 Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वाचन का महत्व— वाचन का आधुनिक जीवन में बहुत अधिक महत्व है। हमारे दैनिक जीवन में वाचन की आवश्यकता होती है। वाचन के महत्व को स्पष्ट करते हुए डॉ० श्री धरनाथ चतुर्वेदी लिखते हैं— **"वाचन एक कला है। यह ज्ञानार्जन की कुंजी है। वाचन-शक्ति ठीक रहने पर ही मनुष्य जटिल से जटिल विषय पढ़कर समझ सकता है तथा पढ़े हुए अंश का सार खोलकर या लिखकर व्यक्त कर सकता है। सुवाचन के बिना न तो कोई अच्छा वक्ता ही बन सकता है औ न ही लेखक, वाचन मृत्यु पर्यन्त मनुष्य का साथी है। आप अकेले घर में बैठे हैं, रेल में यात्रा कर रहे हैं अथवा बीमार पड़े हैं, ऐसे समय में आप पुस्तक उठाइये और उसके पठन का मजा चखिए।"**

सामाजिक जीवन में वाचन साक्षरता का पर्याय है। अतएव शिक्षित व्यक्ति वही माना जाता है जो लिखी हुई बात को पढ़ सकता है समझ सकते है तथा स्वयं भी लिख सकता है। वर्तमान समय में तो समाचार पत्रों का पढ़ना जीवन का एक अंग बन गया है। पत्र-पत्रिकाओं में जन सामान्य रुचि लेने लगे हैं तथा प्रौढ़ एवं वृद्ध धार्मिक पुस्तकों के वाचन द्वारा अपनी कार्य-सिद्ध करते हैं। इस प्रकार वाचन, शिक्षा के क्षेत्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

वाचन शिक्षण का क्रम

छात्रों को वाचन की पूर्ण अवस्था तक पहुँचाने के लिये यह आवश्यक है कि उन्हें मनोवैज्ञानिक रूप से वाचन के विभिन्न स्तरों पर निपुण बनाया जाये।

वाचन शिक्षण की निम्नलिखित चार अवस्थायें हैं—

(i) छात्रों में पुस्तकों के पढ़ने के लिये रुचि उत्पन्न की जाती है।

(ii) छात्रों को अक्षर शब्द, वाक्यांशों व वाक्यों का बोध कराया जाता है।

(iii) उन्हें इस स्तर पर लिपिबद्ध विचारों के अर्थ को समझाते हुए वाचन के लिये उत्साहित किया जाता है।

(iv) छात्रों में इस स्तर पर गम्भीर अध्ययन की प्रवृत्ति उत्पन्न की जाती है एवं उनमें विश्लेषण एवं निष्कर्ष की भी क्षमता उत्पन्न की जाती है।

वाचन शिक्षण की विधियाँ— वाचन शिक्षण की अनेक विधियाँ हैं जिनमें प्रमुख निम्नलिखित हैं।

1. संश्लेषण विधि— इसके अन्तर्गत आने वाली विधियाँ निम्नलिखित हैं—

(i) अक्षर बोध विधि (ii) ध्वनि साम्य विधि

2. विश्लेषण विधि— इसके अन्तर्गत आने वाली विधियाँ निम्नलिखित हैं—

(i) देखो और कहो विधि

(ii) वाक्य शिक्षण विधि

(iii) अनुकरण विधि

(iv) कहानी विधि

(v) भाषा शिक्षण पत्र विधि

(vi) सामूहिक पठन विधि

(vii) कविता विधि

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

(viii) साहचार्य विधि।

(i) अक्षर बोध विधि— अक्षर बोध विधि एक अत्यन्त प्राचीन विधि है। इसमें बालक क्रमानुसार वर्णमाला के भिन्न-भिन्न अक्षरों का ज्ञान प्राप्त करते हैं। जब बालक अक्षरों का ज्ञान भली प्रकार कर लेते हैं, तब उन्हें शब्द बनाने सिखाये जाते हैं और शब्दों को जोड़कर वाक्य रचना की ओर बढ़ते हैं।

अक्षर बोध विधि को दोष— इस विधि में निम्नलिखित दोष हैं—

(1) यह विधि भाषा की इकाई अक्षर अथवा वर्ण को मानती है किन्तु यह ठीक नहीं है। बालक अक्षर में कुछ नहीं सीखता। वह अपनी कोई भी बात शब्द या वाक्य में कहता है इसलिये बालक की शिक्षा वाक्य से आरम्भ की जानी चाहिये तदुपरान्त उन्हें अक्षरों का ज्ञान दिया जाये। बालक अथवा व्यक्ति किसी वस्तु को उसके पूर्णरूप में ही देखते हैं, उस वस्तु के किसी एक अवयव को नहीं। इस प्रकार बालकों की रुचि सार्थक शब्द अथवा वाक्य में ही होती है, अक्षर में नहीं।

(2) बालक जब इस विधि के द्वारा अक्षर ज्ञान प्राप्त करते हैं तो उन अक्षरों को सीखने में उनके मन में कोई रुचि नहीं होती और इस प्रकार बालक के मन में प्रारम्भ में ही एक विमुखता उत्पन्न हो जाती है।

(3) बालक विभिन्न अक्षरों को मिलाकर शब्दों की रचना करना सीखते हैं। इस प्रकार बहुत से छात्रों में एक-एक कर पढ़ने की आदत पड़ जाती है।

(4) बालक एकदम वर्णमाला को रटने से घबराते हैं, क्योंकि रटना एक नीरस कार्य है।

विद्वान मैंजील (F.N. Mangie) इस विधि की आलोचना करते हुए लिखते हैं कि, **"बालकों का अधिकांश समय वर्णमाला के रटने में ही चला जाता है।"**

(ii) ध्वनि साम्य विधि— यह विधि अक्षर बोध विधि का ही परिष्कृत रूप है। इस विधि में भी बालक अक्षर से शब्द की ओर बढ़ता है। किन्तु इस विधि की प्रमुख विशेषता यह है कि बालकों को अक्षर ज्ञान के साथ-साथ ध्वनि साम्य वाले शब्दों का भी ज्ञान कराया जाता है। ध्वनि साम्य विधि के आधार पर बालकों के सामने वे ही शब्द रखे जाते हैं जिनकी कि ध्वनि में समानता होती है, उदाहरण के लिए आज, राम, शाम, धाम, काम आदि, इसी प्रकार धर्म, कर्म, मर्म आदि। यह विधि प्रारम्भिक कक्षा में ही ठीक रहती है। यह वाचन में निपुणता लाने के लिए अधिक उपयोगी विधि सिद्ध नहीं हो सकती। इसमें उन शब्दों का प्रयोग भी करना पड़ता है जो बालकों की अनुभव परिधि से बाहर होते हैं जिससे कि उन्हें समझने में कठिनाई होती है।

इस विधि में शब्दों व वाक्यांशों के अर्थों पर उतना ध्यान नहीं दिया जाता जितना उनकी ध्वनियों पर।

आजकल बालकों की पुस्तक में अक्षर बोध विधि तथा ध्वनि साम्य विधि दोनों का समन्वय होता है। इन दोनों पद्धतियों को ध्वन्यात्मक विधि भी कहते हैं। इन पद्धतियों द्वारा बालकों में अक्षर ज्ञान की रुचि उत्पन्न करने के लिये अब चित्रों का प्रयोग किया जाता है।

विश्लेषण विधि

(i) देखो और कहो विधि— 'देखो और कहो' विधि में प्रारम्भ में ही बालकों को शब्दों का परिचय कराया जाता है। शब्दों का ज्ञान कराने के लिए चित्रों को माध्यम बनाया जाता है। इस विधि के विषय में एक लेखक का कथन है कि "यह पद्धति बड़ी ही आकर्षक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

और रोचक है। अनेक बार उस चित्र और शब्द को देखने के बाद उस शब्द का चित्र, बालक के मानस-पटल पर गहरा अंकित हो जाता है, जब-जब वह उस वस्तु या चित्र का स्मरण करता है, तब-तब उसे वह शब्द-चित्र भी याद आ जाता है। इस शब्द-चित्र में कई वर्ण होते हैं; जैसे— 'शलगम' से श, ल, ग तथा म। इन सभी वर्णों से वह भली-भाँति परिचित हो जाता है। उदाहरण के लिये बालक को आम का चित्र दिखाकर और उन्हें आम पढ़ाना सिखाकर आ और म अक्षरों का ज्ञान कराया जायेगा। देखने और व्यवहार में यह विधि अत्यन्त रोचक ज्ञात होती है, परन्तु इसके प्रयोग से बालकों का शब्द-ज्ञान सीमित ही रहता है। इसमें केवल वे ही शब्द प्रयोग में लाये जा सकते हैं। जिनका कि ज्ञान बालकों को होता है। अपरिचित शब्दों का ज्ञान इसके माध्यम से सरलतापूर्वक नहीं कराया जा सकता है।"

(ii) वाक्य-शिक्षण विधि— यह विधि 'देखो और कहो विधि' का ही परिवर्धित व उन्नत रूप है। इसमें भाषा का ज्ञान शब्द से प्रारम्भ करने के बजाय वाक्य से प्रारम्भ किया जाता है। इस प्रकार यह एक मनोवैज्ञानिक विधि है। मनोवैज्ञानिकों का विश्वास है कि बालक अपने मनोभावों को न तो अक्षरों द्वारा प्रकट कर सकता है और न वह अक्षरों को जोड़-जोड़कर शब्दों का निर्माण ही कर सकता है। बालक अपने मनोभावों को पूरे वाक्यों में ही ठीक प्रकार से प्रकट कर पाते हैं। अतः इस विधि के समर्थकों के अनुसार पढ़ना सिखाने के लिए वाक्य-शिक्षण विधि को ही आधार बनाया जाना चाहिए।

इस विधि में वाक्य श्यामपट पर या चार्ट पर लिखकर अथवा चित्र दिखाकर उसके नीचे उपयुक्त, संगत व सार्थक वाक्य लिखकर छात्रों के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। छात्र चित्र देखते हैं और अध्यापक के उच्चारण के अनुसार फिर स्वयं वाक्य उच्चारण करते हैं, इस प्रकार के विभिन्न वाक्यों की याद करते हैं।

(iii) अनुकरण विधि— इस विधि के अनुसार अध्यापक एक-एक शब्द का उच्चारण करता जाता है तथा बालक उसका अनुसरण करते रहते हैं। यह एक प्रकार से 'देखो और कहो' विधि का ही रुपान्तर है। इसे हम 'सुनो और कहो' विधि कह सकते हैं। इस विधि का प्रयोग अंग्रेजी भाषा के शिक्षण में अधिक लाभदायक सिद्ध होता है, क्योंकि अंग्रेजी भाषा के अक्षरों के उच्चारण अनिश्चित हैं। उदाहरण के लिए, शब्द Calm (काम) में l (एल) अक्षर को बोला नहीं जाता। इसी प्रकार cut शब्द में u 'अ' की ध्वनि देता है, परन्तु put में 'उ' की। हिन्दी में इस विधि का प्रयोग व्यर्थ है, क्योंकि इसमें प्रत्येक अक्षर की अपनी एक ही ध्वनि होती है।

(iv) कहानी विधि— कहानी विधि को हम वाक्य-शिक्षण विधि का दूसरा रूप कह सकते हैं। अनेक चित्रों के संयोग से कहानी बालकों को सुनाई जाती है। चित्रों के नीचे बड़े-बड़े अक्षरों के वाक्य लिख दिये जाते हैं। ये वाक्य कहानी से सम्बन्धित होते हैं। कहानी विधि छोटे बालकों के लिये विशेष रूप से लाभदायक होती है। इस विषय में मैन्जिल कहते हैं— **"मुझे विश्वास है कि यद्यपि स्वरोच्चार वर्णोच्चार विधियों से प्रौढ़ व्यक्ति यथेष्ठ प्रगति कर सकते हैं, किन्तु बच्चे नहीं। मैं छोटे बच्चों के लिए एक नवीन पद्धति की वकालत करूँगा, जिसमें ध्वनि साम्य वाक्य और कहानी पद्धति का विशेष प्रयोग किया जायेगा।"** छोटे बालक कहानी सुनना सबसे अधिक पसन्द करते हैं, अतः कहानी विधि सर्वोत्तम रहती है।

अथवा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्यापक कक्षा में कोई कहानी कहता है, फिर श्यामपट पर कहानी को वाक्यों में लिख देता है और तदुपरान्त वह बालकों से वाक्यों को अपने कहने के अनुसार दुहराता है। कहानी के भावों में रुचि रखने के कारण वाक्य समूह बालक के मस्तिष्क में चित्रित हो जाते हैं और बालक उन्हें याद कर लेता है।

(v) भाषा-शिक्षण-यन्त्र विधि— इस विधा का प्रयोग अनुकरण विधि की तरह किया जाता है। अन्तर केवल इतना है कि अध्यापक के स्तर पर ग्रामोफोन रिकार्ड का प्रयोग किया जाता है। शुद्ध उच्चारण के लिये ग्रामोफोन रिकार्ड बजाया जाता है जिसे छात्र ध्यानपूर्वक सुनते हैं और वैसी ही उच्चारकण करने का प्रयास करते हैं। इस विधि का सबसे बड़ा लाभ यह है कि बालक व्यवस्थित उच्चारण की शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं तथा उनके उच्चारण में भी एकाग्रता आ जाती है, क्योंकि ग्रामोफोन रिकार्ड बार-बार बजाये जाने पर उनमें से एक-सी ध्वनि निकलती है। अधिक व्ययपूर्ण होने के कारण इसका प्रयोग नहीं हो पाता।

(vi) सामूहिक पाठन विधि— यह विधि बहुत-कुछ अनुकरण विधि से मिलती-जुलती है। अध्यापक सर्वप्रथम सम्पूर्ण कक्षा के सामने छोटे-छोटे पद्य या बाल-गीतों का आदर्श पाठन प्रस्तुत करता है। समस्त कक्षा सामूहिक रूप से अनुकरण करती रहती है। यह विधि बालकों के उच्चारण सुधारने में परम सहायक होती है। परन्तु इसका प्रयोग उस समय ही किया जा सकता है जबकि बालक अक्षर-ज्ञान से भली-भाँति परिचित हो जाएँ।

(vii) कविता विधि— गद्य में जो स्थान 'कहानी विधा' का है, पद्य में वही स्थान कविता विधि का है। इसमें पक्षात्मक विधि ली जाती है। वाक्य कविता की पंक्तियों के रूप में होते हैं। कविता में लय होने के कारण उन्हें अधिक रुचि व शीघ्रता से बालक याद कर लेते हैं।

(viii) साहचर्य विधि— इस विधि का प्रयोग अक्षरों को पहचानने के लिये किया जाता है। साहचर्य विधि की आविष्कारक श्रीमती मान्टेसरी हैं। इसके अनुसार कक्षा में बालकों के समक्ष कुछ वस्तुयें, चित्र, मॉडल, खिलौने आदि रखे रहते हैं और इन वस्तुओं तथा चित्रों आदि के नाम कार्डों पर अंकित कर लिये जाते हैं। अंकित किये गए कार्डों को परस्पर मिला दिया जाता है। दीवारों पर चित्र इन अंकित किये गये कार्डों के होते हैं। बालकों को दीवार पर लटके हुए चित्रों तथा कमरे में पड़े हुए अंकित किये गये कार्डों की ओर देखने को कहा जाता है। दीवार पर टँगे चित्रों तथा कमरे में पड़े कार्डों के बीच बालक साहचर्य स्थापित करते हैं। इस विधि का सबसे बड़ा लाभ यह है कि बालक धीरे-धीरे अभ्यास करते-करते अनेक शब्दों तथा वर्णों का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। सफलता मिलने के साथ-साथ बालक नवीन ज्ञान प्राप्त करने में रुचि लेने लगते हैं। परन्तु इस विधि का प्रयोग केवल प्रारम्भिक कक्षाओं में ही किया जा सकता है, क्योंकि यह विधि बालकों को केवल संज्ञाओं का ही ज्ञान कराती है।

वाचन के प्रकार

वाचन के तीन प्रकार हैं—

1. सस्वर वाचन, 2. मौन वाचन, 3. अध्ययन।

सस्वर वाचन को दो भागों में विभक्त किया गया है।

(i) वैयक्तिक, (ii) समवेत। इसी प्रकार मौन वाचन के भी दो प्रकार हैं— (i) गम्भीर, (ii) त्वरित।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

 Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वाचन के प्रकार

- सस्वर वाचन
  - वैयक्तिक
    - आदर्श पाठ (शिक्षक द्वारा)
    - अनुकरण पाठ (विद्यार्थियों द्वारा)
  - समवेत
- मौन वाचन
  - गम्भीर
  - त्वरित
- अध्ययन

सस्वर वाचन का अर्थ— स्वर सहित वाचन के सस्वर वाचन कहा जात है। इसमें छात्र पढ़ने के साथ-साथ बोलता भी जाता है। इसमें चार प्रतिक्रियायें सम्मलित हैं— लिपिबद्ध अक्षरों को देखना, पहचानना, शब्दों को समझना एवं उच्चारण करना तथा अर्थ ग्रहण करना।

सस्वर वाचन करते समय ध्यान रखने योग्य बातें

(1) सस्वर पाठ करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिये कि विद्यार्थी ध्वनियों का निर्दोष और स्पष्ट उच्चारण करे।

(2) जो शिक्षक या विद्यार्थी सस्वर पाठ करें। उन्हें इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि उनकी आवाज सम्पूर्ण कक्षा में सुनाई दे अर्थात् पढ़ने वाले का स्वर न बहुत धीमा हो और न बहुत तेज।

(3) सस्वर पाठ खड़े होकर ही करना चाहिये। सस्वर पाठ के समय पुस्तक बायें हाथ में रखनी चाहिये। पुस्तक आँखों से कम से कम 30 सेमी की दूरी पर रहनी चाहिये और पुस्तक इस प्रकार पकड़ी जाए कि वह हाथ से 135° का कोण बनाए।

(4) सस्वर पाठ में स्वर सदैव एक रूप नहीं रहना चाहिये बल्कि स्वर में उतार-चढ़ाव, आरोह-अवरोह होना चाहिये। यह वाणी का उतार-चढ़ाव अवतरण में निहित भावों के अनुकूल ही होना चाहिए। इसी प्रकार अवसर के अनुकूल वाचन में भावों के स्पष्टीकरण हेतु हाथ द्वारा संकेत भी करने चाहियें।

(5) सस्वर पाठ के लिये कुछ विद्यार्थी विशेष रूप से अधीरता दिखलाते हैं, बहुत से विद्यार्थी पढ़ने हेतु एक साथ खड़े हो जाते हैं अथवा ये विद्यार्थी एक साथ ही पढ़ने की अनुमति चाहते हैं। इस समय शिक्षक को कक्षा के अनुशासन को ध्यान में रखना चाहिये और सस्वर पाठ के लिए उपयुक्त विद्यार्थी से कहना चाहिये।

(6) जब शिक्षक सस्वर पाठ करे, उस समय उसे एक दृष्टि में इतना ग्रहण कर लेना चाहिये कि वह बीच-बीच में मुँह उठाकर सामने बैठे हुए विद्यार्थियों की ओर देख सकें।

(7) सस्वर पाठ में शब्दों का उचित चुनाव महत्वपूर्ण है। पढ़ने में अर्थ अभिव्यक्ति की रक्षा करना भी अत्यन्त आवश्यक है।

(8) सस्वर पाठ के लिए पहले कुछ सुपाठ करने वाले विद्यार्थियों का चयन करना चाहिये। इसके बाद पिछड़े हुए विद्यार्थियों से सस्वर पाठ कराया जाना चाहिये।

(9) विद्यार्थी सस्वर पाठ में जो भूलें करें उन भूलों का समाधान शिक्षक को अन्य विद्यार्थियों के सहयोग और अपने आदर्श पाठ द्वारा करना चाहिये।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

(10) मन्द स्वर से ही पढ़ने की शुरूआत करनी चाहिये तथा मन्द स्वर से ही अन्त ताकि आदि और अन्त का ठीक-ठीक ज्ञान हो सके।

(11) शिक्षक को सस्वर पाठ के लिए विद्यार्थियों को एक निश्चित क्रम से नहीं चुनना चाहिये बल्कि कक्षा के बीच से किसी भी विद्यार्थी को पढ़ने के लिये कहना चाहिये।

(12) विद्यार्थी को सीधे खड़े होकर ही सस्वर पाठ करना चाहिये। झुककर खड़े होना या हाथ पैर हिलाना आदि आदतें सस्वर पाठ में अवाँछनीय हैं।

सस्वर वाचन के उद्देश्य

(i) छात्रों को वाक्य-रचना का ज्ञान कराना तथा उन्हें विभिन्न लेखन-शैलियों से अवगत कराना।

(ii) छात्रों को लिपि का स्पष्ट ज्ञान कराना तथा उनके शब्दों, मुहावरों एवं सूक्तियों के भंडार में वृद्धि करना।

(iii) छात्रों को मानव जीवन के विभिन्न पक्षों का सामान्य ज्ञान कराना।

(iv) छात्रों को गद्य का स्पष्ट अक्षरोच्चारण, शुद्ध शब्दोच्चारण, उचित ध्वनि निर्गम एवं भावानुकूल बल तथा प्रवाह के साथ सस्वर वाचन के लिये प्रशिक्षित करना।

(v) छात्रों को लिखित सामग्री के केन्द्रीय भाव को ग्रहण करने और उसकी समीक्षा करने में प्रशिक्षित करना।

(vi) छात्रों को कविता का लयानुसार वाचन करने हेतु प्रशिक्षित करना।

उत्तम सस्वर वाचन के गुण

उत्तम सस्वर वाचन के गुण निम्न प्रकार हैं—

(i) छात्रों को विभिन्न ध्वनियों का ज्ञान तथा समान ध्वनियों में अंतर करने में सामर्थ्य होनी चाहिये।

(ii) वाचन स्पष्ट होना चाहिये। इसके लिये स्वर पर नियन्त्रण आवश्यक है। प्रत्येक वर्ण का उच्चारण पृथक रूप में किया जाना चाहिये। वाचन इतनी जोर से किया जाना चाहिये कि सभी श्रोता सुन लें।

(iii) वाचन करने में उच्चारण की शुद्धता पर विशेष ध्यान देना चाहिये।

(iv) वाचन करते समय मुद्रा शिष्ट एवं शोभनीय हो। दूसरे शब्दों में वाचन करते समय झुककर पढ़ना, मेज पीटना, उंगलियों को नचाना, सिर हिलाना आदि अशोभनीय हैं।

(v) वाचन में प्रवाह का ध्यान रखा जाना चाहिये। न तो बहुत मंद गति से पढ़ना चाहिये और न ही बहुत तीव्र गति से।

(vi) वाचन करते समय शब्दों का अर्थ ग्रहण करते चलना चाहिये।

(vii) पढ़ने में विराम चिन्हों का पूर्ण ध्यान रखा जाना चाहिये। 'मारो मत जाने दो, वाक्य में यदि मारो के बाद विराम करके पढ़ें तो एक अर्थ होगा, और यदि मत के बाद विराम करके पढ़ें तो दूसरा अर्थ होगा।

(viii) वाचन के समय स्वर कर्कश नहीं होना चाहिये वरन् मधुरता के साथ सरल ढंग से शब्दों का उच्चारण किया जाना चाहिये। शृंगार रस की सामग्री का वाचन वीभत्स ढंग से अथवा ओजपूर्ण ढंग से नहीं किया जाना चाहिए।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

 Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

(ix) वाचन को स्वयं भी पढ़ने में रुचि लेनी चाहिये। वाचन को व्यर्थ कार्य समझकर टालना नहीं चाहिये।

(x) पढ़ते समय उपयुक्त बलाघात पर ध्यान दिया जाना चाहिये अर्थात् प्रत्येक अक्षर और शब्द पर यथा योग्य बल देना चाहिये।

सस्वर वाचन के प्रकार— सस्वर वाचन के गुण के आधार पर इसके निम्नलिखित दो प्रकार हैं—

(1) अध्यापक द्वारा आदर्श वाचन

(2) छात्रों द्वारा अनुकरण वाचन।

जब पाठ्य-सामग्री को अध्यापक स्वयं वाचन करके छात्रों के सम्मुख प्रस्तुत करता है तो उसे आदर्श वाचन कहते हैं, इसके निम्नलिखित उद्देश्य हैं—

(i) छात्रों को अपरिचित पाठ्य-सामग्री का परिचय देना।

(ii) उनके समक्ष वाचन का एक मानदण्ड प्रस्तुत करना।

(iii) उन्हें यह समझाना होगा कि उन्हें कहाँ तक पढ़ना है।

(iv) उनमें झिझक एवं संकोच की भावना को दूर करना।

(v) उन्हें उचित उच्चारण, गति, लय, विराम, स्पष्टता आदि का ध्यान रखते हुये वाचन करने की प्रेरणा देना।

आदर्श वाचन के पश्चात् छात्रों द्वारा अनुकरण वाचन किया जाता है। जब छात्र अध्यापक के आदर्श पाठ के अनुरूप वाचन करने का प्रयत्न करते हैं तो उसे अनुकरण (सस्वर) वाचन कहा जाता है। अनुकरण वाचन के उद्देश्य निम्नांकित हैं—

(i) अध्यापक द्वारा किये गये आदर्श वाचन का अनुकरण करना।

(ii) शुद्ध उच्चारण करना।

(iii) वाचन में गति एवं प्रवाह का ध्यान रखना।

(iv) पाठ के भाव के अनुसार वाचन की क्षमता प्रदान करना।

(v) वाचन करते समय अर्थ-ग्रहण की योग्यता का विकास करना।

वाचन कर्त्ता के अनुसार सस्तर वाचन को पुनः दो प्रकारों में विभाजित किया गया है—

1. वैयक्तिगत वाचन 2. सामूहिक वाचन

(1) वैयक्तिगत वाचन— व्यक्तिगत वाचन में एक ही व्यक्ति वाचन करता है। व्यक्तिगत वाचन अध्यापक द्वारा किये गये आदर्श वाचन के पश्चात् किया जाता है। अध्यापक कक्षा के छात्रों के सामने आदर्श वाचन करता है। तदुपरान्त एक छात्र उस पाठ का अनुकरण करता है। अध्यापक का कर्त्तव्य है कि वह छात्रों को वाचन करते समय ध्यानपूर्वक देखें कि उनके पुस्तक पकड़ने का ढंग, खड़े होने का ढंग तथा आँख से पुस्तक की दूरी ठीक है या नहीं। वाचन करते हुए बालक के उच्चारण पर भी अवश्य ध्यान देना चाहिये, परन्तु वाचन के मध्य में अशुद्ध उच्चारण के लिये रोकना अनुचित है। जब छात्र वाचन समाप्त कर चुकें तब अशुद्ध उच्चारण को शुद्ध कराना चाहिये।

(2) सामूहिक वाचन— सामूहिक वाचन को समवेत वाचन भी कहा जाता है। इसका प्रयोग प्रारम्भिक कक्षाओं में अत्यधिक उपयुक्त रहता है। समवेत या सामूहिक वाचन का अर्थ है जब एक से अधिक छात्र मिलकर वाचन करते हैं। सामूहिक वाचन का सबसे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बड़ा लाभ यह है कि जिन छात्रों को किसी के सामने व्यक्तिगत रूप से वाचन करने में झिझक का अनुभव होता है, वे सामूहिक वाचन में संकोच का अनुभव नहीं करते और इस प्रकार इनकी झिझक खुल जाती है। सामूहिक वाचन कराते समय अध्यापक को निम्न सावधानियाँ ध्यान में रखनी आवश्यक हैं—

(i) सामूहिक वाचन छोटी कक्षाओं में ही लाभदायक सिद्ध होता है। कक्षा 7 या 8 तक इनका प्रयोग सफलता के साथ किया जा सकता है।

(ii) सामूहिक वाचन बालकों के उच्चारण को शुद्ध करने के लिए जब भी प्रयोग में लाया जाये, तो बालकों के उच्चारण की शुद्धता की ओर अवश्य ध्यान दिया जाये।

(iii) सामूहिक रूप से यदि कविता का वाचन कराया जाये, तो भावों के उतार-चढ़ाव के साथ-साथ अंगों का संचालन भी किया जा सकता है। अभिनय गीतों में तो भावभंगी प्रदर्शन और भी अधिक ठीक रहता है।

मौन वाचन का अर्थ

मौन वाचन का स्थूल रूप में अर्थ है बिना होठ हिलाये चुपचाप पढ़ना, परन्तु सूक्ष्म अर्थों में मौन वाचन का अर्थ चुपचाप पढ़ते हुए अधिक से अधिक अर्थ ग्रहण करना है।

मौन वाचन के लिये ध्यान देने योग्य आवश्यक बातें—

1. शान्तिपूर्ण वातावरण— जहाँ छात्र मौन वाचन कर रहे हों, वहाँ का वातावरण पर्याप्त शान्तिमय हो। अशान्त वातावरण में मौन वाचन करना असम्भव है।

2. वाचन की मुद्रा— वाचन करते समय बालक की मुद्रा पर विशेष ध्यान दिया जाये। अध्यापक को चाहिए कि वह देखे कि बालक उचित प्रकार से पुस्तक पकड़कर तथा उचित प्रकार से बैठकर बिना होठ हिलाये वाचन करे, बालक पुस्तक पर अधिक न झुकें।

3. धैर्य की भावना— मौन वाचन करते समय धैर्य का रखना परम आवश्यक है। भली-भाँति भावों को समझने के पश्चात् ही आगे वाचन करना चाहिए।

4. विकसित शब्द-कोश— मौन वाचन करते समय पाठ्य-विषय को भली प्रकार समझने के लिए यह आवश्यक है कि बालक का शब्द-कोश पर्याप्त विकसित हो। यदि बालकों का शब्द-कोश अधिक विकसित नहीं होगा, तो मौन वाचन करते समय वे किसी भी कठिन शब्द के आ जाने पर रुक जायेंगे तथा भाव उनकी समझ में ठीक प्रकार नहीं आ पायेगा।

5. एकाग्रता— मौन वाचन के समस्त उद्देश्य उस समय ही पूर्ण हो सकते हैं जबकि बालक एकाग्रचित्त से मौन वाचन करें।

6. उचित प्रवाह तथा गति का ध्यान— अध्यापक बालकों को बतायें कि मौन वाचन करते समय वे विराम चिन्हों गति और प्रवाह का मन ही मन अवश्य ध्यान रखें—

मौन वाचन करने के उद्देश्य—

1. छात्रों को मौन वाचन का अभ्यास कराना जिससे वे कम से कम समय में अधिक से अधिक सामग्री को आत्मसात् कर सकें।

2. छात्रों के शब्द-कोश का विकास करना तथा उसे सक्रिय शब्द-कोश में परिवर्तित करना।

3. छात्रों की बोध-शक्ति को विकसित करना, जिससे वे पढ़े गये विषय को भली प्रकार समझकर उसका यथास्थान प्रयोग कर सकें।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

4. बालकों की मनन तथा तार्किक शक्ति को विकसित करना।

5. छात्रों में अधिक से अधिक साहित्यिक रुचि उत्पन्न करना।

मौन वाचन का महत्व— (1) मौन वाचन द्वारा बालक शीघ्रता से पढ़ सकता है।

(2) मौन वाचन में मस्तिष्क पर बहुत कम बल पड़ता है, अतः थकावट नहीं आती। फलस्वरूप, अधिक मात्रा में पढ़ा जा सकता है। इसके विपरीत सस्वर वाचन थकावट उत्पन्न करने वाला होता है, क्योंकि बोलने से मस्तिष्क पर दबाव पड़ता है।

(3) मौन वाचन का सबसे बड़ा लाभ यह है कि बालक पढ़ने के साथ-साथ विषय को आत्मसात भी करते जाते हैं।

(4) मौन वाचन का अभ्यास हो जाने पर छात्रों को गृह-कार्य देने में सरलता हो जाती है।

(5) स्वाध्याय की आदत मौन वाचन द्वारा डाली जा सकती है। बालकों में पुस्तक पढ़ने की रुचि उत्पन्न होती है और वे अवकाश के क्षणों का प्रयोग पुस्तक पढ़कर ही करते हैं।

(6) सार्वजनिक स्थानों तथा रेल में यात्रा करते हुए किसी अखबार या पत्रिका का सस्वर वाचन करने लगें, तो आस-पास के वातावरण में एक प्रकार की अव्यवस्था उत्पन्न हो जायेगी। ऐसे स्थानों पर मौन वाचन का ही सहारा लेना पड़ता है।

मौन वाचन के महत्व पर प्रकाश डालते समय **ब्राइन (Brien)** लिखते हैं— "इसमें कोई सन्देह नहीं कि मौन वाचन में ही अधिक अल्प व्ययता है। साथ ही, यह पद्धति हमारे जीवन की प्रतिदिन की क्रियाओं के लिए भी सबसे उत्तम कही जा सकती है, क्योंकि हमारा अधिकांश वाचन मौन रूप से होता है।"

मौन वाचन के क्षेत्र— मौन वाचन का प्रारम्भिक या प्राथमिक स्तर पर प्रयोग करना पूर्णतया अनुचित है। इस स्तर पर तो सस्वर वाचन ही उपयुक्त रहता है। मौन वाचन का आरम्भ आठवीं कक्षा से ही करना उचित है।

मौन वाचन के लिए सबसे अच्छा अवसर पद्य पाठों से मिलता है। प्रमुख रूप से द्रत पाठों में तथा कविता-शिक्षण में मौन पाठ का कोई महत्व नहीं। कविता पाठ सदा सस्वर वाचन में होता है। मौन वाचन, समाचार पत्र, कहानी तथा वर्णन पढ़ने के लिए ही किया जाता है।

मौन वाचन के प्रकार—

मौन वाचन के निम्नलिखित दो प्रकार हैं—

1. गम्भीर मौन वाचन 2. त्वरित मौन वाचन

गम्भीर मौन वाचन क अर्थ प्रत्येक शब्द, वाक्य तथा भाव पर गम्भीरतापूर्वक विचार अथवा मनन करता है। अध्यापक को चाहिये कि वह छात्रों को गम्भीर मौन वाचन के निम्नलिखित नियमों को समझा दें—

(1) वाचन का प्रयोजन सदैव दृष्टि में रखना चाहिये।

(2) वाच्य वस्तु के विभिन्न अंशों को दी जाने वाले समय की मात्रा को आवश्यकतानुसार बदलते रहना चाहिये।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

(3) प्रत्येक अनुच्छेद के केन्द्रीय विचार को दृढ़ता से ग्रहण करते हुए चलना चाहिये।

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

(4) वाचन करते समय अपनी चिन्तन प्रक्रिया को चालू रखते हुये पुरानी और नई जानकारी के समन्वय के आधार पर आतश्यक परिणाम निकालते हुये चलना चाहिये।

(5) पूरी बात को पढ़ चुकने पर उसकी एक रूप-रेखा मन में बना लेनी चाहिये।

(6) पढ़े हुये पर टिप्पणियां लिखते चलना चाहिये।

त्वरित मौन पाठ का उद्देश्य विशेष रूप से मनोरंजन की प्राप्ति है। पुस्तकालय अथवा घर पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं तथा समाचर-पत्रों का पढ़ना इस प्रकार के मौन पाठ के ही अतर्गत आता है।

मौन वाचन के लाभ—

(1) मौन वाचन में सस्वर वाचन से बहुत अधिक पढ़ा जा सकता है। बालक में थोड़े समय में अधिक पढ़ने की आदत पड़ जाती है।

(2) मौन वाचन में केवल मस्तिष्क और आँखों पर बल पड़ता है। ज्ञानेन्द्रियाँ शान्त रूप में कार्य करती हैं, अतः मौन पाठ पढ़ने का वह सबसे सरल रूप है जिसमें मानसिक शक्ति कम से कम व्यय होती है।

(3) मौन वाचन में क्योंकि बालक स्वयं समझकर पढ़ने का प्रयत्न कता है। अतः उसमें स्वावलम्बन की प्रवृत्ति पैदा हो जाती है। उसमें स्वयं पढ़ने, सोचने, विचार करने की क्षमता उत्पन्न हो जाती है।

(4) विशेष रूप से विचारात्मक लेखों को पढ़ने के लिये मौन वाचन करना बहुत आवश्यक है क्योंकि सस्वर पाठ से लम्बे, गम्भीर व मननीय लेखों को पढ़ कर समझना व आनन्द प्राप्त करना कठिन कार्य है। मौन पाठ के द्वारा पाठ्य-विषय का अध्ययन भी हो जाता है तथा आनन्द भी प्राप्त होता है।

मौन पाठ के महत्व पर ब्राइन ने लिखा है कि मौन वाचन में निश्चित रूप से मितव्ययता है। यह प्रतिदिन के जीवन कार्यों के लिये सर्वोत्तम विधि है।

मौन वाचन से होने वाली हानियाँ—

1. **व्यक्तिगत विभिन्नताओं के कारण भी सभी छात्र मौन वाचन से लाभान्वित नहीं हो पाते।** कुछ विद्यार्थी सुनकर शीघ्र समझ लेते हैं और कुछ देख कर किन्तु सम्भवतः सुनने वालों की संख्या देखकर शीघ्र समझने वालों की अपेक्षा अधिक कही गई है। मौन वाचन में सुनने की क्योंकि कोई क्रिया नहीं होती, अतः अधिकतर विद्यार्थी इससे लाभ नहीं उठा सकते।

2. इसमें क्योंकि सस्वर वाचन नहीं होता। **अतः इस विधि से विद्यार्थियों में उच्चारण सम्बन्धी त्रुटियों का परिष्कार सम्भव नहीं है।** विद्यार्थियों में वार्तालाप की योग्यता का विकास नहीं हो पाता तथा वे शुद्ध व अशुद्ध बोलने में कोई अन्तर नहीं समझ पाते।

मौन वाचन के ये दोष भी ऐसे नहीं हैं जो दूर न कि जा सकते हों, मौन पाठ के साथ कक्षा से सस्वर पाठ भी होता ही रहता है, अतः मौन पाठ के दोष नगण्य ही हैं। प्रयत्न इस बात का किया जाना चाहिये कि विद्यार्थी मौन पाठ के सिद्धान्तों को समझें तथा उनमें स्वाध्याय की प्रवृत्ति जागृत हो।

अध्ययन— वाचन की अन्तिम अवस्था अध्ययन है। ज्ञानोपार्जन का मुख्य आधार अध्ययन ही है। मौन वाचन तथा स्वर वाचन तो छात्रों को अध्ययन के लिये प्रेरित करने के लिये ही है। वह छात्र जब ऊँची कक्षाओं में प्रवेश पाता है अथवा विद्यालय के जीवन से

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE 2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

निकलकर सामाजिक जीवन में प्रवेश करता है तब ज्ञान की प्राप्ति के लिये उसे अध्ययन का ही आश्रय ग्रहण करना पड़ता है। अध्ययन करते रहने से विद्यार्थी में शीघ्र पढ़ने और पढ़े हुए का अर्थ समझने की शक्ति का विकास होता है। अध्ययन के अन्तर्गत निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक है—

1. छात्र पढ़ने के साथ-साथ लिपिबद्ध विचारों को तुरन्त ग्रहण करते चलें।
2. वे पढ़े हुए भावों, विचारों को अपने मस्तिष्क में समीक्षा करते चलें तथा एक उचित निष्कर्ष पर पहुँचे।
3. उन्हें त्वरित गति से पढ़ने का अभ्यास आवश्यक है।
4. छात्र मौन वाचन के रूप में ही पढ़े।

मौन वाचन का संचालन— कक्षा में मौन पाठ का संचालन करते समय अध्यापक को निम्नलिखित बातें ध्यान में रखनी चाहियें—

(1) **छात्र मौन वाचन करते समय बिल्कुल भी आवाज न करें, न वे होंठ हिलायें न गुनगुनायें।** कक्षा का वातावरण निस्तब्ध रहे। राइबर्न के अनुसार—

"मौन पाठ के प्रारम्भ से ही इस तथ्य पर ध्यान केन्द्रित किया जाना चाहिए कि वाचन पूर्णरूप से मौन हो, इसमें गुनगुनाहट या फुसफुसाहट न हो। बालकों को प्रारम्भ से ही इस बात के लिए प्रशिक्षित किया जाना चाहिये कि जब वे स्वयं के लिए पढ़ रहे हों तब न तो उनके होंठ हिलें और न ही वे शब्दों को उच्चरित करें अन्यथा मौन पाठ एक प्रकार से संशोधिक रूप में सस्वर पाठ ही होगा और इस प्रकार छात्र अपने नेत्रों से पढ़ना कभी नहीं सीख पायेंगे।"

(2) **अध्यापक कक्षा के मध्य में खड़ा होकर, मौन वाचन करते हुये छात्रों का निरीक्षण करे।** यदि उसे कुछ निर्देश व आदेश देने हों तो वह मौन पाठ प्रारम्भ करने से पूर्व या पश्चात् में दे।

(3) **छात्रों को उतने ही अंश का मौन वाचन करने को कहा जायि जिसे वे बिना किसी कठिनाई के हृदयंगम कर सकें,** यदि उन्हें अत्यधिक लम्बा अंश मौन वाचन के लिये दिया जायेगा तो वे निश्चित रूप से अपने अवधान को केन्द्रित नहीं कर पायेंगे।

(4) **मौन वाचन में न तो आवश्यकता से अधिक समय दिया जाये और न आवश्यकता से कम।** यदि मौन पाठ शीघ्र समाप्त करने का आदेश दिया जायेगा। विद्यार्थी विचार विश्लेषण के प्रश्नों का उत्तर ठीक प्रकार से न दे सकेंगे तथा यदि मौन पाठ के लिये आवश्यकता से अधिक समय दिया जायेगा तो मौन पाठ का उद्देश्य ही एक प्रकार से विफल हो जायेगा। प्रयत्न तो इसी बात का किया जाना चाहिये कि विद्यार्थी मौन पाठ में पहले की अपेक्षा कम समय लगायें।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

11

लेखन शिक्षण

भाषा के दो रूप हैं—

1. मौखिक भाषा
2. लिखित भाषा

मौखिक भाषा के अन्तर्गत व्यक्ति ध्वन्यात्मक संकेतों का प्रयोग भावों की अभिव्यक्ति के लिये करता है। इन्हीं ध्वनियों को लिपिबद्ध कर जब भाषा को स्थायित्व प्रदान किया जाता है, तब यह उसका लिखित रूप कहलाता है। भाषा के इस लिखित रूप को ही लेखन की शिक्षा कहा जाता है।

भाषा-शिक्षण के अन्तर्गत 'लेखन' का अर्थ मात्र लिखना नहीं होता वरन् अक्षरों की सुडौलता एवं सौन्दर्य इसके महत्वपूर्ण अंग हैं। कहा जा सकता है कि 'चित्र खींचना' एवं 'चित्र लिखना' इसके पर्याय हैं। प्राचीन एवं मध्य काल में सुन्दर लेखन पर पर्याप्त बल दिया जाता था किन्तु आधुनिक काल में बॉल पैन, मुद्रण यन्त्रों तथा टाइप राइटरों के प्रयोग के कारण लेखन में सौंदर्य की उपेक्षा होने लगी है।

लेखन शिक्षण के उद्देश्य

लेखन शिक्षण का मुख्य उद्देश्य यह है कि बालक अपने भाव, विचार व अनुभवों को लिखित भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त कर सके तथा दूसरों द्वारा लिखित भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त विचारों को समझ सके। लेखन शिक्षण के उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

ज्ञान—

(1) छात्रों को लिपि, शब्द, सूक्तियों, लोकोक्ति एवं मुहावरों का ज्ञान कराना।

(2) उन्हें साहित्य की विभिन्न विधाओं एवं विभिन्न लेखन शैलियों का ज्ञान कराना।

(3) उन्हें शब्दों की शुद्ध वर्तनी, वाक्य रचना के नियम एवं विराम-चिन्हों के प्रयोग से परिचित कराना।

कौशल—

(1) छात्रों को शुद्ध उच्चारण तथा कुशलतापूर्वक सस्वर पठन एवं मौन पठन में निपुण बनाना।

(2) उनमें पठित अंश के केन्द्रीय भाव को समझने की योग्यता का विकास करना।

(3) उन्हें अपने विचारों को तार्किक क्रम में अभिव्यक्त करने एवं विषयानुकूल भाषा-शैली का प्रयोग करने में निपुण बनाना।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

(4) उन्हें सुलेख लिखने, शब्दों की शुद्ध वर्तनी लिखने एवं व्याकरण सम्मत वाक्य रचना करने में निपुण बनाना।

रुचि—

(1) छात्रों में अपने भावों एवं विचारों को लेखबद्ध करने की रुचि उत्पन्न करना।

(2) उनमें स्वाध्याय के प्रति रुचि उत्पन्न करना।

अभिवृत्ति—

(1) छात्रों को समाज, जाति व देश के प्रति संवेदनशील बनाना।

(2) उनमें सृजनात्मक शक्तियों का विकास कर उन्हें मौलिक रचना करने की ओर प्रवृत्त करना।

लेखन शिक्षण का महत्व

(1) किसी भी भाषा पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि पढ़ने के साथ-साथ उस भाषा का लिखना भी सीखा जाए।

(2) अपने देश की सभ्यता तथा संस्कृति का ज्ञान हमें लेखन-कला के माध्यम से ही होता है। यदि लेखन-कला न होती, तो प्राचीन धार्मिक तथा राजनीतिक ग्रन्थ हमारे सामने न आ पाते और हम प्राचीन संस्कृति के ज्ञान से वंचित रह जाते।

(3) आधुनिक सांसकृतिक जीवन में भाग लेने के लिये लिखना-जानना अति आवश्यक है। बिना लिखना जाने हम न तो किसी को पत्र लिख सकते हैं और न किसी के पत्रों का उत्तर दे सकते हैं। दूसरे शब्दों में, लिखना न जाने पर समाज के विभिन्न सदस्यों से सम्पर्क स्थापित करने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा।

(4) विचार करने तथा मनन करने के लिये लेखन का ज्ञान विशेष सहायक होता है। किसी विचार को लिखकर उस पर मनन सरलता से किया जा सकता है।

(5) बौद्धिक विकास के लिए भी लिखना और सीखना परम आवश्यक है। हमारा बौद्धिक विकास ठीक प्रकार से तभी हो पाता है जब हम अपने विचारों को लेखन-शक्ति द्वारा ठीक प्रकार से अभिव्यक्त कर लेते हैं। अभिव्यक्ति के लिए ही समाचार-पत्रों तथा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में विद्वान् लोग लेख लिखते हैं। किसी भाषा को प्रसारित करने से पूर्व भी उसे सफल बनाने के लिए लिख लेना आवश्यक होता है।

(6) भाषा में एकरूपता तथा स्थायित्व लेखन के माध्यम से ही आता है।

(7) लेखन-कला बालकों की अंगुलियों और मांसपेशियाँ को दृढ़ बनाती है। इसमें मस्तिष्क तथा मांसपेशियाँ दोनों का व्यायाम साथ-साथ चलता है।

(8) संसार के विभिन्न देशों में परस्पर सम्बन्ध लिखित भाषा के माध्यम से ही होता है।

लेखन शिक्षण प्रारम्भ करने का समय— बालकों को प्रथम लिखना सिखाया जाये या वाचन, इस विषय पर शिक्षा शास्त्रियों और मोवैज्ञानिकों में मतभेद है। जहाँ फ्रोबेल ने पढ़ने की क्रिया को पहले और लिखने की क्रिया को बाद में रखने का सुझाव दिया है।

वहीं मेरिया मान्टेसरी के मतानुसार बालक को सर्वप्रथम लिखना सिखाया जाये तत्पश्चात् पढ़ना। उनके विचार में पढ़ने की अपेक्षा लिखना सरल है। पढ़ने में बालक को मानसिक परिश्रम की आवश्यकता रहती है जबकि लिखने में केवल अनुकरण की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आवश्यकता होती है। लिखने में प्रमुख रूप में माँसपेशियों पर बल पड़ता है। जिसका अभ्यास शिक्षकों की सहायता से पर्याप्त हो जाता है। खेल-खेल में बालक कलम पकड़ना सीख जाता है। दूसरे, उनके अनुसार बालकों को लिखने में पढ़ने की अपेक्षा अधिक आनन्द आता है।

परन्तु यह सोचना कि लिखना, पढ़ने की अपेक्षा कहीं अधिक सरल है, एक प्रकार से पूर्णतया सत्य नहीं है। इस विषय में भाई **योगेन्द्र** जीत लिखते हैं— "**श्रीमती मान्टेसरी ने चाहे लिखने की क्रिया को पढ़ने की क्रिया से सरल कहा हो, परन्तु है वह पढ़ने की क्रिया से कठिन ही। पढ़ने में बालकों को अक्षरों की आकृति का ज्ञान होना चाहिए, परन्तु लिखने में अक्षरों की आकृति के साथ-साथ उन अक्षरों को वैसा का वैसा लिख सकने की क्षमता भी होनी चाहिये। दूसरे, इस बात का अनुभव बहुतों ने किया होगा कि यदि किसी नई भाषा को सीखने में हमें छः सप्ताह लगते हैं, तो उस भाषा में लिखना सीखने में हमें छः सप्ताह लगते हैं, तो उस भाषा में लिखना सीखने में अधिक समय लगेगा।**" इस प्रकार लेखन-क्रिया कोई सरल क्रिया नहीं। अतः अध्यापक को इसका शिक्षण देने में आवश्यक सावधानी ध्यान में रखनी चाहिये।

कुछ विद्वानों के अनुसार पढ़ना और लिखना साथ-साथ चलना चाहिए। जैसा कि **सरयू प्रसाद चौबे** लिखते हैं— "**पढ़ने के साथ-साथ लिखना सिखाने में कई लाभ भी हैं। प्रथम यह है कि दे ना, सुनना तथा करना— ये तीनों क्रियाएँ लिखने में साथ-साथ चलती हैं। अतः लिखना और पढ़ना एक-दसरे के सहायक हो जाते हैं। द्वितीय लाभ यह है कि लिखने की शारीरिक क्रियाएँ पढ़ने को रोचक बना देती है।**" अतः पढ़ने के साथ-साथ लिखना सिखाने में कोई दोष नहीं है।

लेखन शिक्षण विधियाँ (साधन) निम्नलिखित हैं—

(1) रेखाओं के माध्यम से— कुछ विद्वानों के अनुसार तीन या चार वर्ष की आयु के बालक सीधी, तिरछी या उल्टी-सीधी रेखाएँ खींचने लगते हैं। अतः इस अवस्था नें बालकों को रेखा खींचने का ही अभ्यास करना चाहिए। इस विषय में **डॉ० सरयू प्रसाद चौबे** लिखते हैं— "**सबसे पहले बच्चे को बालू में और फिर स्लेट पर चील-बिलैया करने देना चाहिये। ऐसा करने से बच्चे के हाथ को आवश्यक मोड़ देने का अभ्यास पड़ जाता है। तदनन्तर उसे परिचित वस्तुओं की आकृतियाँ खींचने देना चाहिए। ये आकृतियां बिल्कुल ठीक नहीं बनेंगी। अतः हाथ पकड़कर उसकी सहायता की जाये और खाने पर उसे स्वयं अभ्यास करने देना चाहिये। इस प्रकार सीधी-टेढ़ी रेखाएं, वृत्त, अर्द्धवृत्त आदि खींचने का काम-चलाऊ अभ्यास हो जायेगा। इसके बाद परिचित वस्तुओं के मात्रा-रहित नामों से लिखने का अभ्यास करना उचित है।**" बालकों के हाथ जब भली प्रकार सध जाएं, तब मात्रा लगाना तथा गोल घुण्डियों का अभ्यास कराया जाये।

(2) माण्टेसरी विधि— माण्टेसरी प्रणाली में लिखना सिखाने के लिए तीन विधियों का प्रयोग किया जाता है—

(i) कलम पकड़ने का अभ्यास— कलम पकड़ने के अभ्यास के लिये कागज या पट्टी पर रेखागणित की विभिन्न आकृतियाँ खींचकर उनमें लेखनी द्वारा स्याही भरवाई जाती है। धीरे-धीरे बालक कलम पकड़ना सीख जाता है।

(ii) अक्षरों का स्वरूप समझना— अक्षरों के स्वरूप को समझने के लिये बालक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
रेगमाल कागज के अक्षरों पर अँगुली फेरते हैं। इस क्रिया द्वारा बालक अक्षरों के स्वरूप को समझने का प्रयास करते हैं।

(iii) अक्षरों का ध्वन्यात्मक विश्लेषण— अक्षरों पर अंगुली फेरने के साथ-साथ बालक उस अक्षर की ध्वनि का भी उच्चारण करता जाता है। इस क्रिया के माध्यम से वह अक्षर उसकी ध्वनि में साहचर्य की स्थापना कर लेता है। इसके पश्चात् बालक स्वतः लिखना प्रारम्भ कर देता है।

इस विधि का सबसे बड़ा दोष यह है कि बालक व्यर्थ के अक्षरों के प्रति अधिक रुचि नहीं रखते। दूसरे, देवनागरी लिपि में इसका प्रयोग नहीं किया जा सकता।

(3) मनोवैज्ञानिक विधि— इस विधि के अन्तर्गत बालकों को सर्वप्रथम वर्णमाला के अक्षर तथा शब्द आदि सिखाने की अपेक्षा पूर्ण वाक्य को बोलना तथा उनका लिखना सिखाया जाये। इस विषय में एक विद्वान् का कथन है कि, **"सर्वप्रथम हमें बच्चों को बोलना सिखाना चाहिए। इन पूर्ण वाक्यों के लिये किसी चिन्ह विशेष के सिखाने की आवश्यकता नहीं। भाव-चित्र उनके मस्तिष्क में बन जाएँ, इतना ही पर्याप्त होता है। जब बच्चे मौखिक रूप से पूर्ण वाक्य बोलने लगें और उनकी कर्मेन्द्रियाँ तथा ज्ञानेन्द्रियां दृढ़ हो जायें, तो उन्हें पढ़ने व लिखने के लिये तैयार करना चाहिए।"** एक अन्य लेखक के शब्दों में, बालक जब पाठशाला में भर्ती होने आता है, तो वह छोटे-छोटे वाक्यों को बोलना जानता है। वर्णमाला के भिन्न-भिन्न अक्षर उसके लिये निरर्थक तथा सारहीन होते हैं। उनका अपने में कोई अर्थ नहीं होता। आपक में मिलकर, जब वे शब्दों अथवा वाक्यों के रूप में आते हैं, तभी वे सार्थक बनते हैं अर्थात् उनका अर्थ होता है। अतएव, शिक्षाशास्त्रियों ने इस विषय में जो प्रयोग किए हैं, उनके आधार पर बालकों को पहले सार्थक शब्द अथवा वाक्य ही सिखाये जाएं।

(4) पेस्टालॉजी विधि— इस विधि का प्रमुख आधार सरल से कठिन की ओर चलना है। अक्षर ज्ञान इसमें पहले कराया जाता है। अक्षरों की आकृति को विभिन्न टुकड़ों में विभाजित कर लिया जाता है, तत्पश्चात् टुकड़ों के योग से उस अक्षर की रचना कराई जाती है। पहले उन वर्णों को सिखाया जाता है जो सरल होते हैं।

(5) अनुकरण विधि— अध्यापक श्यामपट, स्लेट या तख्ती पर स्पष्टता और सुडौलता के साथ वर्ण लिख देता है। बालक अध्यापक द्वारा लिखे गए वर्णों को लिखते हैं। इस प्रकार अनुकरण के माध्यम से बालक लिखना सीख जाते हैं।

(6) जेकांटार विधि— जेकांटार विधि में बालकों के सामने सम्पूर्ण वाक्य प्रस्तुत किया जाता है। बालक अनुकरण करते हुए वाक्य का एक शब्द लिखते हैं तथा सम्पूर्ण वाक्य को पुनः मिलाकर उसकी शुद्धता का पता लगाते हैं। अन्त में अध्यापक बालकों को स्मृति के आधार पर सम्पूर्ण वाक्य लिखने के लिये कहता है।

सुन्दर तथा शीघ्र लेखन के उपाय

निम्नलिखित उपायों के द्वारा सुन्दर एवं शीघ्र लिखना सिखाया जाता है—

(1) बैठने का आसन— अध्यापक को बालकों के बैठने के आसन पर विशेष रूप से ध्यान देना आवश्यक है। यदि बालक ठीक प्रकार से बैठेंगे नहीं, तो उनसे ठीक प्रकार से लिखा भी नहीं जायेगा। अध्यापक को यह ध्यान रखना चाहिए कि लिखना भी एक कला है। प्रायः छात्र अपना सिर मेज पर झुकाकर लिखते हैं। यह दोषपूर्ण ढंग है। लिखते समय

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
यथासम्भव ऋण-डेस्क का प्रयोग करना चाहिये। ऋण-डेस्क के अन्दर कुर्सी का आन्तरिक भाग अन्दर की ओर घुसा हुआ रहता है जिससे छात्र को लिखने में सुविधा रहती है। लिखित कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व छात्रों का शरीर सन्तुलित रहना चाहिये। कुर्सी पर जांघें सीधी रहें तथा उनका निचला भाग लम्बरूप में रहना चाहिए। पैर फर्श पर टिके हों तथा बायें हाथ में कागज सम्हाला जाये। आँखें कापी से लगभग एक फुट दूरी पर रहनी चाहियें।

(2) **कलम पकड़ने का अभ्यास**— कलम पकड़ने पर भी विशेष रूप से ध्यान दिया जाये। कलम छात्र इस ढंग से पकड़ें की पहली और दूसरी उँगली के बीच में कलम रखकर उसे अँगूठे से पकड़ना चाहिए। निब से लगभग एक इंच ऊपर कलम को पकड़ना चाहिए।

(3) **लेखन सामग्री**— स्पष्ट और सुडौल लिखने के लिये उचित लेखन सामग्री का होना आवश्यक है। इस विषय में रायबर्न का कथन उल्लेखनीय है। वे लिखते हैं, "छात्र प्रारम्भिक कक्षाओं में स्लेट और बत्ती का उपयोग करें। प्रारम्भिक कक्षाओं में स्याही के प्रयोग में मूल्य संदिग्ध हैं क्योंकि छात्रों को इसके कारण साफ रहने में बड़ी असुविधा रहती है। स्याही का उपयोग उस समय तक न किया जाए, जब तक कि छात्र उसका उपयोग अच्छी प्रकार से न कर सकें। अधिकांश विद्वानों का मानना है कि नागरी लिपि का प्रारम्भ तख्ती पर ही किया जाना चाहिये। तख्ती चौरस तथा इस प्रकार की होनी चाहिये कि प्रत्येक छात्र उस पर ठीक प्रकार से लिख सके। अक्षर स्पष्ट, चमकीले तभी उभर सकेंगे जबकि खड़िया भी अच्छी होगी। उच्च कक्षाओं में निब और होल्डर का प्रयोग ही किया जाना चाहिये। फाउण्टेन पेन का प्रयोग विश्वविद्यालय स्तर पर ही सही रहता है।"

(4) **लेखन की शैली**— बालकों की लेखन शैली पर भी ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है। कुछ छात्र तिरछी लिखावट लिखते हैं। अध्यापक को यथासम्भव तिरछी लिखावट को निरुत्साहित करना चाहिये। तिरछा लिखने से बालकों की माँस पेशियों पर बुरा प्रभाव पड़ता है और थकान भी शीघ्र आती है। सीधी लिखावट बालकों के लिये सर्वोत्तम होती है क्योंकि इस शैली में लिखने में थकान नहीं होती तथा अक्षर भी स्पष्ट व सुडौल बनते हैं।

(5) **श्रुतिलेख का प्रयोग**— बालकों को तीव्र गति से लिखने का अभ्यास कराने हेतु श्रुतिलेख का प्रयोग किया जा सकता है। कोई योग्य छात्र अथवा अध्यापक किसी पाठ को बोलता जाता है तथा छात्र सुनकर लिखने का अभ्यास करते हैं। पहले श्रुतिलेख धीरे-धीरे बोलना चाहिये और बाद में उसकी गति तीव्र कर देनी चाहिये। श्रुति लेख की अशुद्धियों को अवश्य शुद्ध कराना चाहिए।

(6) **अक्षरों की सुडौलता और स्पष्टता**— हाथ के सध जाने पर अध्यापक को अक्षरों की सुडौलता तथा स्पष्टता की ओर ध्यान देना चाहिए। अध्यापक को चाहिए कि जब छात्र लिख रहे हों, उस समय प्रत्येक बालक के लेख को जाकर देखे कि अक्षर सुडौल व स्पष्ट है अथवा नहीं। सुन्दर व सुडौल अक्षर का प्रत्येक अंग ठीक-ठाक अनुपात में होता है। अक्षर न अधिक बड़े होने चाहिएं और न अधिक छोटे। दो शब्दों के मध्य कम से कम एक अक्षर के बराबर की दूरी अवश्य होनी चाहिये। दो पंक्तियों के मध्य अन्तर भी छोड़ना चाहिए।

(7) **आदर्श नमूने**— अध्यापक को स्वयं अक्षर अथवा शब्द अत्यन्त स्पष्ट और सुडौल बनाने चाहिएं जिससे कि उनके आधार पर छात्र लिख सकें।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

(8) **अभ्यास**— लिखने की कला अभ्यास से आती है, इसलिए छात्रों को लिखने का पर्याप्त अभ्यास कराना चाहिए।

लेखन शिक्षण के लिए आवश्यक सावधानियाँ— (1) जिन अक्षरों को बालक थोड़े प्रयत्न द्वारा लिख सकते हैं, पहले उनको ही चुना जाना चाहिये। फिर उन अक्षरों द्वारा शब्दों का निर्माण कराया जाना चाहिये।

(2) प्राथमिक अवस्था में बालक बड़े-बड़े अक्षर लिखें। धीरे-धीरे करके आकार को छोटा किया जाना चाहिए।

(3) पहले बालकों के सुलेख की ओर अधिक ध्यान देना चाहिये तथा वें जो कुछ भी लिखें, ठीक-ठीक लिखें। लिखने की गति की ओर ध्यान बाद में दिया जाना चाहिये।

(4) यदि बालक को सर्वप्रथम उनका नाम लिखना ही सिखाया जाए, तो अति उत्तम है। ऐसा करने से बालक को प्रसन्नता का अनुभव होगा और वह लिखने में रुचि लेने लगेगा।

(5) विद्वान जे० मैकको और श्री जे० मैनरी के अनुसार, "जिन वस्तुओं पर लिखने की शिक्षा प्रदान की जाये, उनका क्रम इस प्रकार रहे— जमीन पर उँगी से, श्यामपट पर खड़िया से, फिर स्लेट पर चिकनी पेन्सिल (बत्ती से) और अन्त में कागज पर कलम और स्याही से।"

(6) लिखना सिखाने में सदा '**सरल से कठिन**' सूत्र का ध्यान रखा जाना चाहिये। पहले बालकों से सरल शब्द लिखवाये जाने चाहिएं, बाद में कठिन।

(7) जिस घण्टे में लिखना सिखाया जाये, वह घण्टा अधिक बड़ा न हो। अधिक लम्बे घण्टे से बालक थक जायेंगे तथा उनमें लेखन के प्रति अरुचि उत्पन्न हो जायेगी।

(8) बालकों की रुचि को ध्यान में रखते हुए अरुचिकर अक्षर तथा शब्दों की पुनरावृत्ति की जा सकती है।

(9) लेखन शिक्षण में बालकों के व्यक्तिगत भेदों को नहीं भूला जाये।

(10) वह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि बालक किसी पाठ को ठीक-ठीक पढ़ लेता है, तो उसे ठीक लिख भी सकेगा। अतः पढ़े हुए पाठ में से लेखन का अभ्यास कराया जाना चाहिए।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

12

कविता तथा उसका शिक्षण

पद्य अथवा कविता का अर्थ

कविता साहित्य का एक अंग है। कविता की एक निश्चित परिभाषा देना कठिन है परन्तु इतना कहा जा सकता है कि कविता आत्मा द्वारा अनुभूत भावों तथा विचारों का प्रस्फुटन है जो छन्द तथा नियमित गति से बंधी होने के कारण ताल और लय को अपने में समाविष्ट करती है। हिन्दी के अनेक विद्वानों ने अपने विचारानुसार कविता को परिभाषित करने का प्रयत्न किया है।

पं० जगन्नाथ के अनुसार— "रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम् सुन्दर अर्थ प्रतिपादित करने वाला शब्द ही काव्य कहलाता है।"

प्रो० रमन बिहारी के अनुसार— "मानव सौन्दर्यप्रिय प्राणी है। वह समाज में रहकर कुछ अनुभूति करता है तथा उसे प्रकट करता है, भिन्न-भिन्न माध्मयों से। जब वह अपनी अनुभूति को भाषा के माध्य से इस प्रकार अभिव्यक्त करता है कि उसमें सरलता तथा सरसता हो, माधुर्य एवं ओज हो और हृदय को स्पन्दित करने की शक्ति हो, तो हम उसे कविता कहते हैं।"

श्री रामचन्द्र के अनुसार— "कविता वह साधन है जिसके द्वारा शेष सृष्टि के साथ हमारे रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा होती है।"

श्री जयशंकर प्रसाद के अनुसार— "पद्य आत्मा की संकल्पनात्मक अनुभूति है।"

आन्नर्धनाचार्य के अनुसार— "काव्यस्यात्मा ध्वनिः" काव्य की आत्मा ध्वनि है।

कवि विश्वनाथ के अनुसार— "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्" रस से युक्त वाक्य ही काव्य है।

भारतेन्दु के अनुसार— "कविता मूल में जीवन की आलोचना है।"

गुलाबराय के अनुसार— "काव्य संसार के प्रति कवि की भाव-प्रधान मानसिक प्रतिक्रियाओं की कल्पना के ढाँचे में ढली हुई है, श्रेय की प्रेमरूपी प्रभावोत्पादक अभिव्यक्ति है।"

कारलाइन के अनुसार— "संगीतमय विचार को ही पद्य कहते हैं।"

कविता शिक्षण की विशेषतायें

(1) **अनुभूति प्रधानता**— पद्य अनुभूति के रूप में हृदय से उमड़ कर कवि की कलम से लिखी जाती है। कवि के रचनाबद्ध भाव को ही पद्य कहते हैं। पद्य रागात्मक सम्बन्ध की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

रक्षा तथा निर्वाह है। हमारा हृदय काव्य के समय इस भौतिक संसार से ऊपर उठकर काव्य के अलौकिक आलोक में विचरण करता है। इसमें कल्पना तथा अनुभूति की प्रधानता होती है।

(2) सत्यम् शिवम् सुन्दरम् की भावना— 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' कविता के मुख्य उद्देश्य हैं। किन्तु कवि के सत्य विधान के सत्य के समान सत्य नहीं होता अपितु उसमें कल्पना का भी मिश्रण होता है जो कविता को मुग्धकारी तथा सुन्दर बनाता है।

(3) भाषा— कविता की भाषा सरल, सरस, मधुर तथा गाने योग्य होनी चाहिये।

(4) संगीतात्मक— संगीत काव्य की हृदयगति होता है। लय, ताल तथा स्वरों को आरोह-अवरोह के कारण ही कविता के भाव उभर कर आते हैं।

(5) रसानुभूति— रस तथा काव्य परस्पर आधारित हैं। एक के बिना दूसरा पक्ष कमजोर हो जाता है। इसी कारण रस को काव्य की आत्मा कहा गया है।

(6) स्थायित्व— कविता में अमूल तत्व होता है। उत्कृष्ट काव्य-कृति सदैव स्थायी होती है।

विभिन्न स्तरों पर कविता शिक्षण के उद्देश्य—

(1) प्राथमिक स्तर—

(i) कविता के द्वारा आनन्द का वातावरण उत्पन्न करना।
(ii) कविता गाकर अभिनय द्वारा प्रस्तुत करना।
(iii) जानवरों तथा पक्षियों की कविताओं को सुनाना।
(iv) कविता के प्रति रुचि पैदा करना।
(v) गति-यति-लय तथा स्वर का ज्ञान प्रदान करना।
(vi) समूह गीत के द्वारा एकता का परिचय देना।
(vii) कविता के आधार पर भजन सुनाना।

(2) माध्यमिक स्तर

(i) भावों को समझने की क्षमता प्रदान करना।
(ii) कविता का कंठस्थीकरण करना।
(iii) कविता स्वर उपयुक्त गति-यति-लय, भाव तथा आरोह-अवरोह क्रम वाचन को ज्ञान प्रदान करना।
(iv) कविता को रंगमंच के माध्यम से प्रस्तुत करना।

(3) उच्चतर माध्यमिक स्तर

(i) कवि की अनुभूति का ज्ञान कराना।
(ii) विद्यार्थियों की कल्पना शक्ति को विकसित करना।
(iii) सौन्दर्यानुभूति का ज्ञान कराना।
(iv) विद्यार्थियों की तर्क, विचार तथा कल्पना शक्ति को विकसित करना।
(v) कविता की विभिन्न विधाओं का ज्ञान प्रदान करना।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

(vi) कविता का आलोचनात्मक अध्ययन कराना।
Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

(vii) भाव गति-यति-लय, आरोह-अवरोह तथा क्रमानुसार कविता वाचन की क्षमता प्रदान करना।

(viii) विद्यार्थियों को कविता लिखने की प्रेरणा देना।

काव्य शिक्षण के अन्य उद्देश्य

(1) कौशलागत उद्देश्य।

(2) विषयागत उद्देश्य।

(3) भाषागत उद्देश्य।

काव्य शिक्षण के विशिष्ट उद्देश्य

(i) विद्यार्थियों में सौन्दर्यानुभूति की भावना का विकास करना।

(ii) विद्यार्थियों में कवि का भावों के विचारों तथा प्रतिपादन शैली का ज्ञान कराना।

(iii) विद्यार्थियों को काव्य के सही स्वरूप का ज्ञान कराना।

(iv) विद्यार्थियों में काव्य का भावार्थ ग्रहण करने की क्षमता उत्पन्न करना।

(v) विद्यार्थियों का नैतिक तथा चारित्रिक विकास।

काव्य रसानुभूति का विषय है। ज्ञातव्य है कि काव्य शिक्षण का प्रमुख उद्देश्य छात्रों को सौन्दर्य बोध कराना, उनकी सौन्दर्यानुभूति को जागृत करना है। अब प्रश्न उठता है कि काव्य-शिक्षण किस प्रणाली के आधार पर किया जाये। इस विषय में विद्वानों के अनेक मत हैं। प्रो० हैडो का कथन है— "काव्य शिक्षण-प्रणाली प्रेम करने के समान है। प्रत्येक व्यक्ति अपने तरीके से प्यार करता है और अपने प्रेमी को भी अपने ढंग से प्राप्त करने का प्रयास करता है। इस क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के लिए कोई प्रणाली निश्चित नहीं की जा सकती। यही बात काव्य शिक्षण के सम्बन्ध में कही जा सकती है।" प्रत्येक अध्यापक को अपनी स्वयं की प्रणाली के उद्देश्यों की प्राप्ति करनी चाहिये। यह आवश्यक है कि कविता-शिक्षण के लिए कुछ सिद्धान्तों की रूपरेखा अवश्य प्रस्तुत की जा सकती है, परन्तु निश्चित सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जा सकता है। काव्य-शिक्षण के सामान्य सिद्धान्तों के विषय में विद्वानों के निम्न मत हैं—

(1) कुछ विद्वानों के अनुसार कविता का आदर्श वाचन करने से ही उसका भाव स्पष्ट हो जाता है। अतः व्याख्या, तुलना आदि करने की कोई आवश्यकता नहीं।

(2) कुछ विद्वानों के अनुसार कविता को प्रत्येक पंक्ति का एक-एक करके अर्थ कराना चाहिए। काव्य के अलंकार, रस तथा छन्द को बिना समझे बालक काव्य के भावार्थ को नहीं समझ सकते। इस प्रकार इन विद्वानों के अनुसार कविता के भाव-सौन्दर्य को स्पष्ट करने के लिए उसके अर्थ को स्पष्ट करना आवश्यक है।

(3) तीसरे मत के अनुसार कविता पढ़ायी नहीं जा सकती। कविता को तो बालकों के समक्ष इस प्रकार प्रस्तुत किया जाना चाहिए जिससे कि वे उसकी समस्त भावनाओं को समझ सकें। उपर्युक्त वर्णित तीनों ही मत अपने में पूर्ण नहीं कहे जा सकते हैं, परन्तु निम्नांकित कुछ प्रणालियों का वर्णन किया जा सकता है :

1. गीत प्रणाली— गीत प्रणाली का प्रयोग छोटी कक्षाओं में ही किया जाता है। छोटी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उसकी शैली पर प्रकाश डालता है। इस प्रणाली का मुख्य उद्देश्य छात्रों को परीक्षा के लिए तैयार करना होता है। अतः यह एक उत्तम प्रणाली नहीं कही जा सकती।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, काव्य शिक्षण का प्रमुख उद्देश्य छात्रों में सौन्दर्यानुभूति उत्पन्न करना है, न कि कवि की जानकारी प्रदान करना। कविता यदि प्रभावशाली ढंग से पढ़ाई जायेगी तो छात्र पढ़ने के पश्चात् उस कवि के विषय में अपने-आप जानने को उत्सुक होंगे। छोटी कक्षाओं के लिये यह पूर्णतया व्यर्थ है।

(ii) मुख्य विषय की चर्चा करना—इस विधि में अध्यापक कविता के मुख्य विषय की चर्चा छात्रों के सामने करता है। कविता के केन्द्रीय भाव पर भली-भाँति प्रकाश डाला जाता है। यह विधि भी दोषपूर्ण है। कविता के केन्द्रीय भाव पर चर्चा यदि पहले ही कर दी जायेगी, तो स्पष्ट करने को शेष रह ही क्या जायेगा? मध्यवर्ती या केन्द्रीय भाव बता देने के पश्चात् छात्र कविता पढ़ने के प्रति अधिक रुचि तथा उत्सुकता नहीं दिखायेगा। परिणामस्वरूप, कक्षा में उदासीनता छा जायेगी।

(iii) अर्थ-बोध प्रणाली— कार्य-बोध प्रणाली में कविता पढ़ाने से पूर्व कठिन शब्दों और कठिन प्रसंगों को स्पष्ट कर दिया जाता है। अध्यापक श्यामपट पर कविता में आने वाले कठिन शब्दों को व्याख्या सहित लिख देता है। कठिन शब्दों का अर्थ समझ लेने से छात्रों को कविता समझने में सरलता रहती है। अर्थ बताने के अतिरिक्त अध्यापक समस्त कविता का सारांश प्रसंग सहित संक्षेप में बता देता है।

उपर्युक्त शिक्षण प्रणाली यद्यपि छात्रों को समझने के लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकती है, परन्तु काव्य शिक्षण के उद्देश्यों से बहुत दूर है। काव्य शिक्षण से पूर्व शब्दों का अर्थ बता देने से छात्रों की उत्सुकता का हनन होता है। दूसरे, प्रसंग से पृथक करके अर्थ बता देना भी अनुचित है। साथ ही साथ पाठ करने से पूर्व गद्यात्मक भाषा में कविता का सारांश बताना वातावरण में नीरसता उत्पन्न करना है। कविता से अलग करके शब्दों का अर्थ बताने से उन शब्दों के प्रयोग का महत्व कम हो जाता है, जैसा कि भाई योगेन्द्र जीत लिखते हैं, "कविता में प्रयुक्त शब्दों का अर्थ, अर्थ के भीतर सूक्ष्म छटा तथा प्रभाव— यह दूसरे शब्दों के साहचर्य से ही समझा जाता है। कविता के भिन्न-भिन्न चरणों का दो-तीन बार वाचन हो चुकने के पश्चात् कवि-शब्दों का नाद, अर्थ, औचित्य जितनी अच्छी प्रकार से समझ में आ सकता है, उतना केवल मात्र शब्दों के अर्थ बता देने से नहीं।"

(iv) प्रश्न पूछकर— प्रस्तावना का आरम्भ कविता से सम्बन्धित प्रश्न करके भी किया जा सकता है। उदाहरण के लिए यदि **'हल्दी घाटी'** की कविता पढ़ानी है, तो ऐसी दशा में अध्यापक छात्रों से महाराणा प्रताप या राजपूतों के विषय में प्रश्न करके काव्य शिक्षण के लिये उपयुक्त वातावरण का सृजन कर सकते हैं, इसमें सन्देह है।

(v) समानान्तर कविता पाठ द्वारा— प्रस्तावना का प्रारम्भ पढ़ाई जाने वाली कविता के समानान्तर विषय पर दूसरी कविता को सुनाकर भी किया जा सकता है। कविता जो भी सुनाई जाये, वह पढ़ाई जाने वाली कविता के समान भाव वाली होनी चाहिये। उदाहरण के लिये अध्यापक **'हल्दी घाटी'** की कविता पढ़ाना चाहता है, तो ऐसी दशा में में उसे अन्य कोई और वीर रस की कविता प्रस्तावना के लिये छांटकर सुनानी चाहिये। इस विधि द्वारा प्रस्तावना को आकर्षक बनाया जा सकता है तथा कविता पाठ के लिये उचित वातावरण की रचना भी की जा सकती है। अध्यापक को समान भाव की कविता के वाचन में अधिक समय नष्ट नहीं करना चाहिए।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

(vi) मूल कविता से पाठ द्वारा— डॉ० हैडो (Haddow) उपर्युक्त समस्त प्रणालियों को दोषपूर्ण मानते हैं। उनके अनुसार शिक्षण के लिये वातावरण उत्पन्न करने के लिये अन्य साधनों के स्थान पर मूल कविता का पाठ करना ही उचित है। वे लिखते हैं, "Have a faith in the poet and in your pupils and go straight to poem." इस प्रकार प्रो० हैडो प्रस्तावना आदि के झंझट में न पड़कर मूल कविता के पाठ द्वारा काव्य शिक्षण का आरम्भ करना उचित समझते हैं। एक अन्य लेखक के शब्दों में— "प्रस्तावना में व्यर्थ ही समय व्यय करने की उपेक्षा यह अधिक अच्छा होगा कि छात्रगण वास्तविक कवि की अनुभूति के द्वारा कविता के सौन्दर्य को हृदयंगम कर अपनी भावनाओं को विकसित कर सकें।"

2. कविता का वाचन— काव्य शिक्षण में वाचन का सबसे अधिक महत्व है। शिक्षण की सफलता तथा आसफलता का श्रेय वाचन पर निर्भर करता है। कविता वाचन के महत्व पर प्रकाश डालते हुए श्री रायबर्न लिखते हैं— "अध्यापक का प्रथम कार्य, चाहे वह किसी भी कक्षा में न पढ़ रहा हो, यही होगा कि वह कविता का सस्वर वाचन करे। इसी कारण अध्यापक को उत्तम वाचन अवश्य आना चाहिये। छात्रों को जो कुछ भी लाभ कविता सुनने से प्राप्त होगा, वह अध्यापक के उत्तम वाचन पर बहुत कुछ निर्भर है। उसके उत्तम वाचन में कविता के भाव छात्र भली प्रकार समझ जायेंगे।" विद्वान् हैडो के मतानुसार— काव्य कानों से सुनने का विषय है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कविता का आनन्द कानों द्वारा सुनकर ही लिया जा सकता है। अतः काव्य शिक्षण में वाचन का अत्यधिक महत्व है। कविता वाचन निम्नांकित तीन प्रकार से किया जा सकता है—

(i) रागयुक्त वाचन।

(ii) भावानुसार सस्वर वाचन।

(iii) कविता के भावों के साथ-साथ शारीरिक अंगों का संचालन।

रागयुक्त वाचन छोटी कक्षा में ही किया जा सकता है, उच्च कक्षाओं में तो भावानुसार सस्वर वाचन करना ही ठीक रहता है। आवश्यकतानुसार कविता के भावों के साथ-साथ शारीरिक अंग का संचालन किया जा सकता है।

सर्वप्रथम अध्यापक को स्वयं आदर्श वाचन करना चाहिये। कविता वाचन को प्रभावशाली बनाने के लिए यह आवश्यक है कि अध्यापक भी कविता के भावों को ठीक-ठीक हृदयंगम करे। कविता पढ़ाने वाले अध्यापक के लिये आवश्यक है कि वह वाचन कला में निपुण हो। प्रभावशाली वाचन का छात्रों पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है।

आदर्श वाचन के पश्चात् छात्रों द्वारा अनुकरण वाचन किया जाता है अनुकरण वाचन अध्यापक को सर्वप्रथम उस छात्र से कराना चाहिए जिसका स्वर ठीक हो तथा जो वाचन कला में निपुण हो। तत्पश्चात् अन्य छात्रों से वाचन कराया जाये।

अध्यापक को इस बात का सदा ध्यान रखना चाहिये कि कविता के शिक्षण में मौन वाचन का कोई स्थान नहीं है।

3. भाव परीक्षा— अध्यापक का वाचन सफल रहा या नहीं? इसकी परीक्षा लेने के लिए बालकों की भाव-परीक्षा की जाती है। यदि अध्यापक का वाचन प्रभावशाली होगा, तो छात्र भी कविता को भली प्रकार समझ जायेगा। बालक कविता या केन्द्रीय विचार (Central Idea) भली-भांति समझते हैं या नहीं? यह

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

से दो तीन प्रश्न पूछकर पता लगा सकता है। यदि ठीक उत्तर न दें, तब ऐसी दिशा में अध्यापक को कविता का सस्वर वाचन पुनः करना चाहिये।

4. आत्मीकरण (व्याख्या और विचार-विश्लेषण) — भाव-परीक्षा के बाद आत्मीकरण का पद आता है। इस पद में अध्यापक विस्तृत व्याख्या और विचारविश्लेषण की ओर विशेष रूप से ध्यान देता है। आवश्यकता पड़ने पर कठिन शब्दों के अर्थ छात्रों को बताये जा सकते हैं। परन्तु यथासम्भव केवल उन शब्दों के ही अर्थ बताये जायें जो कि कविता के भाव सौन्दर्य को निखारते हों। व्याकरण के नियमों की चर्चा का कविता के पाठ में कोई स्थान नहीं।

व्याख्या करते समय बाह्य दृष्टान्त और सहायक सामग्री का प्रयोग यथासम्भव न किया जाये। कविता पाठ के द्वारा हम छात्रों की कल्पना तथा भावनाशक्ति को सबल बनाना चाहते हैं, जिनके मार्ग में सहायक सामग्री और दृष्टान्त बाधा का कार्य करते हैं। चित्र देखकर छात्रों की कल्पना-शक्ति पर आघात लगता है।

5. सौन्दर्यानुभूति— कविता शिक्षण में शब्दों के अर्थ बताने में अधिक समय न लगाकर सौन्दर्य स्पष्टीकरण में अधिक समय देना चाहिए। सौन्दर्य स्पष्टीकरण के विषय में प्रो० रमनबिहारीलाल जी लिखते हैं, "विश्लेषणात्मक प्रश्नों की सहायता से कवि के भावों से बच्चों का आत्मसात करना चाहिए। इसी समय सौन्दर्यानुभूति भी करानी चाहिये। छोटी कक्षाओं में केवल भाव-सौन्दर्य और बड़ी कक्षाओं में भाव-सौन्दर्य के साथ-साथ अध्यापकों को चाहिए कि वह अनुप्रासों, अलंकारों, शब्द-शक्तियों, अप्रस्तुत विधानों आदि की ओर भी संकेत करें। यह क्रिया ऐसी सावधानी एवं कुशलता से होनी चाहिए कि कविता का पाठ रस अथवा अलंकार का पाठ न होने पाये।" कविता पढ़ते समय छात्र पूर्ण रूप से कविता के सौन्दर्य को भली प्रकार समझ सकें। इसके लिये काव्य के निम्न सौन्दर्य तत्वों को ध्यान में रखना चाहिए—

(i) ध्वनि सौन्दर्य— कविता के बीच में अनुप्रास अलंकार आते हैं; जैसे— यमक आदि। इसमें ध्वनि का सौन्दर्य विशेष रूप से रहता है। अध्यापक को इसकी ओर संकेत कर देना चाहिए।

(ii) विचार सौन्दर्य— कविता में कौन-कौन से विचार सौन्दर्यपूर्ण हैं, इसका भी ध्यान रखा जाये।

(iii) शैली सौन्दर्य— प्रभावपूर्ण तथा सुन्दरतम शब्दों का यथास्थान चयन, प्रतीकों का प्रयोग आदि की ओर भी संकेत करना आवश्यक है।

(iv) कल्पना सौन्दर्य— कल्पना कविता की प्राण होती है। अध्यापक को चाहिए कि वह अप्रस्तुत, अमूर्त तथा कल्पना-प्रधान भावों की स्पष्ट व्याख्या करे।

6. द्वितीय आदर्श वाचन— आत्मीकरण तथा सौन्दर्यानुभूति के पश्चात् अध्यापक को पुनः कविता के भावों में एकाग्रता लाने के लिये आदर्श वाचन करना चाहिए। छात्रों से भी अनुकरण वाचन कराया जाये।

7. सौन्दर्य-बोधात्मक प्रश्न— बालकों ने कविता के भाव-सौन्दर्य का बोध किस सीमा तक किया है? इसकी परीक्षा के लिए छात्रों से सौन्दर्य बोधात्मक प्रश्न करने चाहिएं।

8. रचनात्मक कार्य— कविता के वातावरण को स्थायित्व देने के लिए सम्पूर्ण कविता या उसके महत्वपूर्ण स्थानों को कण्ठस्थ करने के लिए छात्रों से कहा जाये। [illegible]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वाली कविता के अतिरिक्त उसी भाव की दूसरी कविता या तो अध्यापक सुनाये या छात्रों से सुनी जाएँ। अध्यापक छात्रों को समान भाव की अन्य कविताओं को याद करने के लिए कविता की पुस्तकें बता सकता है।

गद्य एवं पद्य में अन्तर

गद्य और पद्य में अन्तर करते हुए डॉ० **श्रीधर मुकर्जी** लिखते है, "चूंकि कविता ताल पर सीधी है, इस कारण वह छन्दोबद्ध होती है पर गद्य नियमित रूप से नहीं चलता। रागहीन होने के कराण यह हृदय को स्पन्दित नहीं कर सकता। सारांश यह है कि पद्य छन्दबद्ध रचना का नाम है। मात्रा और अक्षर, इन दोनों के योग से जब गद्य संगीतात्मक स्वर और ताल में बाँध दिया जाता है, तल उसे पद्य कहते हैं।"

गद्य और पद्य में अन्तर करते हुए **भाई योगेन्द्र जीत** ने लिखा है, "पद्य एक छन्दोबद्ध रचना है। उसमें यति, गति तथा लय आदि का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाता है। पद्य या कविता का सम्बन्ध हमारे हृदय से होता है। उसमें रोचकता का अंश होता है परन्तु गद्य में ये बातें नहीं पायी जातीं इसलिए वह कविता की अपेक्षा शुष्क होता है।" एक अन्य विद्वान के अनुसार, "पद्य या कविता छन्दोबद्ध तथा नियमित गति में होने के कारण ताल पर चलती है, इसलिए वह रागमय होती है तथा रागमय होने के कारण वह हृदय को स्पन्दित करती है। पद्य में यति, गति तथा लय आदि का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाता है। उसका सम्बन्ध हमारे हृदय से होता है, उसमें रोचकता होती है, हृदय को झंकृत करने की शक्ति होती है। गद्य में इन सबका अभाव होता है। उसमें पद्य की सी रोचकता और प्रभावोत्पादकता शक्ति नहीं होती। विराम चिन्हों का इसमें विशेष ध्यान रखा जाता है। व्याकरण के नियमों से बंधा होने के कारण गद्य में उतनी सरलता नहीं होती जितनी कि पद्य में।"

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि पद्य में प्रभावित करने को, गद्य की अपेक्षा अधिक शक्ति है। पद्य हमारे हृदय को स्पर्श कर भावनाओं को प्रभावित करता है जबकि गद्य हमारे मस्तिष्क और बुद्धि को ही प्रभावित करता है।

पद्य के स्वरूप— पद्य रचनाओं को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(i) बाल-गीत या बालोचित तुकबन्दियाँ।

(ii) वर्णनात्मक अथवा घटना-प्रधान गद्य।

(iii) साहित्यिक रचनाएँ।

बाल-गीतों का प्रयोग प्राथमिक स्तर पर करना ही उचित है। बाल-गीत भाव व भाषा की दृष्टि से अत्यन्त सरल और छोटे हों। वर्णनात्मक या घटना-प्रधान कविताएँ माध्यमिक कक्षा के छात्रों के लिय उपयुक्त हैं। इसमें प्राकृतिक दृश्य, ऐतिहासिक घटनाओं तथा महापुरुषों की पद्यात्मक कथाएँ आदि आती हैं। साहित्यिक रचनाएँ विचार-प्रधान, कल्पना-प्रधान तथा गम्भीर होती हैं। इस प्रकार की कविताओं के विषय करुणा, दया, प्रेम, पीड़ा तथा निराशा आदि होते हैं।

काव्य शिक्षण के उद्देश्य

काव्य शिक्षण का प्रमुख उद्देश्य छात्रों को सौन्दर्य बोध कराना है। यहाँ हम काव्य शिक्षण के प्रमुख उद्देश्यों के अतिरिक्त सामान्य उद्देश्यों पर भी प्रकाश डालेंगे—

(1) छात्रों में स्वर प्रवाह तथा भावानुसार कविता-पाठ करने की क्षमता उत्पन्न करना।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

(2) छात्रों में किसी कवि के विशेष भाव तथा शैली को समझ सकने की योग्यता उत्पन्न करना।

(3) उनमें ऐसी योग्यता उत्पन्न करना जिससे कि काव्य-सौन्दर्य को परख सकें तथा काव्यानन्द का रसास्वादन ले सकें। रायबर्न के शब्दों में, "हमारा उद्दश्य यह होता है कि छात्र भी कवि की अनुभूतियों को सझ और ग्रहण कर सकें अध्यापक का कार्य यह होता है कि उसके छात्र कवि के प्रकृति-प्रेम को समझा सकें और उसकी कविता में उनको भी रसानुभूति प्राप्त हो।"

(4) छात्रों में काव्य का भाव समझ सकने तथा अपने शब्दों में व्याख्या करने की शक्ति का विकास करना।

(5) छात्रों की दृष्टि को सौन्दर्य-शोषक बनाना। इस विषय में भाई योगेन्द्र जीत लिखते हैं, "हमारे आस-पास के वातावरण में कितने ही रमणीय दृश्य हैं। लोगों को वे रम्य नहीं लगते। इसका प्रधान कारण यह है कि लोगों के पास रमणीयता को शोध करने की वाली दृष्टि का अभाव है। इसी अभाव के कारण वे कितने ही आनन्द को ग्रहण नहीं कर पाते। कविता के अध्यापक का भी यही ध्येय है कि वह सौन्दर्य शोधक दृष्टि विद्यार्थियों में उत्पन्न की जाये जिससे कि वे संसार रूपी उद्यान में विहार करते समय अनेक प्रकार के स्थलों का आनन्द ले सकें।"

(6) छात्रों की कल्पना, भाव तथा शक्ति का विकास करना।

(7) छात्रों की सृजनात्मक तथा रचनात्मक शक्तियों का विकास करना।

(8) छात्रों को रस, अलंकार का ज्ञान कराना।

(9) उन्हें काव्य की विभिन्न शैलियों से परिचित कराना।

(10) छात्रों में काव्य के प्रति प्रेम उत्पन्न करना तथा उन्हें काव्यसृजन के लिए उत्साहित करना।

कविता तथा गद्य की विभिन्न विधियों में अन्तर

गद्य और पद्य की शिक्षण विधियों के अन्तर पर प्रकाश डालते हुए मुकर्जी लिखते हैं "गद्य शिक्षा का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों को ज्ञान, अर्थ बोध, शब्द भण्डार वृद्धि या भावाभिव्यंजन में सहायता पहुँचाना है पर पद्य शिक्षा का उद्देश्य है, कविता का पाठ हृदयंगम करना, कवि के कल्पना लोक में विचरण करना और कवि के शब्दों को जादू के समान अनुभव करना। पद्य-शिक्षा में न तो शब्दार्थों की ओर ही विशेष ध्यान देना उचित है और न वाक्य-प्रयोग तथा व्याकरण के पचड़े में पड़ना आवश्यक है। ऐसा करने में कविता की सरासर हत्या हो जाती है।"

कविता तथा गद्य शिक्षण में निम्न प्रकार अन्तर किया जा सकता है—

(1) गद्य शिक्षण में मौन वाचन को महत्व दिया जाता है जबकि पद्य शिक्षण में मौन वाचन को कोई स्थान नहीं है। कविता का शिक्षण सस्वर ही प्रभावशाली होता है।

(2) काव्य शिक्षण का मुख्य उद्देश्य छात्रों को सौन्दर्य बोध कराना या उनकी सौन्दर्यानुभूति को जागृत कराना है, जबकि गद्य शिक्षण का प्रमुख उद्देश्य छात्रों की तार्किक शक्ति का विकास करना है।

(3) गद्य शिक्षण में प्रत्येक अन्विति के शब्दों के अर्थ बताये जाते हैं। पद्य शिक्षण में ऐसा नहीं होता।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

(4) गद्य के पाठ को अनेक अन्वितियों में विभाजित करके पढ़ाया जा सकता है। परन्तु पद्य के पाठ को जहाँ तक सम्भव होता है, एक ही अन्विति में प्रस्तुत किया जाता है। एक लेखिका के शब्दो में, "कविता पाठ में सबसे अधिक ध्यान देने योग्य बात यह है कि जहाँ तक सम्भव हो सके, उसे एक ही अन्विति (unit) में प्रस्तुत किया जाये। कारण यह है कि उसे कई अन्वितियों में विभक्त कर देने से भाव तार-तार हो जाते हैं। परिणाम यह होता है कि कवि की अनुभूति का सौंदर्य एवं उसकी प्रभावशीलता समाप्त हो जाती है।" गद्य के शिक्षण में पाठ को सुविधानुसार विभिन्न अन्वितियों में विभाजित किया जा सकता है।

(5) कविता के विषय में कहा जाता है कि "गद्य जहाँ असमर्थ होता है वहाँ कविता जन्म लेती है। और जहाँ कविता लाचार है वहाँ गीत आते हैं।"

(6) गद्य शिक्षण में प्रतिपादित विचारों का विश्लेषण किया जाता है जबकि कविता पाठ के भावों का विश्लेषण किया जाता है।

कविता में काव्य पाठ के द्वारा तो छात्रों में कविता के प्रति रुचि उत्पन्न की जाती है परन्तु और भी अन्य साधन हैं, जिनके माध्यम से छात्रों में कविता के प्रति रुचि उत्पन्न की जा सकती है। ये साधन निम्न हैं—

1. निश्चित विषय पर काव्य पाठ। 2. वाचन प्रतियोगिता। 3. उत्सवों पर कविता पाठ। 4. अन्त्याक्षरी। 5. काव्य संग्रह पुस्तिका। 6. कवि दरबार। 7. कवि सम्मेलन। 8. कवि गोष्ठी। 9. समस्या पूर्ति।

1. निश्चित विषय पर काव्य पाठ— कभी-कभी निश्चित विषय पर काव्य-पाठ कराया जा सकता है। छात्रों को बसन्त ऋतु, वर्षा, कमल, महाराणा प्रताप आदि किसी भी विषय पर कविता सुनाने को कहा जाए। छात्र निश्चित विषय पर ढूँढकर कविता याद करें और अध्यापक को सुनायें। अध्यापक को पक्षपात रहित होकर उत्तम कविता पाठ पर पुरस्कार देना चाहिये। इसी प्रकार की प्रतियोगिताओं में छात्रों में विभिन्न विषयों की कविताओं के प्रति रुचि जागृत होगी।

2. वाचन प्रतियोगिता— विद्यालय में वाचन प्रतियोगिता का आयोजन समय-समय पर किया जाये। अध्यापक का कर्त्तव्य है कि वह छात्रों को आदर्श वाचन का भली प्रकार अभ्यास करायें। छात्रों को बताया जाये कि कविता का आदर्श विचार किस प्रकार किया जाता है। तत्पश्चात् छात्रों को कविताएं कण्ठस्थ करने को कहा जाये। जब छात्र कविताएँ याद कर लें, तब वाचन प्रतियोगिता का आयोजन किया जाये। जो छात्र सबसे उत्तम कविता का वाचन करे, उसे पारितोषिक देकर उतासाहित किया जाये। विद्यार्थी स्वतन्त्रतापूर्वक किसी भी कवि की रचना सुन सकते हैं। कविता सुनते समय अंग-संचालन भी होना चाहिए।

3. उत्सवों पर कविता पाठ— महत्वपूर्ण उत्सवों पर भी छात्रों से कविता पाठ करना लाभदायक सिद्ध होता है। रामनवमी पर राम के ऊपर, गाँधी-जयन्ती पर गाँधीजी पर तथा जन्म अष्टमी पर भगवान कृष्ण पर कविता पढ़ी जा सकती है। विद्यालय में ऐसे अवसरों पर समारोह आदि अवश्य किये जायें तथा पाठ के लिये छात्रों को उत्साहित करना चाहिये।

4. काव्य-संग्रह पुस्तिका— छात्रों से एक पुस्तिका बनवाई जाये जिसमें आधुनिक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाली सुन्दर कविताओं का संग्रह कलापूर्ण ढंग से किया जाए। प्रत्येक कविता से सम्बन्धित चित्र भी उस कविता के साथ चिपकाए जा सकते हैं। इस प्रकार का आकर्षक कविता संग्रह छात्रों में कविता के प्रति विशेष रुचि उत्पन्न करेगा।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

5. अन्त्याक्षरी— अन्त्याक्षरी प्रतियोगिता का प्रचलन आजकल पर्याप्त है। विद्यालय में प्रायः अन्त्याक्षरी प्रतियोगिता हुआ करती है। इसमें छात्रों के दो दल बना दिये जाते हैं। एक दल का छात्र कविता पाठ करता है और दूसरे दल का छात्र उस कविता के अन्तिम अक्षर से प्रारम्भ होने वाली कविता का पाठ करता है। इस प्रकार पर्याप्त काल तक दोनों दलों में प्रतियोगिता चलती रहती है। जब एक दल दूसरे दल को कविता के अन्तिम अक्षर से आरम्भ होने वाली कविता नहीं सुना पाता, तब वह दल पराजित घोषित कर दिया जाता है और दूसरे को विजयी।

अन्यत्याक्षरी प्रतियोगिता का सबसे बड़ा लाभ यह है कि छात्र अपने दल को जिताने के उद्देश्य से अनेक कविताएं कण्ठस्थ कर लेते हैं। बालकों में काव्य के प्रति रुचि भी उत्पन्न होती है।

6. कवि-सम्मेलन— कवि सम्मेलन का आयोजन छात्रों में काव्य प्रेम जागृत करने का सर्वत्तम साधन है। विद्यालय में समय-समय पर कवि सम्मेलन किए जाएं तथा नगर और बाहर के प्रसिद्ध कवियों को आमन्त्रित किया जाये। कवियों द्वारा किया गया कविताओं का सस्वर वाचन छात्रों पर विशेष प्रभाव डालता है तथा वे स्वयं भी वैसा अनुकरण करने का प्रयास करते हैं। कवि सम्मेलन में भाग लेने के लिए छात्रों को भी उत्साहित किया जाना चाहिये।

7. कवि गोष्ठी— कवि गोष्ठी का आयोजन भी विशेष प्रभावशाली रहता है। समय-समय पर नगर के प्रमुख कवियों को आमन्त्रित कर कवि गोष्ठियों का आयोजन किया जाये। गोष्ठी में छात्रों को भी अपनी कविताएं सुनाने का अवसर मिलना चाहिये।

8. कवि दरबार— कवि दरबार में छात्र विभिन्न कवियों की वेशभूषा से सुसज्जित होकर उन्हीं कवियों की कविता का सस्वर पाठ करते हैं। उदाहरण के लिये, तुलसी की कविता का पाठ करने वाले छात्र तुलसीदास की वेशभूषा में ही काव्य पाठ करेगा। इस प्रकार के कवि दरबारों के आयोजनों से सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि अतीत काल के वातावरण का चित्रण सरलता से हो जाता है तथा छात्रों के लिये यह कार्यक्रम मनोरंजक भी होता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

13
गद्य-शिक्षण

विद्यालय में हिन्दी भाषा पढ़ने वाले विद्यार्थियों को पद्य व गद्य दोनों की ही शिक्षा दी जाती है। गद्य का क्षेत्र बहुत ही विशाल है— नाटक, उपन्यास, आलोचना, निबन्ध तथा कहानी आदि सभी इसके अन्तर्गत आते हैं।

गद्य शिक्षण के सामान्य उद्देश्य–

(1) विद्यार्थियों के सूक्ति भण्डार तथा शब्द भंडार का विकास करना।

(2) विद्यार्थियों के शब्द उच्चारण को शुद्ध करना।

(3) विद्यार्थियों में प्राप्त ज्ञान को प्रकाशित करने की योग्यता को विकसित करना।

(4) विद्यार्थियों में इतनी क्षमता उत्पन्न करना कि वे शब्दों तथा मुहावरों का उचित प्रयोग कर सकें।

(5) विद्यार्थी स्वयं पाठ को ठीक प्रकार समझ सकें तथा दूसरों को भी ठीक प्रकार से समझा जा सकें।

(6) विद्यार्थियों की रचनात्मक शक्ति को विकसित करना, जिससे कि उनके व्यक्तित्व का पूर्ण विकास हो सके।

(7) विद्यार्थियों में भाषा से सम्बन्धित ज्ञान की वृद्धि करना।

(8) विद्यार्थियों में स्पष्ट अर्थ समझने की शक्ति को विकसित करना।

(9) विद्यार्थियों में कलापूर्ण ढंग से वाचन करने की क्षमता विकसित करना।

(10) विद्यार्थियों को गद्य की विभिन्न शैलियों का ज्ञान कराना।

(11) विद्यार्थियों की तार्किक एवं मनन करने की शक्ति को विकसित करना।

(12) विद्यार्थियों में भाषा के द्वारा नैतिक तथा चारित्रिक विकास करना।

(13) विद्यार्थियों में तर्क, विचार तथा कल्पना शक्ति का विकास करना।

(14) विद्यार्थियों में स्पष्टता, क्रमबद्धता तथा संगमता का विकास करना।

(15) विद्यार्थियों में गद्य शिक्षा के माध्यम से सांस्कृतिक विचारों का ज्ञान प्रदान करना।

(16) विद्यार्थियों को गद्य के माध्यम से वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक तथा अन्य विविध विषयों का ज्ञान कराना।

(17) विद्यार्थियों में गति-यति-लय, आरोह-अवरोह तथा विराम चिन्हों के साथ-साथ वाचन की क्षमता का विकास करना।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

(18) विद्यार्थियों में भौगोलिक, ऐतिहासिक तथा सामाजिक गुणों का विकास करना।

मुख्य उद्देश्य— मुख्य उद्देश्य पाठ के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं। उदाहरण के लिये, यदि पाठ विज्ञान से सम्बन्धित हैं, तब ऐसी दशा में गद्य शिक्षण का मुख्य उद्दश्य छात्रों में विज्ञान के प्रति रुचि उत्पन्न करना होगा। जो पाठ वर्णन या यात्रा से सम्बन्धित होगा, उसका मुख्य उद्देश्य छात्रों में प्राकृतिक प्रेम उत्पन्न करना तथा वर्णन और भाषा-शैली का ज्ञान कराना होगा। मुख्य उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये एक विद्वान् सुझाव देते हैं, **"किसी पाठ का मुख्य उद्देश्य जानने के लिये अध्यापक को सम्पूर्ण पाठ को ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहिये और जानना चाहिये कि यथा पाठ की विषय सामग्री बच्चों के किन संवेगों को जागृत कर सकती है, वह मानव-जीवन के किस पहलू पर प्रकाश डालती है और उससे बच्चों के चरित्र के किस अंग को प्रभावित किया जा सकता है।"**

गद्य शिक्षण का महत्व— गद्य शिक्षण भाषा शिक्षण में सबसे महत्वपूर्ण है। गद्य कवियों की कसौटी है। इसलिये गद्य का पद्य से अधिक महत्व हो जता है। पद्य में कवि की त्रुटि को लय-ताल-यति के कारण एक बार नजर-अन्दाज किया जा सकता है लेकिन गद्य में गद्यकार द्वारा अपने गद्य को सुव्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करना पड़ता है। गद्य रचना में लेखक स्वतन्त्र होता है। इतिहास, भूगोल, विज्ञान, समाजशास्त्र, उपन्यास, निबन्ध तथा कहानी आदि विषय गद्य में ही प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

हिन्दी भाषा शिक्षण में गद्य-शिक्षण का महत्व निम्नलिखित है—

(1) विद्यार्थियों को गद्य शिक्षण की विभिन्न शैलियों का ज्ञान कराना।

(2) विद्यार्थियों की प्रतिभा को विकसित किया जाता है।

(3) विद्यार्थियों में शब्द कोश की वृद्धि की जाती है।

(4) विद्यार्थी गद्य शिक्षण में क्रियाशील बनते हैं।

(5) गद्य शिक्षण को सुनकर विद्यार्थियों को सुनकर अर्थ ग्रहण करने के योग्य बनाया जाता है।

(6) गद्य शिक्षण द्वारा विद्यार्थियों को पठन कला के योग्य बनाया जाता है।

(7) गद्य शिक्षण द्वारा विद्यार्थियों की भावात्मक तथा सृजनात्मक शक्ति का विकास किया जाता है।

(8) गद्य शिक्षण से विद्यार्थियों में स्वस्थ प्रवृत्ति का विकास होता है।

गद्य शिक्षण की प्रणाली— आज प्रत्येक विषय का शिक्षण मनोवैज्ञानिक प्रणाली के आधार पर होता है। दूसरे सब्दों में इस प्रणाली को हरबार्ट की पंच-पद प्रणाली के नाम से पुकारते हैं। हरबार्ट के पंच पदों के आधार पर ही विद्वानों ने निम्नलिखित शिक्षण के सोपान बनाये हैं—

(1) **पूर्व ज्ञान**— पूर्व ज्ञान के आधार पर ही मूल पाठ को प्रस्तुत किया जाता है। शिक्षक का कर्त्तव्य है कि वह मूल पाठ प्रस्तुत करने से पूर्व विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान की जानकारी प्राप्त करे। विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान की जानकारी प्राप्त करने के लिये शिक्षक को कुछ प्रश्न पूछने चाहियें।

(2) **प्रस्तावना**— प्रस्तावना से शिक्षक विद्यार्थियों की नवीन पाठ से अवगत कराता है। पाठ की सफलता के लिये यह जरूरी है कि शिक्षक उसकी तैयारी उचित ढंग से करे। इसके लिये शिक्षक को नवीन ज्ञान को पूर्व ज्ञान के आधार पर प्रदान करना चाहिये। विद्यार्थी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सफलता से शिक्षक विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान को उत्पनन करेगा, उतना ही विद्यार्थी नवीन ज्ञान को ग्रहण करने के लिये तैयार रहेंगे। इसलिये पाठ के शुरू में विद्यार्थियों से कुछ प्रश्न पूछे जायें जिनका सम्बन्ध नवीन पाठ से हो। लेकिन यह आवश्यक नहीं है कि विद्यार्थियों को नवीन पाठ ग्रहण करने योग्य बनाने हेतु उनसे केवल कुछ प्रश्न पूछे जायें। पाठ के शुरू में मनोरंजक विषयों की व्याख्या भी की जा सकती है अथवा सहायक सामग्री को प्रस्तुत करके भी पाठ की शुरूआत की जा सकती है। गद्य के पाठ में प्रस्तावना की शुरूआत निम्नलिखित विधियों में से किसी एक के भी द्वारा की जा सकती है—

(i) पूर्व कथा के द्वारा— जैसे यदि, महात्मा गाँधी के लोक-कल्याणकारी, कार्य नामक पाठ पढ़ाना है तो ऐसी स्थिति में शिक्षक विद्यार्थियों को महात्मा गाँधी के जीवन की पूर्व घटनाओं से परिचित करायेगा, उसके बाद ही पाठ का आरम्भ करेगा। पूर्व कथा पर प्रश्न भी पूछे जा सकते हैं।

(ii) सहायक सामग्री के द्वारा— छोटी कक्षाओं में सहायक सामग्री के द्वारा प्रस्तावना का आरम्भ किया जा सकता है। जैसे यदि शिक्षक को विद्यार्थियों को जवाहरलाल नेहरू का पाठ पढ़ाना है तो उन्हें जवाहरलाल नेहरू का चित्र दिखाकर प्रश्न पूछे जा सकते हैं।

(iii) लेखक से सम्बन्धित कथन द्वारा— इसके द्वारा शिक्षक लेखक के जीवन से सम्बन्धित किसी महत्वपूर्ण घटना का उल्लेख करता है तथा फिर कहता है "आज हम उन्हीं के द्वारा लिये गये पाठ को पढ़ेंगे।" इसका प्रयोग केवल बड़ी कक्षाओं में ही किया जा सकता है।

(iv) प्रश्नोत्तर के द्वारा— प्रश्नोत्तर के द्वारा प्रश्न पाठ की ओर ध्यान केन्द्रित करने के लिये किये जायें।

(3) प्रस्तुतीकरण— गद्य के पाठ प्रायः बड़े होते हैं इसलिये पाठों को भाव की समानता की दृष्टि से दो या दो से अधिक भागों में विभाजित करना चाहिये। प्रस्तुतीकरण में विद्यार्थियों के सामने विषय उपस्थित किया जाता है। उद्देश्य कथन के समाप्त होने के बाद विद्यार्थी का ध्यान नवीन पाठ पर केन्द्रित हो जाता है। इसलिये अब शिक्षक का कार्य ज्ञान का प्रस्तुतीकरण करना हो जाता है। परन्तु समस्या यह है कि नवीन पाठ को किस प्रकार प्रस्तुत किया जाये। इस विषय में विद्वानों के विभिन्न मत निम्नलिखित हैं—

(i) शिक्षक के आदर्श पाठ के माध्यम से।

(ii) शब्दों के अर्थ द्वारा।

(iii) मौन वाचन द्वारा।

(4) उद्देश्य कथन— प्रस्तावना के अन्त में ही विद्यार्थी को पाठ के उद्देश्य का आभास प्राप्त हो जता है। लेकिन फिर भी शिक्षक को नवीन पाठ के उद्देश्य का स्पष्टीकरण करना चाहिये। उद्देश्य का स्पष्टीकरण हो जाने से विद्यार्थी उत्साहित होते हैं तथा उसे प्राप्त करने के लिये सजग हो जाते हैं परन्तु उद्देश्य कथन अधिक बड़ा नहीं होना चाहिये।

(5) आदर्श वाचन— शिक्षक को आदर्श वाचन की ओर मुख्य रूप से ध्यान देना चाहिये तथा उस पाठ का वाचन प्रभावशाली तरीके से कराना चाहिये। आदर्श वाचन करते समय शिक्षक को निम्नलिखित बातों की ओर ध्यान देना चाहिये।

(अ) जिस समय शिक्षक वाचन कर रहा हो, उस समय विद्यार्थी पुस्तक खोलकर नहीं देखें बल्कि पुस्तक को बन्द करके शिक्षक की ओर देखें। ऐसा करने पर विद्यार्थी शिक्षक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

की मुखि की आकृति के द्वारा भाव समझ सकेंगे और उच्चारण तथा पढ़ने की गति की ओर उनका ध्यानि रहेगा। अनुकरण वाचन के लिये भी तैयार हो सकेंगे।

(ब) वाचन करते समय शिक्षक को अपने खड़े होने के ढंग तथा पुस्तक को पकड़ने के ढंग आदि का भी विशेष ध्यान रखना चाहिये। झुककर या टेढ़े होकर खड़े होने के स्थान पर सीधे खड़ा होना चाहिये तथा बायें हाथ में पुस्तक लेकर दांये हाथ को स्वतन्त्र संचालन के लिये छोड़ दिया जाये।

(स) वाचन करते समय शिक्षक को अपना चित्त प्रसन्न रखना चाहिए। मुख पर नीरसता न होकर मृदु मुस्कान रहनी चाहिए।

(द) वाचन करते समय विराम आदि चिन्हों का ध्यान विशेष रूप से रख जाए तथा भाव के अनुसार ही ध्वनि का उतार-चढ़ाव होना चाहिये।

(य) वाचन करते समय पाठ्य-सामग्री के भावों के अनुसार मुख की आकृति बनायी जाये।

(र) वाचन करते समय परिस्थिति तथा आवश्यकता के अनुसार सीमित मात्रा में अंगों का संचालन किया जाये।

(6) मौन वाचन— मौन वाचन का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों को गद्य पाठ की व्याख्या को समझने एवं मनन करने का अवसर प्रदान करना है। मौन वाचन द्वारा विद्यार्थी पढ़ी हुयी सामग्री का अच्छे ढंग से विचार विश्लेषण कर लेते हैं। जिस समय विद्यार्थी मौन पाठ कर रहे हों उस समय शिक्षक को पूरी कक्षा की ओर अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिए तथा देखना चाहिए कि विद्यार्थी ठीक प्रकार शान्त भाव से पुस्तक पढ़ रहे हैं अथवा नहीं।

(7) बोध प्रश्न— बोध प्रशन करने का मुख्य उद्देश्य यह ज्ञात करना है कि विद्यार्थी पाठ्य-सामग्री उचित प्रकार से समझ सके हैं अथवा नहीं। प्रशन सरल, स्पष्ट तथा संक्षिप्त होने चाहिएं तथा उनका वितरण पूरी कक्षा में समान रूप से किया जाना चाहिये। प्रशन पूछते समय शिक्षक को इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि प्रशन पाठ्य-सामग्री के केन्द्रीय भाव से सम्बन्धित हों।

(8) निरीक्षण कार्य— बोध प्रशन के पश्चात् विद्यार्थियों को श्यापट पर सारांश लिखने का अवसर देना चाहिये एवं शिक्षक को प्रत्येक विद्यार्थी के पास जाकर उसके लिखित कार्य का निरीक्षण करना चाहिये।

(9) शब्द व्याख्या— विद्यार्थियों को शब्द का अर्थ सीधे रूप में न बताकर विभिन्न विधियों के द्वारा बताना चाहिए।

(i) चित्र तथा मूर्ति के द्वारा— कुछ शब्द चित्र दिखाकर तथा कुछ शब्द मूर्ति दिखाकर स्पष्ट किये जा सकते हैं। जैसे 'भानु' शब्द का अर्थ सूर्य के चित्र को दिखाकर बताया जा सकता है, इसी प्रकार 'सिंह' के लिये शेर की मूर्ति का प्रयोग किया जा सकता है।

(ii) वास्तविक वस्तु के प्रस्तुतीकरण द्वारा— छोटी कक्षा में वास्तविक वस्तुओं को प्रस्तुत करके भी शब्दों के अर्थ को स्पष्ट किया जा सकता है। जैसे 'सरोवर' शब्द का अर्थ तालाब को दिखाकर स्पष्ट किया जा सकता है।

(iii) वाक्य प्रयोग द्वारा— कुछ शब्दों को वाक्यों में प्रयोग करके समझाया जा सकता है। वाक्य प्रयोग विद्यार्थियों से भी कराये जाते हैं। इस विधि के प्रयोग द्वारा विद्यार्थियो में शब्द के अर्थ को समझने की उत्सुकता बनी रहती है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

(iv) प्रसंग कथन के द्वारा— प्रसंग कथन के द्वारा भी अर्थ को स्पष्ट किया जा सकता है।

(v) विलोम शब्द द्वारा— विलोम शब्दों के अर्थ स्पष्ट करने में बहुत सरलता रहती है जैसे दिन शब्द का विलोम रात बताकर विद्यार्थियों को समझाया जा सकता है।

(vi) सन्धि अथवा समाज विच्छेद के द्वारा— शब्दों को सन्धि विच्छेद के द्वारा भी समझाया जा सकता है। जैसे 'महर्षि' शब्द को सन्धि-विच्छेद के द्वारा इस प्रकार भी समझाया जायेगा : महा+ऋषि।

(vii) व्याख्या द्वारा— कभी-कभी कठिन शब्दों अथवा मुहावरों का अर्थ स्पष्ट करने के लिये शिक्षक को व्याख्या का सहारा लेना पड़ता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

14

व्याकरण शिक्षण

व्याकरण शिक्षण का अर्थ

प्राचीन समय में प्रत्येक विद्यार्थी को व्याकरण की शिक्षा प्राप्त करना अनिवार्य था। जो व्यक्ति व्याकरण में बहुत निपुण होता था, उसे पण्डित माना जाता था और समाज भी उसका सम्मान करता है। महोजी, पाणिनी तथा पंतजलि जैसे महान व्याकरण के पण्डित हुये हैं। संस्कृत साहित्य में व्याकरण के अनेक ग्रन्थ मिलते हैं। वास्तव में भाषा पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करने के लिये व्याकरण का ज्ञान प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है। व्याकरण की परिभाषा विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से दी है जो निम्नलिखित हैं—

महर्षि पाणिनी के मतानुसार व्याकरण शब्दानुशासन है। इससे भाषा का रूप व्यवस्थित होता है। महर्षि पतंजलि ने भी अपने महा भाष्य में इसे 'शब्दानुशासन' कहा जाता है। हेमचन्द ने कहा है कि व्याकरण का काम है भाषा पर अनुशान रखना। इस प्रकार हेमचन्द के मतानुसार व्याकरण शब्दानुशासन ही है।

डॉ० स्वीट के मतानुसार, "व्याकरण भाषा का व्यावहारिक विश्लेषण अथवा उसका शरीर विज्ञान है।"

व्याकरण शब्द, वि+आ+कृ धातु+ल्युट् प्रत्यय के योग का योगफल है। जिसका तात्पर्य है, व्याक्रियन्ते, अर्थात जिसके द्वारा अर्थस्वरूप के माध्यम से शब्दों की व्याख्या होती है।

जैगर का मत है कि, "प्रचलित भाषा सम्बन्धी नियमों की व्याख्या ही व्याकरण है। यह मत जैगर ने विद्यालयों में व्याकरण की शिक्षा को ध्यान में रखते हुए व्यक्त किया था।"

भावों की स्पष्टता भाषा पर निर्भर है और भाषा की शुद्धता व्याकरण पर। व्याकरण भाषा का संगठन करता है। व्याकरण की जानकारी बिना भाषा के शुद्ध नहीं हो सकती। इसी कारण व्याकरण का ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य है। भाई योगेन्द्र जीत के शब्दों में, "सार रूप में प्रचलित भाषा से सम्बन्धित नियों का कथन करना ही व्याकरण है।"

व्याकरण शिक्षण के उद्देश्य—

(1) विद्यार्थियों को विविध ध्वनियों का ज्ञान देना।

(2) व्याकरण के द्वारा विद्यार्थियों में रचना तथा सृजनात्मक प्रवृत्ति का विकास करना।

(3) विद्यार्थियों को शुद्ध भाषा का प्रयोग लिखना।

(4) विद्यार्थियों में ऐसी क्षमता उत्पन्न करना जिससे कि वे कम से कम शब्दों में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
शुद्धतापूर्वक अपने भावों को व्यक्त कर सकें। साथ ही उनमें ऐसी योग्यता उत्पन्न करना जिससे वे भाषा की अशुद्धता को भी समझ सकें।

(5) विद्यार्थियों को शुद्ध बोलने, लिखने तथा पढ़ने की प्रेरणा देना।

(6) विद्यार्थियों में ऐसी योग्यता उत्पन्न करना जिससे कि वे भाषा की अशुद्धता को समझ सकें तथा उनमें भाषा को परखने की शक्ति विकसित हो सके।

(7) विद्यार्थियों को भाषा से सम्बन्धित नियमों का ज्ञान प्रदान करना।

(8) विद्यार्थियों को शुद्ध उच्चारण की शिक्षा प्रदान करना।

(9) **विश्न गाई एन० पोकाक** के मतानुसार, "व्याकरण की शिक्षा का उद्देश्य बालक को भाषा को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखने में प्रवीण बनाना होना चाहिये।"

(10) **पं लज्जा शंकर झा** ने लिखा है कि, "भाषा का शुद्ध रूप पहचानने में छात्रों को सक्षम व समर्थ बनाना ही व्याकरण का उद्देश्य है। इस प्रकार व्याकरण से शुद्ध बोलना एवं लिखना आ जाता है।"

(11) **चैम्पियन** के मतानुसार, "व्याकरण के नियमों का ज्ञान, छात्रों में मौलिक वाक्य बनाने की योग्यता उत्पन्न करता है। मितव्ययिता के आधार हेतु व्याकरण का ज्ञान आवश्यक है। यह छात्रों को शुद्ध रूप से बोलने एवं लिखने की क्षमता पैदा करता है।"

व्याकरण की शिक्षा, भाषा की शिक्षा का अवश्य अंग है। यह भाषा रूपी रथ का सारथी है। यह भाषा का स्वरूप बनाता है तथा उस पर नियन्त्रण रखता है। यह भाषा का मित्र भी है। यह उसे सच्चे रास्ते पर चलने की प्रेरणा प्रदान करता है।

व्याकरण शिक्षण का महत्व— व्याकरण शिक्षण के महत्व एवं उपयोगिता के विषय में विद्वानों में परस्पर मतभेद हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार भाषा शिक्षण में व्याकरण का अत्यधिक महत्व है। बिना व्याकरण के जाने भाषा पर कोई व्यक्ति पूर्ण अधिकार प्राप्त नहीं कर सकता। भाषा के रहस्य को समझने के लिये यह अति आवश्यक है कि व्याकरण के नियमों को भी समझा जाये। भाषा में बोलने एवं लिखने की शुद्धता बिना व्याकरण-ज्ञान के नहीं जा सकती।

एन० पोकॉक का मत है कि "व्याकरण की शिक्षा का उद्देश्य बालक की भाषा को वैज्ञानिक रूप से देखने में प्रवीण बनना होना चाहिये।" सीताराम चतुर्वेदी के अनुसार, "व्याकरण की शिक्षा, भाषा की शिक्षा का एक आवश्यक और अपरिहार्य अंग है। भाषा को शुद्ध बनाये रखने का काम व्याकरण का नहीं है।" करुणापति त्रिपाठी के अनुसार, "भाषा शिक्षण का कार्य व्याकरण की शिक्षा के बिना नहीं हो सकता। व्याकरण के माध्यम से ही भाषा रूपी माध्यमिक नौका का संचालन हो सकता है। व्याकरण ज्ञान की अवहेलना से भाषा में उच्छृंखलता आ जाती है और वह संस्कृति का विनाश कर देती है। भाषा प्रयोग का उचित रहस्य समझने के लिये व्याकरण ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है।"

उपर्युक्त मत के विपरीत कुछ विद्वानों का कथन है कि भाषा शिक्षण में या भाषा शिक्षण के लिये व्याकरण के नियमों के ज्ञान की कोई आवश्यकता नहीं। इस मत के समर्थकों के अनुसार भाषा बोलकर तथा अनुकरण से सीखी जाती है, न कि व्याकरण के नियमों को रटकर। अतः व्याकरण की शिक्षा प्रदान करना व्यर्थ समय नष्ट करना है।

व्याकरण के विषय में तीसार मत और है। इस मत के अनुसार व्याकरण शिक्षण आवश्यक अवश्य है, परन्तु उस पर अत्यधिक बल देना अनुचित है। छात्रों के लिये

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

व्याकरण का ज्ञान उतना ही पर्याप्त है, जितना कि उन्हें पाठ्य-पुस्तक समझने के लिये आवश्यक है।

अध्यापक को चाहिए कि वह उपयुक्त मतभेदों को चक्कर में न पड़कर व्यावहारिक मार्ग अपनाये। उसे सर्वप्रथम यह ध्यान में रखना चाहिए कि व्याकरण साधन है, साध्य नहीं। साध्य तो भाषा का ज्ञान है जिसकी प्राप्ति के लिये विभिन्न साधनों का प्रयोग किया जाता है, जिसमें से एक व्याकरण भी है। परन्तु व्याकरण पर अत्यधिक बल देना भी अनुचित है और साथ ही व्याकरण के नियमों की पूर्ण रूप से उपेक्षा करना भी ठीक नहीं है। दूसरे शब्दों में, हम कह सकते हैं कि भाषा को व्याकरण के नियमों में जकड़ना भी हानिप्रद है और साथ ही उसे व्याकरण विहीन बनाना भी। इस विषय में एक विद्वान् का कथन है कि "यदि हम व्याकरण को साधन के स्थान पर साध्य मानकर उसके नियम आदि रटाना ही अपना कर्त्तव्य समझते हैं, तो उसका नीरस होना स्वाभाविक है......दूसरी ओर, यदि भाषा-व्यवस्था सम्बन्धी कुछ नियम ही न बनाये गए और न उनका पालन किया गया, तो भाषा का कोई रूप न होगा। न शब्दों में साम्य होगा, न वाक्य-रचना में, तब अर्थ और भाव समझना भी दूभर हो जायेगा।" इस प्रकार अध्यापक को अपने विवेक के अनुसार व्याकरण का प्रयोग करना चाहिए।

व्याकरण शिक्षण की उपयोगिता

(1) व्याकरण का अनुशासन जीवन को प्रभावित करता है।

(2) व्याकरण द्वारा शब्द संरचना तथा वाक्य विन्यास की जानकारी प्राप्त होती है।

(3) व्याकरण भाषा के स्वरूप की रक्षा करके उचित प्रयोग की प्रक्रिया की जानकारी देने में समर्थ है।

(4) व्याकरण के द्वारा विद्यार्थियों में आलोचना प्रवृत्ति विकसित होती है।

(5) व्याकरण के द्वारा भाषा में शुद्धता आती है।

व्याकरण शिक्षण को रोचक तथा सरल बनाने के उपाय—

1. व्याकरण शिक्षण का प्रारम्भ व्यावहारिक व्याकरण से किया जाये तथा व्यावहारिक व्याकरण की शिक्षा भाषा-संसर्ग विधि द्वारा ही प्रदान की जाये।

2. पाठ्य-पुस्तकों में गद्य पाठ व्याकरण के नियमों के अनुकूल हो, जिससे कि व्याकरण को समन्वित करके पढ़ाया जा सके।

3. यथासम्भव व्याकरण का आरम्भ तब तक नहीं किया जाये, जब तक कि छात्र भाषा का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त न कर लें। व्याकरण का प्रारम्भ छोटी कक्षा में किया जाये।

4. व्याकरण का शिक्षण यथासम्भव आगमन विधि से आरम्भ करके निगमन विधि से समाप्त किया जाये। P. Wren लिखते हैं, Teach Grammar inductively and deductively.

5. छात्रों को व्याकरण के नियम रटाये न जाकर समझाये जायें या निकलवायें जायें।

6. व्याकरण का पाठ्यक्रम अधिक जटिल और विस्तृत न हो। पाठ्यक्रम छात्रों के मानसिक स्तर के अनुकूल बनाया जाये।

7. रुचि अनुसार श्रव्य और दृश्य सामग्री का प्रयोग किया जाये।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

8. व्याकरण शिक्षण क्रमबद्ध रूप में किया जाये।

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

9. जिन छात्रों की मातृभाषा कोई और हो, तो तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग किया जाये।

10. छात्रों से व्याकरण के रोचक अभ्यास कराये जायें जैसे— रिक्त स्थानों की पूर्ति, वाक्य-रचना, लिंग-परिवर्तन, संज्ञाओं का परिवर्तन करना आदि आदि।

व्याकरण की शिक्षा किस स्तर पर प्रारम्भ हो

प्राथमिक स्तर के छात्रों को भाषा में शुद्ध स्वाभाविक रूप से बोलने की दृष्टि से ही परिपक्व बनाना चाहिये। इस स्तर पर व्याकरण के नियमों को नहीं समझाना चाहिये क्योंकि व्याकरण भाषा का अनुगमन करता है। भाषा को व्यवस्थित करता है। इसके लिये आवश्यक है कि छात्र पहले भाषा में लिखने, पढ़ने के कार्य में आवश्यक कुशलता प्राप्त कर ले। इस स्तर पर छात्रों को शुद्ध रूप से बोलने व रचना करने की प्रेरणा देनी चाहिए। इस स्तर के बालकों को शुद्ध व्याकरण न पढ़ने तथा उन्हें भाषा में ही लिखने व पढ़ने में कुशल बनाने के सम्बन्ध में अध्यापक को चाहिये कि वह बालकों को व्याकरण के नियम बिना बताये उनकी भाषा तथा व्याकरण सम्बन्धी भूलों में सुधार करता जाये।

व्याकरण का आरम्भ कक्षा 6 में किया जाये, क्योंकि इस स्तर पर छात्रों का भाषा पर पर्याप्त अधिकार हो जाता है। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि व्याकरण की शिक्षा तभी प्रदान की जाये, जबकि बालक भाषा पर अधिकार प्राप्त कर लें। इस विषय में, थाम्पसन तथा बायट लिखते हैं, विद्वान् रायबर्न का भी यही मत है। वे भी व्याकरण की शिक्षा कक्षा 6 से ही आरम्भ करना उचित समझते हैं।

माध्यमिक स्तर पर व्याकरण की शिक्षा बिना किसी संकोच के प्रदान की जा सकत है। रायबर्न लिखते हैं, "छात्र जब माध्यमिक कक्षाओं में पहुँचेंगे, तब उनकी आयु ऐसी होगी कि वे समझ सकेंगे कि बोलने और लिखने के कुछ नियम होते हैं। क्रमशः वे समझने लगेंगे कि विभिन्न शब्द विभिन्न कार्य करते हैं और उनमें परस्पर विभिन्न सम्बन्ध होते हैं। यही समय नियमित व्याकरण-शिक्षण प्रारम्भ करने का है, क्योंकि छात्र उससे अब कुछ लाभ उठा सकते हैं।' इस प्रकार हम देखते हैं कि व्याकरण शिक्षण का आरम्भ छात्रों की मानसिक और बौद्धिक क्षमता को ध्यान में रखकर करन चाहिये।"

1. निगमन प्रणाली
2. आगमन प्रणाली
3. सहयोग प्रणाली
4. भाषा संसर्ग प्रणाली
5. पाठ्य पुस्तक प्रणाली
6. सूत्र प्रणाली

1. निगमन प्रणाली— निगमन प्रणाली में सर्वप्रथम व्याकरण के सामान्य नियमों को छात्रों के सम्मुख रख दिया जाता है, बाद में उदाहरणों द्वारा उन नियमों को सिद्ध किया जाता है। इस विधि में **'सामान्य से विशिष्ट'**, **'निगमन से उदाहरण'** की ओर चलने वाले सूत्र प्रयोग में लाये जाते हैं। बालक सामान्य नियम रटकर व्याकरण समझते हैं। अधिकांश विद्वान इस प्रणाली को अमनोवैज्ञानिक बताकर व्याकरण शिक्षण के लिए व्यर्थ मानते हैं। इसमें बालक जो कुछ भी सीखता है, वह बिना सोचे-समझे रटकर ही सीखता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

2. आगमन विधि— इस विधि में बालक के सामने कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं और इन उदाहरणों की सहायता से ही बालकों द्वारा व्याकरण के सामान्य सिद्धान्त निकलवा लिये जाते हैं। दूसरे शब्दों में व्याकरण के नियों को प्रत्यक्ष न बताकर उदाहरणों द्वारा बालकों द्वारा निकलवाये जाते हैं। इस प्रणाली में **'विशेष से सामान्य की ओर'** तथा **'स्थूल से सामान्य की ओर'** वाले सूत्र प्रयोग में लाये जाते हैं। व्याकरण जैसे विषय को आगमन प्रणाली के माध्यम से अत्यन्त रोचक तथा सरल बनाया जा सकता है। छात्र उदाहरणों के प्रति बड़ी उत्सुकता दिखाते हैं जिससे उनका अवधान पाठ में लगा रहता है तथा वे व्याकरण के नियमों को समझ भी सरलता से जाते हैं। यदि अध्यापक छात्रों को विशेषण पढ़ाना चाहता है, तो वह बालकों के सामने निम्न प्रकार के उदाहरण रखकर प्रश्न कर सकता है—

1. कोयल काले रंग की होती है।
2. श्वेत कबूतर उड़ रहे हैं।

उपयुक्त उदाहरण देकर अध्यापक छात्रों से निम्न प्रश्न करेगा—

प्रश्न— प्रथम वाक्य में संज्ञा शब्द कौनसा है?

उत्तर— कोयल।

प्रश्न— कोयल की क्या विशेषता है?

उत्तर— कोयल का रंग काला है।

प्रश्न— कबूतर की क्या विशेषता है?

उत्तर— कबूतर श्वेत रंग का है।

3. सहयोग विधि— यह विधि भाषा संसर्ग विधइ से मिलती-जुलती है। इस विधि के मानने वाले भी व्याकरण को स्वतन्त्र रूप से पढ़ाने के पक्ष में नहीं हैं। उनके अनुसार बालकों को रचना की शिक्षा प्रदान करते समय ही व्याकरण के नियम बना देने चाहियें जिससे कि वे शुद्ध रचना कर सकें। परन्तु यह विधि भी कुछ दोषपूर्ण है, क्योंकि इसके द्वारा बालकों को हम केवल व्यावहारिक व्याकरण की शिक्षा प्रदान कर सकते हैं, नियमित व्याकरण की नहीं। दूसरे सहयोग विधि से पढ़ाने में कोई तार्किक क्रम नहीं रहेगा। साथ ही, यदि हम रचना या गद्य का पाठों से व्याकरण को समन्वित करके पढ़ायें, तो मूल पाठ की उपेक्षा हो सकती है।

4. भाषा-संसर्ग विधि— भाषा-संसर्ग विधि के समर्थकों के अनुसार व्याकरण की शिक्षा अलग से देने का कोई महत्व नहीं। बालकों को विभिन्न लेखकों की रचनायें पढ़ने को दी जायें जिससे उनका भाषा पर अधिकार हो जाये। व्याकरण शिक्षण का भी यही उद्देश्य होता है कि छात्र भाषा पर अधिकार प्राप्त कर ले। अतः अलग से व्याकरण शिक्षण की कोई आवश्यकता नहीं। मातृभाषा शिक्षण के लिए यह विधि सर्वोत्तम है।

5. पाठ्य पुस्तक प्रणाली— इस प्रणाली का अर्थ है कि व्याकरण की पुस्तकों द्वारा ही छात्रों को व्याकरण का ज्ञान दिया जाये। इन पुस्तकों में प्रारम्भ में किसी नियम की परिभाषा दी हुई होती है फिर उस नियम को उदाहरणों द्वारा समझाया जाता है और अन्त में पुनरावृत्ति के लिये अथवा घर से हल करके लाने के लिये कुछ प्रश्न दिये होते हैं।

पाठ्य-पुस्तक प्रणाली प्राइमरी अथवा मिडिल कक्षाओ के लिये सर्वथा अनुपयुक्त है क्योंकि यदि छात्रों को पहले से ही नियम ज्ञात हो जाता है, तो वे फिर उदाहरण पढ़ने तथा व्याकरण सीखने में अधिक रुचि प्रदर्शित नहीं करते। हाँ, लेकिन उच्च कक्षाओं में व्याकरण

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

सिखाने के लिये व्याकरण की पाठ्य-पुस्तकों का होना नितान्त आवश्यक हो जाता है क्योंकि व्याकरण के बहुत से नियम केवल प्रयोगों अथवा सहयोग प्रणाली से नहीं सिखाये जा सकते, इसलिये उच्च कक्षाओं में पाठ्य-पुस्तकों का प्रयोग आवश्यक है। इन पाठ्य-पुस्तकों के लिखने में इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि इनमें उदाहरणों की अधिगता हो तथा पुनरावृत्ति एवं गृह कार्य के लिये उपयुक्त एवं अधिकाधिक मात्रा में प्रश्न हों।

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

6. सूत्र विधि— सूत्र विधि का प्रचलन विशेष रूप से संस्कृत भाषा में होता था। इस प्रणाली में व्याकरण के विभिन्न नियम सूत्रों में परिवर्तित कर लिया जाते हैं। छात्रों को फिर से नियम रटा दिया जाते हैं। यह प्रणाली अत्यन्त दोषपूर्ण है, क्योंकि बालक बिना सोचे-समझे सूत्रों को रट लेते हैं। आजकल इस प्रणाली को उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

15
रचना शिक्षण

रचना शिक्षण का अर्थ

जब भाषा तथा भाव को सुन्दर ढंग से क्रमबद्ध रूप में संवारा अथवा सजाया जाता है तो वह रचना कहलाती है। इस प्रकार किसी विचार अथवा बात को भली प्रकार मनन करने तथा क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत करना ही रचना का एक अंग है। परन्तु रचना केवल भाषा से सम्बन्धित न होकर साहित्य तथा कला से सम्बन्धित है। **योगेन्द्र जीत** के अनुसार, "रचना वह सार्थक तथा कलात्मक अभिव्यक्ति है जिसके द्वारा हम निश्चित उद्देश्य को सामने रखकर अपने विचारों को लिपिबद्ध करते हैं।"

रचना शिक्षण के उद्देश्य

(1) साहित्य में रुचि रखने वाले एवं प्रभावशाली विद्यार्थियों को रचना कला में निपुण करना।

(2) विद्यार्थियों में विचार शक्ति तथा निरीक्षण शक्ति का विकास करना।

(3) विद्यार्थियों में विभिन्न लेखकों की शैलियों का ज्ञान कराना, जिससे वे भी स्वतन्त्र शैली का निर्माण कर सकें।

(4) विद्यार्थियों को इस योग्य बनाना कि वे स्थायी साहित्य के सृजन में स्वयं भी योगदान कर सकें।

(5) विद्यार्थियों में ऐसी क्षमता उत्पन्न करना कि वे जो कुछ भी सोचें तथा मनन करें उनमें एक क्रम हो।

(6) विद्यार्थियों में ऐसी योग्यता का विकास करना कि वे बड़े से बड़े तथ्य को संक्षेप में प्रस्तुत कर सकें।

(7) विद्यार्थियों में ऐसी क्षमता उत्पन्न करना कि वे अपने विचारों को क्रमबद्ध तथा श्रेणीबद्ध रूप से प्रकाशित कर सकें।

(8) विद्यार्थियों में रचनात्मक तथा सृजनात्मक शक्तियों का विकास करना।

(9) विद्यार्थियों में स्वयं के शब्द भण्डार का उचित प्रयोग कर सकने की योग्यता उत्पन्न करना।

(10) विद्यार्थियों में भाव प्रकाशन तथा आत्म प्रकाशन की क्षमता उत्पन्न करना।

रचना शिक्षण की प्रणालियाँ

(1) **खेल प्रणाली**— मनोवैज्ञानिकों के अनुसार विद्यार्थी खेलों में मुख्य रूप से आनन्द

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
लेते हैं। इसलिये जो शिक्षा खेल द्वारा प्रदान की जाती है वह शिक्षा सबसे उत्तम होती है। उस प्रणाली को खेल प्रणाली कहा जा सकता है जिसके माध्यम से विद्यार्थी सीखने के साथ ही साथ रुचि तथा आनन्द का भी अनुभव करते हैं।

(2) उद्‌बोधन प्रणाली— ज्ञात तथ्यों के लिये विद्यार्थियों को प्रेरित कर कल्पना तथा विचार शक्ति को उद्‌बोधित करके रचना के निमित्त सुसुप्त भावनाओं को उत्पन्न किया जाता है। इस प्रणाली के द्वारा आत्मकथा, जीवन चरित्र, ऐतिहासिक, भौगोलिक एवं सांस्कृतिक धार्मिक स्थानों का वर्णन कराया जाता है।

(3) प्रवचन प्रणाली— इस प्रणाली को व्याख्यान प्रणाली भी कहा जाता है। शिक्षक अपने व्याख्यान के द्वारा विद्यार्थियों को उद्‌बोधित कर देता है। इसके पश्चात् शिक्षक विद्यार्थियों को रचना का रूप देने का आदेश देता है। इस प्रणाली में प्रायः वैज्ञानिक, विवेचनात्मक तथा अज्ञात नियमों को महत्व प्रदान किया जाता है।

(4) प्रबोधन प्रणाली— इस प्रणाली को पथ प्रदर्शन प्रणाली तथा निर्देशन प्रणाली भी कहा जात है। विद्यार्थियों को सामान्य रूप में एक दिशा का ज्ञान कराया जाता है। सूत्र रूप में तथा संक्षिप्त रूप में विषय को प्रतिपादित करके विद्यार्थी को रचना के लिये प्रेरित किया जाता है।

(5) प्रश्नोत्तर प्रणाली— प्रश्नोत्तरों के द्वारा ही विषय को पूर्णरूप से आत्मसात कर लिया जाता है। प्रश्नोत्तर पहले मौखिक कार्य में फिर बाद में लिखित कार्य में सम्पादित किया अथवा कराया जाता है। इस प्रणाली में 'सामान्य से विशेष की ओर' के सिद्धान्त का पालन किया जाता है।

(6) चित्र वर्णन प्रणाली— इस प्रणाली में रचना से सम्बन्धित चित्र को दीवार पर टांग दिया जाता है। शिक्षक विद्यार्थियों से चित्र की ओर संकेत करके क्रमबद्ध प्रश्न पूछता है। उसके पश्चात् चित्र को उल्टा करके रचना करने का आदेश देता है। इस प्रणाली में कक्षा में रोचकता उत्पन्न होती है तथा विद्यार्थियों की निरीक्षण शक्ति विकसित होती है। यह प्रणाली छोटे विद्यार्थियों के लिये रोचक तथा उत्साहवर्द्धक है।

(7) अनुकरण प्रणाली— अनुकरण प्रणाली महत्वपूर्ण प्रणाली है। इस प्रणाली में विद्यार्थियों के सम्मुख कोई आदर्श रचना प्रस्तुत की जाती है। प्रस्तुत रचना भाषा तथा शैली की दृष्टि से अत्यन्त उत्तम तथा अनुकरणीय होती है। विद्यार्थियों को रचना का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने को कहा जाता है जिससे कि वे उसकी भाषा तथा शैली को उचित प्रकार से समझ सकें। उसके बाद विद्यार्थियों को पढ़ी गयी रचना से मिलती-जुलती अन्य रचना लिखने को दी जाती है। विद्यार्थी उसी भाषा तथा शैली में लिखने का अभ्यास करते हैं।

(8) तर्क प्रणाली— इस प्रणाली को विमर्श प्रणाली भी कहा जात है। इस प्रणाली में कोई भी धार्मिक, राजनैतिक तथा सामाजिक विषय ले लिया जाता है जिस पर विद्यार्थी दो दलों में बंट जाते हैं तथा तर्क अथवा विचार-विमर्श करते हैं। वाद-विवाद हो जाने के बाद विद्यार्थियों को रचना करने का आदेश दिया जाता है।

(9) स्वाध्याय प्रणाली— स्वाध्याय प्रणाली का प्रयोग बड़ी कक्षाओं में ठीक रहता है। इस प्रणाली में शिक्षक रचा से सम्बन्धित पुस्तकें विद्यार्थियों को बता देता है। विद्यार्थी स्वयं विवेकपूर्वक रचना का चुनाव करके उसका प्रयोग करते हैं।

(10) रूपरेखा प्रणाली— इस प्रणाली में शिक्षक प्रश्न पूछकर विद्यार्थियों में रचना का

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
विकास करता है तथा उसे सूत्र रूप में श्यामपट पर लिख देता है। विद्यार्थियों को इन सूत्रों की मदद से रचना करने के लिये कहा जाता है। इस प्रणाली का प्रयोग प्रत्येक स्तर पर किया जा सकता है।

(11) आदर्श प्रणाली— इस प्रणाली में विद्यार्थियों के सम्मुख मौखिक रूप से निबन्ध प्रस्तुत किया जाता है। उसके पश्चात् विद्यार्थी आदर्श रचना के अनुसार रचना करते हैं। इस प्रणाली का उपयोग उच्च कक्षा के लिये किया जाता है।

रचना शिक्षण के महत्व

(1) रचना द्वारा भाव अभिव्यक्ति, सृजनात्मक, रचनात्मक, भाषात्मक, शैलीगत व चिन्तन आदि प्रवृत्तियों का विकास होता है।

(2) विवेचनात्मक शक्ति, विचार शक्ति तथा कल्पना शक्ति का विकास रचना द्वारा होता है।

(3) रचना द्वारा भाषागत, भाषा विज्ञानगत तथा व्याकरणगत नियमों का पालन स्पष्ट होता है।

(4) रचना द्वारा लेखन शक्ति का विकास होता है।

(5) रचना द्वारा भाषा के विभिन्न रूपों का विकास होता है।

रचना शिक्षण से सम्बन्धित ध्यान देने योग्य बातें—

(1) रचना का विषय छोटी कक्षाओं में विद्यार्थियों की रुचि के अनुकूल होना चाहिए। इस स्तर पर वे विषय अधिक उपयुक्त रहते हैं जो विद्यार्थियों के प्रत्येक अनुभव से सम्बन्धित हों।

(2) विद्यार्थियों को विभिन्न शैलियों की जानकारी दी जाये और शिक्षक को प्रत्येक शैली की विशेषताओं पर प्रकाश डालना चाहिए तथा विद्यार्थियों की शैलियों को सुधारना चाहिए।

(3) प्रत्येक शब्द का उसकी आवश्यक स्थिति को दृष्टि मे रखते हुए प्रयोग किया जाना चाहिए।

(4) रचना कार्य प्रदान करते समय विद्यार्थियों के मानसिक स्तर का ध्यान अवश्य रखना चाहिए। छोटी कक्षाओं में भाव-प्रधान विषय नहीं दिये जाने चाहियें अस्पष्ट वाक्यों का प्रयोग न हो।

(5) लिखित रचना का संशोधन विद्यार्थियों के सामने ही किया जाना चाहिए।

(6) रचना में बातचीत के शब्दों का प्रयोग कराया जा सकता है।

(7) विद्यार्थियों को अभिव्यक्ति का पूर्ण अवसर प्रदान करना चाहिए।

(8) विद्यार्थियों को अप्रासंगिक तथा व्यर्थ की बातों के लिए उत्साहित नहीं करना चाहिए।

(9) रचना न अधिक बड़ी होनी चाहिए तथा न अधिक संक्षिप्त।

(10) लिखित रचना से पहले मौखिक रचना अवश्य करा लेनी चाहिए।

(11) रचना में किसी भी प्रकार का विरोधाभास नहीं होना चाहिए।

रचना सम्बन्धी आवश्यक बातें—

(1) रचना का विषय छोटी कक्षाओं में बालकों की रुचि के अनुकूल होना चाहिए।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इस स्तर पर वे विषय अधिक ठीक रहते हैं जो बालकों के प्रत्येक अनुभव से सम्बन्धित होते हैं।

(2) प्रत्येक शब्द का, उसकी आवश्यकता तथा स्थिति को ध्यान में रखकर ही प्रयोग करना चाहिए।

(3) रचना कार्य करते समय छात्रों के मानसिक स्तर पर अवश्य ध्यान रहना चाहिए। प्राथमिक कक्षाओं के भाव-प्रधान विषय नहीं देने चाहिएं।

(4) छात्रों को विभिन्न शैलियों का ज्ञान कराना चहिए और शिक्षक को प्रत्येक शैली की विशेषताओं पर प्रकाश डालना चाहिए, यथा सम्भव छात्रों की शैली को सुधारना चहिए।

(5) रचना में बोल-चाल के शब्दों का भी प्रयोग कराया जा सकता है।

(6) बालकों को अभिव्यक्ति का पूर्ण अवसर प्रदान करना चाहिए।

(7) लिखित रचना का संशोधन छात्रों के सामने ही करना चाहिए।

(8) व्यर्थ की बातों और अप्रसांगिक बातों को रचना में निरुत्साहित करना चाहिए।

(9) रचना में किसी भी प्रकार का विरोधाभास नहीं होना चाहिए।

(10) रचना का आकार व अधिक बड़ा तथा न अधिक संक्षिप्त होना चाहिए।

(11) अस्पष्ट वाक्यों का प्रयोग नहीं होना चाहिए।

(12) लि.. ब्रत रचना से पहले मौखिक रचना अवश्य करा लेनी चाहिए।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

16

नाटक शिक्षण

नाटक प्रदर्शन का प्रचलन प्राचीन काल से चला आ रहा है। प्राचीन संस्कृति साहित्य नाटकों से भरा पड़ा है। नाटकों की परम्परा राजपूत काल तक चलती रही, परन्तु मुगल काल में इसका प्रचलन बहुत कम हो गया। अंग्रेजों का शासन काल में भारतीय पाश्चात्य-साहित्य के निकट आये तथा साथ ही संस्कृत साहित्य का पुनरुद्धार हुआ, जिसके कारण अनेक प्रभावशाली नाटकों की रचना हुई।

नाटक शिक्षण का अर्थ

संसार में समस्त प्राणी जीवन की अनेक परिस्थितियों में होकर गुजरते हैं। कोई व्यापार करता है, कोई डाक्टरी करता है। इस प्रकार व्यक्ति के जीवन के विभिन्न रूप तथा परिस्थितियाँ हैं। इन विभिन्न रूपों और परिस्थितियों का अनुकरण करना ही एक प्रकार का नाटक है। 'अभिनव नाट्यशास्त्र' के विद्वान के अनुसार— "किसी प्रसिद्ध अथवा कल्पित कथा के आधार पर, नाट्यकार द्वारा चित्र-रचना के अनुसार—नाट्यकार द्वारा प्रशिक्षित नट जब रंगमंच पर संगीत एवं अभिनय आदि के द्वारा रस उत्पन्न करके दर्शकों का मनोरंजन करते हुए उन्हें उपदेश तथा मानसिक शान्ति प्रदान करते हैं, तब इस क्रिया को नाटक कहते हैं।" बंगाल में बंकिमचन्द्र एवं रविन्द्रनाथ टैगोर ने नाटक के क्षेत्र में विशेष योगदान दिया। हिन्दी में भी इस दिशा में काफी उन्नति हुई है। संस्कृत के नाटकों का अनुवाद करने के अतिरिक्त कई मौलिक नाटकों की भी रचना हुई है। जयशंकर प्रसाद के नाटकों का हिन्दी साहित्य में विशेष स्थान है।

नाटक की परिभाषा— नाट्याचार्य भरतमुनि के अनुसार— "किसी भी दशा के अनुकरण को नाटक कहते हैं।" उनके शब्दों में, "अवस्थानुकृतिर्नाटकम्।" संसार के समस्त प्राणी जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में होकर गुजरते हैं— कोई डाक्टरी व्यवसाय करता है, तो कोई व्यापार करता है। इस प्रकार मानव जीवन के विभिन्न रूप तथा परिस्थितियाँ हैं। इन विभिन्न रूपों तथा परिस्थितियों का अनुकरण करना ही एक प्रकार से नाटक है। नाटक की सबसे सुदर परिभाषा 'अभिनव नाट्यशास्त्र' में विद्वान् अभिनव भरत ने इन शब्दों में की है, "किसी प्रसिद्ध या कल्पित कथा के आधार पर, नाट्यकार द्वारा चित्र-रचना के अनुसार : नाट्यकार द्वारा प्रशिक्षित नट जब रंगमंच पर संगीत तथा अभिनय आदि के द्वारा रस उत्पन्न करके दर्शकों का मनोविनोद करते हुए उन्हें उपदेश और मानसिक शान्ति प्रदान करते हैं, तब इस क्रिया को नाटक या रूपक कहते हैं।" इस प्रकार नाटक में हम निम्न प्रमुख बातें पाते हैं—

(i) नाटक में अनुकरण तत्व की प्रधानता होती है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

(ii) नाटक गद्यात्मक तथा पद्यात्मक दोनों रूप का हो सकता है।

(iii) नाटक काव्य की अपेक्षा अधिक वास्तविकता लिये हुए है।

(iv) नाटक-रचना का उद्देश्य मनोरंजन के साथ-साथ सर्वसाधारण को कोई न कोई सन्देश देना है।

नाटक शिक्षण के उद्देश्य—

(1) विभिन्न जीवन दर्शनों का ज्ञान— नाटक के विभिन्न कलाकारों का अलग-अलग दर्शन होता है। विद्यार्थी एक नाटक से ही अनेक प्रकार के जीवन-दर्शन का ज्ञान प्राप्त कर लेता है।

(2) सम्वाद शिक्षा— समाज के अनेक आयु वर्ग, ज्ञान वर्ग के लोगों के साथ किस प्रकार का व्यवहार करना, उनसे किस प्रकार बातचीत करना इत्यादि की शिक्षा विद्यार्थी को नाटक के द्वारा अपने आप ही प्राप्त हो जाती है।

(3) अनुकरणशीलता— वास्तव में अनुकरण ही नाटक है। विद्यार्थी कुछ कलाकारों के सम्वाद अनुकरण विधि के द्वारा सीखकर प्रयोग भी करने लगते हैं।

(4) हितोपदेश— नाटक का उद्देश्य ही हितोपदेश देना है। नाटक विद्यार्थियों को हितोपदेश द्वारा शिक्षा प्रदान करता है।

(5) वैयक्तिक स्वभाव का अध्ययन— नाटक शिक्षण के द्वारा व्यक्ति के स्वभाव को ज्ञात करना तथा अध्ययन करना सरल हो जाता है।

(6) विभिन्न परिस्थितियों का ज्ञान— नाटक में विभिन्न प्रकार की परिस्थितियाँ उत्पन्न की जाती हैं तथा साथ ही साथ समस्यायें तथा उनका समाधान भी होता है। विद्यार्थी इन सभी परिस्थितियों का ज्ञान प्राप्त करता है।

(7) भावाभिव्यक्ति— नाटक में शब्दों का प्रयोग भाव के अनुसार किया जाता है तथा नाटक में गति-यति विराम, आरोह-अवरोह भाव के अनुकूल प्रस्तुत किये जाते हैं। विद्यार्थी नाटक के द्वारा ही भावाभिव्यक्ति की कला सीखता है।

(8) स्वस्थ मनोरंजन— नाटक के द्वारा विद्यार्थियों का मनोरंजन होता है। नाटक विद्यार्थियों के मनोभावों को उद्वेलित कर स्वस्थ मनोरंजन प्रदान करता है।

नाटक शिक्षण के अन्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

(1) विद्यार्थियों को अभिनव कला में निपुण बनाना।

(2) विद्यार्थियों को प्राचीन एवं आधुनिक संस्कृति का यथार्थ जीवन से परिचय कराना।

(3) विद्यार्थियों में संवाद, लेखन कला तथा कथा की नाट्यकला के विषय में साहित्यिक विकास करना।

(4) विद्यार्थियों के सूक्ति भंडार में वृद्धि करना।

(5) विद्यार्थियों की निरीक्षण, काल्पनिकता, विवेचन तथा बोध की क्षमता का विकास करना।

नाट्य शिक्षण के महत्व—

(1) नाटक द्वारा प्रशिक्षण में रोचकता आती है। यदि विद्यार्थी हमेशा पुस्तक पढ़ते रहें

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

और दिये गये प्रश्नों के उत्तर ही लिखते रहें, तो कक्षा शिक्षण में नीरसता आ जायेगी। इसलिये कक्षा के शिक्षण को सरस बनाने के लिये यह आवश्यक है कि समय-समय पर कुछ परिवर्तन होते रहें। ये रिवर्तन नाटक शिक्षण के द्वारा सरलता से उत्पन्न किये जा सकते हैं।

(2) नाटकों के महत्व पर प्रकाश डालते हुये योगेन्द्रजीत ने लिखा है— "नाटकों में मनुष्य जीवन की आवश्यकताओं एवं विषमताओं की चर्चा की जाती है। विद्यार्थी इन सबको देखता है तथा सोचता है कि किन परिस्थितियों में कलाकारों ने कौन-कौन सा कार्य किया, जिनसे उन्हें सफलता प्राप्त हुई। अब वह भी ऐसा कर सकता है। क्या उसके लिये ऐसा सम्भव नहीं है कि वह परिस्थितियों को अपने अनुकूल ढाल सके।"

(3) नाटकों के महत्व पर प्रकाश डालते हुए फ्रॉब्रेल ने लिखा है— "समस्त क्रियायें शिक्षाप्रद हैं। इनके द्वारा तथ्यों की सूक्ष्मता को दूर करने में सहायता प्राप्त होती है। इससे तथ्यों को स्थूलता प्रदान की जाती है।"

(4) नाटकों का उद्देश्य मात्र मनोरंजन करना ही नहीं है, बल्कि नाटकों का शिक्षण में भी बहुत महत्व है। किसी बात अथवा भाव का विद्यार्थियों पर कहने अथवा पढ़ने में इतना अधिक प्रभाव नहीं पड़ता है। जितना कि उसी बात अथवा भाव को नाटक के द्वारा प्रस्तुत करने पर पड़ता है।

(5) विद्यार्थियों में अनुकरण तथा क्रियाशीलता की प्रवृत्तियाँ जन्मजात होती है। नाटक द्वारा इन प्रवृत्तियों का सन्तुष्टिकरण ही नहीं होता बल्कि उचित विकास भी होता है।

(6) किसी भी घटना अथवा चरित्र को नाटक द्वारा सफलतापूर्वक समझाया जा सकता है।

(7) एक विद्वान के अनुसार— अभिनय के द्वारा विद्यार्थियों में विषय ग्राह्यता, आत्मभिव्यंजन एवं आत्म-विश्वास का विकास होता है।

(8) नाटक के द्वारा विद्यार्थियों का बौद्धिक तथा मानसिक विकास होता है क्योंकि विद्यार्थियों को बहुत अधिक सम्वाद याद करने पड़ते हैं।

(9) नाटक द्वारा विद्यार्थियों को शिष्टाचार की शिक्षा मिलती है। सम्वादों को सुनकर उन्हें पता लग जाता है कि परस्पर वार्तालाप किस प्रकार किया जाता है।

नाटक शिक्षण की प्रणालियाँ

नाटक शिक्षण के लिये निम्न प्रणालियों का प्रयोग किया जाता है—

(1) आदर्श नाट्य प्रणाली— अभिनय प्रणाली में शिक्षक का प्रायोगिक दृष्टिकोण रहता है। शिक्षक स्वयं ही एक कलाकार की भूमिका निभाता है। लेकिन यह अभिनय वाचिक अभिनय होता है। शिक्षक आवश्यकता के अनुसार कठिन स्थलों को समझाता है। इस प्रणाली में विद्यार्थी मूक श्रोता ही बने रहते हैं तथा सभी कार्य शिक्षक ही करता है।

(2) अभिनय प्रणाली— इस प्रणाली में नाटक का अभिनय कराकर उसका प्रायोगिक रूप स्पष्ट किया जाता है। इसके दो प्रकार हैं—

(i) रंगमंच अभिनय प्रणाली— रंगमंच अभिनय प्रणाली में विद्यार्थियों से भूमिका करने के लिये कहा जाता है। विद्यार्थी कलाकार की पूरी भूमिका, हाव-भाव, चरित्र तथा स्वर का अभ्यास करते हैं। बाद में समस्त छात्र मिल कर पूरे नाटक की वास्तविक रंगमंच पर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
प्रस्तुत करते हैं। इस प्रणाली में बहुत अधिक खर्च होता है तथा यह प्रणाली बड़ी कक्षाओं में ही सफल हो सकती है।

(ii) कक्षा अभिनय प्रणाली— इस प्रणाली में विद्यार्थ कलाकार के अनुसार वाचिक अभिनय करते हैं। प्रत्येक विद्यार्थी एक कलाकार का संवाद याद करके वाचन पात्रों के अनुसार करते हैं। शिक्षक निर्देशन देता है, यह प्रणाली सरल तथा सहज ग्राह्य है। इस प्रणाली में कम खर्च होता है।

(3) संयुक्त प्रणाली— इस प्रणाली में शिक्षक पहले स्वयं कलाकार के अनुसार वाचन करता है तथा उसके बाद विद्यार्थियों से कलाकार के अनुसार वाचन कराया जाता है। जब जो भी प्रणाली उपयोगी लगती है उसका सहारा लिया जाता है। वाचन अभिनय मुख्य होता है।

(4) व्याख्या प्रणाली— इस प्रणाली में नाटक तथ्य, भाषा, शैली, कलाकार, कथोपकथन, भाव-सौन्दर्य तथा चरित्र-चित्रण कथावस्तु की व्याख्या शिक्षक स्वयं ही करता है। शिक्षक इसकी विशेषताओं, गुण तथा दोषों को समझाता है। यह प्रणाली प्राचीन है तथा छोटी कक्षाओं में इसके द्वारा नाट्य शिक्षण सफल नहीं हो सकता है।

(5) प्रयोग प्रणाली— नाटक को दृश्य-काव्य कहा जाता है। विद्यार्थियों के सम्मुख नाटक का अभिनय करके दिखाने के बजाय भावों को स्पष्ट करना अधिक सरल तथा सहज ग्राह्य है। विद्यार्थियों को नाटकों को प्रस्तुत करके दिखाना चाहिये।

नाटक शिक्षण के सोपान— छात्रों को नाटक पढ़ाते समय निम्नलिखित सोपानों का क्रम से प्रयोग करना चाहिए—

(1) परिचयात्मक वार्ता या प्रस्तावना— नाटक की प्रस्तावना का आरम्भ किस प्रकार किया जाये, इस विषय पर विद्वानों में मतभेद है। एक विद्वान के मतानुसार, "उच्च माध्यमिक तथा उच्चतर कक्षाओं में पाठ प्रारम्भ करने से पहले नाटककार का कुछ परिचय दे देना चाहिये।" परन्तु प्रोफेसर रमन लाल ने इस कथन की आलोचना करते हुए लिखा है, "पहली बात तो यह है कि इस विधि से हम बच्चों को नाटक पढ़ने के लिये तैयार नहीं कर पाते, इस प्रकार बच्चों की विषय के प्रति कोई रुचि उत्पन्न नहीं होती, दूसरे माध्यमिक कक्षाओं तक हम किसी एक नाटक अथवा नाटकांश को ही पढ़ाते है। नाटककार का परिचय जानना वांछित नहीं होता।" अतः उनके अनुसार, "नाटक की प्रस्तावना 'पूर्ण कथा' द्वारा अथवा 'प्रश्नोत्तर' द्वारा करनी अधिक उत्तम रहती है। यदि नाटक कल्पित कथा पर आधारित हो, तो परिचयात्मक पाठ से प्रस्तावना का उद्देश्य पूर्ण होता है।" अध्यापक को दोनों मतों का आवश्यक तथा स्थिति के अनुसार प्रयोग करना चाहिये। निम्न कक्षाओं में प्रस्तावना का प्रारम्भ प्रश्नोत्तर विधि से किया जा सकता है। छात्रों को नाटक का कथानक न बताया जाये।

(2) विषय-प्रवेश— प्रस्तावना के पश्चात् अध्यापक नाटक के किसी अंग या दृश्य का परिचयात्मक पाठ करता है। यह पाठ अभिनययुक्त मुद्रा में किया जाता है। भावों के अनुसार वाणी का उतार-चढ़ाव होता है। कुछ विद्वानों के अनुसार इस सोपान पर परिचयात्मक पाठ करते समय अंगों का संचालन नहीं किया जाये। जो कुछ भी अभिनय किया जाये, वह केवल वाचिक हो, पात्रों के नामों का उच्चारण अध्यापक केवल एक या दो बार करता है फिर बिना नाम के संवाद बोलता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

(3) बोध परीक्षा— अध्यापक के परिचयात्मक पाठ का छात्रों पर क्या प्रभाव पड़ा, यह जानने के लिए बोध परीक्षा करनी चाहिए। इस उद्देश्य से अध्यापक को इस प्रकार के प्रश्न करने चाहिएं जिससे नाटक के मूल पात्र का महत्व तथा केन्द्रीय भाव का पता लग सके।

(4) शब्द व्याख्या— अधिकांश विद्वान नाटक में शब्द व्याख्या को स्थान देना अनुचित समझते हैं। काव्य शिक्षण के समान शब्द व्याख्या करने से नाटक का रस समाप्त हो जाता है।

(5) आदर्श वाचन— अध्यापक को आदर्श वाचन करना चाहिए। इस समय छात्रों की पुस्तकें बन्द होंगी।

(6) अनुकरण वाचन— इस सोपान में 'कक्षाभिनय प्रणाली' को अपनाना चाहिए। जो छात्र वाचन कला में निपुण हों, उन्हें छाँटकर नाटक के पात्रों की भूमिका दे देनी चाहिए। शिक्षक स्वयं भी कोई भूमिका ले सकता है। प्रत्येक छात्र क्रम से अपने-अपने संवाद अभिनय करते हुए बोलते जाते हैं। इस सोपान में कायिक अभिनय की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है। यह प्रणाली कक्षा में क्रियाशीलता सम्पन्न करती है।

(7) आवृत्यात्मक प्रश्न— आवृत्यात्मक प्रश्न करने का मुख्य उद्देश्य नाटक की व्याख्या करना होता है। शिक्षक को नाटक के सम्बन्ध में कुछ प्रश्न करने चाहिए। प्रश्न करते समय निम्नलिखित सावधानियाँ रखनी चाहिएं।

(1) प्रश्नों से नाटक के चरित्रों पर प्रकाश पड़ना चाहिए।

(2) प्रश्न छात्रों की मानसिक अवस्था के अनुकूल होना चाहिएं। निम्न कक्षाओं में केवल कथानक से सम्बन्धित प्रश्न ही करने चाहिएं।

(3) प्रश्न इस प्रकार के होने चाहिएं जिनसे कि नाटक के मुख्य तत्वों की आलोचना हो सके।

(4) प्रश्न इस प्रकार के होने चाहिएं जिनके कि छात्रों की कल्पना शैली तथा तर्क शैली का ज्ञान हो।

(5) गृह कार्य— नाटक के प्रधान-पात्र के चरित्र, कथानक और शैली से सम्बन्धित प्रश्न छात्रों को घर से करके लाने को देने चाहिएं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

17

कहानी शिक्षण

कहानी का अर्थ

हिन्दी भाषा शिक्षण में कहानी कहने का बहुत अधिक महत्व है। भाषा, इतिहास, भूगोल आदि विषयों में कहानी प्रणाली का प्रयोग किया जाता है। कहानी रचना एक लघु अनुबन्धित की जाती है।

कहानी के अर्थ को स्पष्ट करने के लिये विभिन्न विद्वानों ने अपने मत दिये हैं जो निम्नलिखित हैं—

मुंशी प्रेमचन्द के अनुसार— "कहानी एक ऐसी रचना है जिसमें जीवन के किसी एक अंग अथवा एक मनोभाव को प्रस्तुत करना ही लेखक का उद्देश्य हो। यह एक ऐसा सुन्दर उद्यान नहीं है, जिसमें भली-भाँति बेल-बूटे, फल तथा फूल हों, वरन् यह एक ऐसा गमला है, जिसमें एक ही पौधे का माधुर्य अपने सन्तुलन रूप में दृष्टिगोचर होता है।"

रायबर्न के अनुसार— "प्रत्येक शिक्षक को यह प्रयल करना चाहिये कि वह एक अच्छा कहानी सुनाने वाला बन जाये। किसी भी निपुण शिक्षक को कोई बात इतनी अधिक सहायता नहीं करती है जितनी कि कहानी सुनाने की निपुणता।"

कोबोल्ट नाइट के अनुसार— "आधुनिक कहानी नाटक के गुणों से युक्त एक रचना है जिसमें हल करने में एक समस्या हो, हल की प्राप्ति में एक बाधा हो, संकटग्रस्त स्थिति हो, नाटक की भाँति असमंजस के क्षणों तथा इन क्षणों में स्थिति चरम हो।"

भाटिया दम्पत्ति के अनुसार— "हम चाहते हैं कि छोटी कक्षाओं का शिक्षक कहानी सुनाने में निपुण हो। इसके द्वारा ही वह इन छोटे-छोटे विद्यार्थियों के सम्पर्क में आता है जो उनके देख-रेख में छोड़े जाते हैं। एक अच्छी कहानी विद्यार्थी के हृदय पर प्रभाव डालती है तथा सुनने वाले के ध्यान को खींचती है। विद्यार्थियों की कुछ शिक्षा कहानी के द्वारा ही हो जाती है।"

टी०एस० मेसल के अनुसार— "कहानी में द्वन्द्व अथवा संघर्ष की प्रबलता होती है।"

मैथ्यूज के अनुसार— "कहानी घटना प्रधान होनी चाहिये। उसके एक मात्र लक्ष्य में किसी भी प्रकार की बाधा नहीं पड़नी चाहिये।"

कहानी का चुनाव— कहानी के चुनाव में निम्नलिखित बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिये—

(1) कहानी विद्यार्थियों की मानसिक आयु के अनुकूल होनी चाहिये। एक विद्वान के अनुसार— "कहानी का उपयुक्त होना सुनने वालों पर, उनकी आयु पर, उनकी विकास की अवस्था पर, उनके ज्ञान और जीवन के प्रति उनके दृष्टिकोण पर निर्भर करेगा।"

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

(2) विद्यार्थी स्वभाव से क्रियाशील होते हैं। इसलिये उन कहानियों का चयन किया जाना चाहिये जिनमें क्रियाओं का समावेश हो। **भाटिया दम्पत्ति** के अनुसार— "'क्रिया वाली कहानियाँ सभी आयु के विद्यार्थियों को अच्छी लगती है, क्योंकि वे स्वयं क्रियाओं तथा हरकतों में प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। वे उन कहानियों से प्रेम करते हैं जिनमें दौड़ने, उड़ने तथा कूदने का पर्याप्त वर्णन हो।'

(3) कहानी का चुनाव करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिये। उसमें कथोपकथन की पर्याप्त मात्रा हो। कहानी में कथोपकथन की पर्याप्त मात्रा होने से विद्यार्थियों को सुनने में आनन्द का अनुभव होता है तथा नीरसता नहीं रहती है।

(4) कम उम्र के विद्यार्थियों के लिये जिस कहानी का चुनाव किया जाये, वह अत्यन्त स्पष्ट तथा छोटे-छोटे वाक्यों में हो।

(5) विद्यार्थियों को दुखान्त कहानियाँ न सुनानी चाहियें। कम उम्र में विद्यार्थियों का हृदय बहुत ही संवेदनशील होता है। दुखान्त कहानियों से उनके कोमल हृदय पर आघात होता है।

(6) अधिकांश विद्यार्थी ऐसी कहानियाँ पसन्त करते हैं जो उनके वर्तमान जीवन से सम्बन्धित हों। यदि कहानियाँ विद्यार्थियों से सही सम्बन्धित होंगी, तो विद्यार्थी अधिक सुखी रहेंगे।

(7) कहानी में क्रियाशीलता, गतिशीलता, वार्तालाप, नाटकीकरण, संस्कार तथा मनोरंजन के गुण होने चाहियें।

(8) कहानी के शीर्षक सारगर्भित तथा उत्साहवर्द्धक होने चाहियें जिनसे कि विद्यार्थी तुरन्त आकृष्ट हो जायें।

(9) कहानी मनोवैज्ञानिक, आलोचनात्मक तथा आवृत्ति होनी चाहियें। कहानी में आये हुये वाक्यों एवं शब्द समूहों की बार-बार आवृत्ति जिस कहानी में होती है, उसे विद्यार्थी अधिक पसन्द करते हैं।

(10) विद्यार्थियों को संवेगों तथा मनोवृत्तियों का ज्ञान कराना।

कहानी के उद्देश्य—

(1) ज्ञान को सरल और रोचक रूप में प्रस्तुत करना।

(2) ज्ञान प्रदान करने के साथ-साथ विद्यार्थियों के मनोरंजन करना।

(3) विद्यार्थियों को भाषा की विभिन्न शैलियों से अवगत कराना।

(4) विद्यार्थियों में विचार, कल्पना, तर्क शक्ति को विकसित करना।

(5) विद्यार्थियों में भावनात्मक तथा चारित्रिक भावनाओं को विकसित करना।

(6) छोटी तथा कठिन बातों को सरल बनाकर सुनाना।

(7) पाठ्य विषय के प्रति रुचि तथा जिज्ञासा उत्पन्न करना जिससे उनका ध्यान विषय की ओर केन्द्रित हो।

(8) विद्यार्थियों में सामाजिकता की भावना को विकसित करना।

(9) विद्यार्थियों में भाषा तथा साहित्य के प्रति रुचि उत्पन्न करना।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

(10) विद्यार्थियों को संवेगों तथा मनोवृत्तियों का ज्ञान कराना।

कहानी का महत्व—

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

(1) विद्यार्थियों को चरित्र का निर्माण करना।

(2) विद्यार्थियों की गुणात्मक शक्ति का विकास करना।

(3) विद्यार्थियों के संवेगों का विकास करना।

(4) विद्यार्थियों की मनोवृत्ति का पता लगाना और मनोवृत्ति का विकास करना।

(5) विद्यार्थियों की रचनात्मक प्रवृत्ति का विकास करना।

(6) विद्यार्थियों की काल्पनिकता का विकास करना।

(7) मनोरंजन के साथ ही साथ विद्यार्थियों का चारित्रिक विकास करना।

(8) विद्यार्थियों की कल्पना शक्ति का विकास करना।

(9) विद्यार्थियों में समय का सदुपयोग।

(10) हिन्दी शिक्षण के लिये उपयोगी।

कहानी कहना एक कला

कहानी को सुनाना एक कलापूर्ण कार्य है। **एक विद्वान्** के शब्दों में, "आनन्द जिससे मिलता है, वही कला है। इसलिये यदि आप कहानी सुनाकर आनन्द उत्पन्न कर सकें, तो वह कला है और उसके साथ वही व्यवहार होना चाहिये जो अन्य कलाओं के साथ होता या हो सकता है।" इस प्रकार हम देखते हैं कि कहानी एक कला है और जिसका शिक्षण में प्रमुख स्थान है। अतः प्रत्येक अध्यापक का कर्त्तव्य है कि वह कहानी कहने की कला में अपने को निपुण बनाये। यह सत्य है कि कहानी कहने वाले जन्मजात होते हैं, उन्हें बनाया नहीं जा सकता। कुछ भी हो यदि अध्यापक कुछ आवश्यक बातों को ध्यान में रखकर कहने का अभ्यास करें, तो वह किसी सीमा तक सफलता प्राप्त कर सकता है। कहानी कहने में जिन सावधानियों की आवश्यकता होती है, उनका उल्लेख निम्न प्रकार है—

(1) कहानी को सुनाने से पूर्व अध्यापक को कहानी मे आने वाली घटनाओं का अध्ययन भली प्रकार से कर लेना चाहिए। बीच-बीच में भूल जाना हास्यास्पद हो सकता है।

(2) अध्यापक कहानी पुस्तक में से न पढ़े वरन् छात्रों को मौखिक सुनायें। पुस्तक से पढ़कर कहानी सुना देने से छात्रों पर प्रभाव नहीं पड़ता। इसके विपरीत यदि अध्यापक कहनी सुनाता है, तो वह उसकी अपनी हो जाती है। उसका व्यक्तित्व कहानी में झलकता है। अतः यथासम्भव अध्यापक कहानी याद करते ही बालकों को सुनाये।

(3) अध्यापक को कहानी कहने की कला आनी चाहिये। इसके लिये उन पुस्तकों का अध्ययन करना चाहिये जो कहानी कहने की कला से सम्बन्धित हैं।

(4) अध्यापक जिस कहानी को सुना रहा हो, वह उसे भी रोचक लगे। यदि कहानी उसकी रुचि के अनुकूल नहीं होगी, तो वह उसे प्रभावशाली ढंग से छात्रों के समक्ष नहीं प्रस्तुत कर सकेगा।

(5) कहानी कहते समय अध्यापक को कहानी में ही लीन हो जाना चाहिये। कहानी जितनी डूबकर सुनाई जायेगी उतनी ही बालकों के हृदय को छुएगी।

(6) जिस समय अध्यापक कहानी सुना रहा हो, उसके नेत्र कक्षा की ओर स्थिर रहने चाहियें। ऐसा करने से छात्रों का अवधान स्थिर तथा एकाग्र रहता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

(7) कहानी कहने से हास्य-भार का मिश्रण आवश्यकतानुसार किया जाये।

(8) अल्प आयु के छात्रों को जो कहानियाँ सुनाई जाएं, उनके प्रमुख वाक्यों को दुहराना चाहिए। ऐसा करने से छात्र कहानी में रुचि लेने लगते हैं।

(9) यथासम्भव कहानी को सजीव तथा प्रभावशाली ढंग से सुनाना जाये। कहानी कहने में अध्यापक को स्वाभाविकता का अवश्य ध्यान रखना चहिए।

(10) कहानी कहते समय छात्रों की अवस्था का भी ध्यान रखा जाये। जिस अवस्था के बालक हैं, उसी अवस्था के अनुकूल कहानी होनी चाहिये। अल्प आयु के छात्रों को बड़ी आयु के छात्रों की कहानी सुनाना पूर्णतया व्यर्थ है।

(11) कहानी सुनाते समय अध्यापक को चाहिये कि वह अधिक से अधिक कल्पना-शक्ति का प्रयोग करे। कहानी की घटनाओं का प्रभाव सम्पूर्ण छात्रों के मस्तिष्क पर खिंच जाना चाहिये।

(12) कहानी के बीच में प्रश्न भी किये जा सकते हैं। प्रश्न करने से कक्षा का वातावरण क्रियाशील हो जाता है।

(13) अध्यापक को अपनी ध्वनि का भी ध्यान रखना चाहिये। आवश्यकतानुसार उच्च स्वर का प्रयोग करना चाहिये। भावों के उतार-चढ़ाव के अनुसार स्वरों का उतार-चढ़ाव किया जाये। शुष्क स्वर में कहानी कहने से कक्षा में नीरसता आती है।

(14) कहानी कहने में नाटकीयता को भी अपनाना चाहिये। जहाँ जैसा भाव हो, वैसी ही मुख की आकृति बनायी जाये। करुण प्रसंग के समय स्वरों का भी करुणामय बनाया जाये। साथ ही अध्यापक कहानी सुनाते समय यह अनुभव करे कि मानो वह कहानी घर में सुना रहा हो।

(15) अन्त में हम यह कह सकते हैं कि कहानी सुनाने का ढंग ऐसा हो कि वह छात्रों के हृदय को स्पर्श कर सके। **पं० सीताराम चतुर्वेदी** के शब्दों में— "कहानी में ज्ञान की परिधि का विकास भले ही न हो, एक तथ्य भले ही न बताया जाये, किन्तु यदि मनुष्य के हृदय को, उनके भावों को कहानी मथ दे, तो समझ लो कि कहानी सार्थक हो गई, उसका उद्देश्य पूरा हो गया।"

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

18
मौखिक अभिव्यक्ति

मौखिक अभिव्यक्ति

मौखिक अभिव्यक्ति में व्यक्ति अथवा बालक अपने अन्तक़रण को एकत्रित भावों को दूसरे के समक्ष व्यक्त करता है। भाषाविदों का यह मानना है कि मौखिक प्रक्रिया के द्वारा भाषा को जल्दी सीखा जा सकता है। भाषा शिक्षण के लिये यह प्रत्यक्ष विधि है।

प्रो० रमन बिहारी के अनुसार— "व्यक्ति अपने हृदय के भावों को व्यक्त करने हेतु जिस ध्वन्यात्मक संकेत साधन का प्रयोग करता है उसे उसकी मौखिक अभिव्यक्ति कहते हैं। ये ध्वनि संकेत समाज द्वारा स्वीकृत होते हैं।"

मौखिक अभिव्यक्ति की आवश्यकता— बालक अथवा व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास करने के लिये मौखिक अभिव्यक्ति की अत्यन्त आवश्यकता है। वास्तव में बालक का सर्वांगीण विकास ही मौखिक अभिव्यक्त पर आधारित है। मौखिक अभिव्यक्ति की आवश्यकतायें निम्नलिखित हैं—

(1) मौखिक अभिव्यक्ति में वक्ता वकृत्व कला के द्वारा, हाव-भाव में उतार-चढ़ाव के द्वारा सभी कुछ प्रत्यक्ष रूप से कह जाता है।

(2) मौखिक अभिव्यक्ति को अनुकरण तथा अभ्यास के द्वारा सहायता प्रदान की जाती है।

(3) मौखिक अभिव्यक्ति सरलता तथा सुगमता से कार्य सम्पादित करती है।

(4) मौखिक अभिव्यक्ति में त्रुटियों का संशोधन उसी समय हो जाता है।

मौखिक अभिव्यक्ति के उद्देश्य—

(1) बालक अपने दैनिक जीवन में जो सुनते हैं, देखते हैं तथा पढ़ते हैं उसे शुद्ध एवं तर्कपूर्ण ढंग से अभिव्यक्त करने की क्षमता का विकास करना।

(2) बालक समाज के विभिन्न सदस्यों से शिष्टापूर्वक वार्तालाप कर सकें।

(3) बालकों में प्रसंग के अनुसार, मुहावरों, लोकोक्तियों, शब्दों एवं सूक्तियों के प्रयोग की क्षमता को उत्पन्न करना।

(4) बालकों में प्रश्नों के तत्काल उत्तर देने की क्षमता को उत्पन्न करना।

(5) बालकों की रुचियों, मनोवृत्तियों तथा विचारों को समझना।

(6) बालकों को इस योग्य बनाना कि अपने मन में उठे हुए प्रश्नों को शिक्षक तथा समाज के सम्मुख रखकर समाधान कर सकें।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

(7) बालकों में प्राप्त ज्ञान को प्रभावशाली ढंग से प्रकट करने की योग्यता को उत्पन्न करना।

(8) बालकों में पूछे गये प्रश्नों के शुद्ध एवं पूर्ण उत्तर देने की क्षमता को उत्पन्न करना।

(9) बालकों को धारा-प्रवाह बोलने का अभ्यास कराना।

(10) बालकों को इस योग्य बनाना कि वे अपने मन में उठी शंकाओं का समाधान बिना किसी झिझक के कर सकें।

(11) बालकों का उच्चारण शुद्ध करना।

(12) बालकों में क्षमता तथा स्वाभाविकता का विकास करना।

(13) बालकों में भाषा अध्ययन की योग्यता को उत्पन्न करना।

(14) बालकों को व्यावहारिक ज्ञान तथा व्यावहारिक पक्ष की विशेष शिक्षा प्रदान करना।

(15) बालकों के संकोच तथा झिझक को समाप्त करना।

मौखिक अभिव्यक्ति का महत्व—

(1) पूरे दिन जितने भी व्यक्ति हमारे सम्पर्क में आते हैं हम सबसे मौखिक भाषा के द्वारा ही वार्तालाप करते हैं। जो व्यक्ति वार्तालाप में कुशल नहीं हैं वे अपने विचारों को ठीक प्रकार से प्रकट नहीं कर पाते हैं।

(2) व्यावहारिक जीवन में सफलता पाने के लिये वार्तालाप में कुशलता प्राप्त करनी चाहिये। व्यापार तथा अन्य व्यवसायों में उन्हीं व्यक्तियों को सफलता प्राप्त होती है जो वार्तालाप के द्वारा दूसरों को प्रभावित करते हैं। किसी नौकरी अथवा साक्षात्कार में उन विद्यार्थियों को सफलता प्राप्त नहीं होती है जो सभी कुछ जानते हुये भी अपने भावों को व्यक्त नहीं कर पाते हैं।

(3) बालक को लिखाने-पढ़ाने से पहले मौखिक भाषा का अभ्यास कराना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि व्यक्ति ने पहले बोलना-चालना सीखा, उसके पश्चात् लिखना-पढ़ना। इसलिये यह आवश्यक है कि बालकों को पहले वार्तालाप में निपुण किया जाना चाहिये।

(4) बोल-चाल के द्वारा सीखी गयी भाषा अधिक देर तक मस्तिष्क में दृढ़ रहती है।

(5) बालक के व्यक्तित्व का विकास मौखिक भाषा के द्वारा ही होता है। कोई भी व्यक्ति अपने मधुर, स्पष्ट तथा प्रभावशाली शब्दों के द्वारा अन्य व्यक्तियों पर अपने व्यक्तित्व का प्रभाव डाल सकता है।

(6) **विद्वान लैम्बोर्न** के अनुसार— "मेरा निश्चित विचार है कि पाठशाला के जीवन में अन्तिम वर्ष तक लिखित कार्य की अपेक्षा मौखिक कार्य परम आवश्यक है।"

(7) यदि व्यक्ति को भाषण कला में निपुण होने से पहले वार्तालाप में दक्षता प्राप्त है तो वह भाषण कला द्वारा जनसमुदाय को प्रभावित करता है।

(8) वार्तालाप के द्वारा विद्यार्थी आत्म-अभिव्यक्ति में दक्षता प्राप्त करता है।

(9) **डासन** के अनुसार— "मौखिक कार्य भाषा की नींव तैयार कर देता है क्योंकि मौखिक भाषा तथा लिखित भाषा के प्रमुख अंग समान होते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि मौखिक अभिव्यक्ति भाषा रूपी व्यक्ति की एक सुदृढ़ करता है।"

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

(10) मौखिक भाषा में भावों को ग्रहण कर व्यावहारिक रूप देने की क्षमता प्राप्त हो जाती है।

मौखिक अभिव्यक्ति के विकास के लिये साधन— विद्यालय तथा शिक्षक बालक की मौखिक अभिव्यक्ति का विकास करने के लिये अनेक प्रकार के साधन प्रयोग में लाता है।

(1) कवि सम्मेलन, (2) पाठ्य सहगामी क्रियायें, (3) अन्त्याक्षरी प्रतियोगिता, (4) भाषण प्रतियोगिता, (5) पाठ्येत्तर क्रियायें।

इनके अतिरिक्त साधन निम्नलिखित हैं—

(1) विशेष अवसर पर विद्यार्थियों को अवसर प्रदान करना।

(2) विद्यार्थियो को स्वतन्त्र रूप से कक्षा में प्रश्न पूछने की स्वतन्त्रता प्रदान करना।

(3) विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करना।

(4) समय सारणी के अनुसार मौखिक कार्य की व्यवस्था करना।

(5) विद्यार्थियों की रुचि के अनुसार मौखिक कार्य की व्यवस्था करना।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

19

द्रुत पाठ (व्यापक अध्ययन)

द्रुत पाठ (व्यापक अध्ययन)

मौखिक वाचन में शक्ति का व्यय होने के साथ-साथ समय का भी दुरुपयोग होता है। शिक्षक का कर्त्तव्य है कि वह विद्यार्थियों को द्रुत वाचन की कला में निपुण करने का प्रयास करे।

द्रुत पाठ के उद्देश्य–

(1) मौन वाचन का अभ्यास कराना तथा विद्यार्थियों में स्वाध्याय के प्रति रुचि उत्पन्न करना।

(2) विद्यार्थियों में ऐसी क्षमता उत्पन्न करना कि वे द्रुत गति से पुस्तक पढ़ सकें।

(3) द्रुत गति के अतिरिक्त विद्यार्थी पाठ्य सामग्री को भी सरलतापूर्वक पढ़ सकें।

(4) विद्यार्थियों में ऐसी क्षमता उत्पन्न करना कि धीरे-धीरे भाषा पर अधिकार प्राप्त कर लें।

(5) मनोरंजन के साथ-साथ विद्यार्थियों का बौद्धिक विकास करना।

(6) विद्यार्थियों की बोध, कल्पना, समीक्षा तथा स्मरण शक्ति का विकास करना।

द्रुत पाठ के सोपान–

(1) प्रस्तावना— शिक्षक प्रस्तावनात्मक वार्तालाप के द्वारा विद्यार्थियों में किसी कहानी अथवा घटना के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न करेगा।

(2) मौन वाचन— प्रस्तावना के समाप्त होने के पश्चात् विद्यार्थियों को एक अनुच्छेद मौन वाचन के लिये दिया जायेगा। विद्यार्थी शान्त होकर निर्धारित अनुच्छेद का मौन पाठ करेंगे।

(3) बोध प्रश्न— जब सभी विद्यार्थी मौन पाठ कर लेंगे तब शिक्षक पाठ विषय से सम्बन्धित प्रश्न पूछेगा।

(4) कठिनाइयों का समाधान— यदि विद्यार्थियों को अनुच्छेद में कोई कठिनाई अनुभव होती है तो उसका वाचन शिक्षक स्वयं करेगा तथा कठिनाइयों का समाधान करेगा।

(5) पुनरावृत्ति— सम्पूर्ण घटना अथवा कहानी का अध्ययन करने के बाद विद्यार्थियों से दो-तीन प्रश्न पूछे जायेंगे जिससे यह पता लग सके कि कहानी को उन्होंने किस सीमा तक समझ लिया है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

द्रुत पाठ तथा गद्य पाठ में अन्तर

गद्य शिक्षण पाठ के शिक्षण में व्यवस्था पर बहुत बल दिया जाता है। और अर्थ स्पष्ट करने के लिये भी कुछ समय निश्चित रहता है, जबकि द्रुत पाठ का अध्ययन विस्तृत होता है। इसमें व्याख्या तथा अर्थ पर अधिक बल नहीं दिया जाता है।

द्रुत पाठ और गद्य पाठ के शिक्षण में अन्तर–

(1) गद्य पाठ का अन्य उद्देश्य छात्रों के शब्दोच्चारणों को शुद्ध करना होता है। द्रुत पाठ में छात्रों को अधिक से अधिक ज्ञान को आत्मसात करने का प्रयास किया जाता है।

(2) गद्य शिक्षण का प्रमुख उद्देश्य छात्रों के शब्द-भण्डार एवं सूक्ति-भण्डारों की वृद्धि करना होता है, जबकि द्रुत वाचन का उद्देश्य अर्जित शब्द-भण्डार का प्रयोग सिखाना है।

(3) गद्य पाठ में छात्रों को आदर्श वाचन करने पर बल दिया जाता है, जबकि द्रुत पाठ में शीघ्र वाचन करने पर।

(4) गद्य पाठ में सस्वर वाचन पर विशेष बल दिया जाता है, जबकि इसके विपरीत द्रुत पाठ में अर्थ-बोध पर ही ध्यान दिया जाता है।

(5) गद्य का शिक्षण करते समय अध्यापक व्याकरण के नियमों का भी यथास्थान उल्लेख करता है, किन्तु द्रुत पाठ में व्याकरण के नियमों में ध्यान नहीं दिया जाता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

20

खेल द्वारा भाषा शिक्षण अथवा हिन्दी भाषा शिक्षण में खेल विधि

शिक्षण में खेलों को सर्वप्रथम महत्व कुक महोदय ने दिया। उनका मत था कि खेल बालकों की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। अतएव खेल द्वारा प्रदान किया गया ज्ञान बालक के लिये सरल तथा रोचक है। खेल बच्चों को आनन्द देने वाली क्रिया है। बच्चों को खेल में आनन्द आता है। वे खेल से थकते नहीं हैं। वे प्रत्येक समय खेलते रहना चाहते हैं। अतएव जिन क्रियाओं के करने में आनन्द का अनुभव होता है उन्हें खेल में रखा जा सकता है। कठिन से कठिन थका देने वाले कार्य भी खेल के माध्यम से सरल एवं रोचक दिखाई देने लगते हैं।

कुक महोदय का मत था कि भाषा साहित्य के शिक्षण में खेल की भावना रखकर नाटक तथा संवाद कराये जायें, तो छात्र आनन्द और रुचि में बहुत सी बातें सीख जाते हैं। शिक्षण में खेल द्वारा शिक्षा प्रदान करना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि इस सिद्धान्त के अन्दर 'क्रिया द्वारा सीखने' का सिद्धान्त भी छिपा हुआ है। कुक महोदय के अनुसार, निपुणता तथा सीखना केवल शिक्षण तथा सुनने से ही नहीं आते, वरन् क्रिया और अनुभव से आते हैं।

खेल की परिभाषा—

विभिन्न शिक्षाविदों ने खेल की परिभाषा विभिन्न प्रकार से दी है जो निम्नलिखित हैं—

1. **विद्वान स्टर्न** के अनुसार, "खेल स्वेच्छा से आत्म-संयम की एक क्रिया है।"

2. **मैकडूगल** के शब्दों में, "खेल एक प्रकार से निर्देश या अनुकरण की प्रवृत्ति है।"

3. **ड्यूलिक** ने खेल की परिभाषा इन शब्दों में की है— "जो कार्य हम अपनी इच्छा से स्वतन्त्रतपूर्वक वातावरण में करें, वही खेल है।"

4. **टी०वी० नन** के विचारनुसार, "खेल का आधार स्वेच्छा है। उसका प्रारम्भ हम स्वेचछा से करते हैं तथा अन्त भी हम स्वेच्छा से करते हैं।"

5. **विद्वान ड्रेवर** के अनुसार, "खेल में क्रिया की प्रमुखता है और उसकी उपयोगिता क्रिया में ही निहित है।"

6. **एक अन्य लेखक** के शब्दों में, "खेल बालक की रचनात्मक क्रियाशीलता का प्रकाशन कहा जा सकता है।"

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कार्य और खेल में अंतर— अब यहाँ यह देखना है कि खेल और कार्य में क्या अन्तर है, कौन-सी क्रिया खेल हो सकती है और कौन-सी क्रिया खेल नहीं। दोनों में अन्तर निम्न प्रकार है—

1. कोई भी खेल अपनी इच्छा से खेला जाता है। खेल खेलने के लिये कोई किसी को बाध्य नहीं करता। इच्छा के अनुसार खेल चलता रहता है, परन्तु इसके विपरीत प्रत्येक कार्य बाध्य होकर करना पड़ता है, उसमें इच्छा का प्रश्न ही नहीं उठता।

2. खेल का उद्देश्य खेल के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता, जबकि किसी कार्य को करते समय उसका उद्देश्य केवल कार्य न होकर कुछ और भी होता है।

3. कार्य नियम समय में ही आरम्भ होकर नियत समय में ही समाप्त हो जाता है, खेल में इस प्रकार का कोई बन्धन नहीं होता।

4. खेल आनन्द प्रदान करने वाला होता है, जबकि कार्य भारस्वरूप ज्ञात होता है।

5. खेल के अन्दर कल्पना का अंश पर्याप्त सीमा तक होता है। खेल-खेल में बालक कभी राजा बनते हैं तो कभी दरोगा या सिपाही। कार्य में कल्पना का अभाव होता है तथा कभी-कभी वास्तविकताओं का सामना भी करना पड़ता है।

6. खेल के अन्दर बालक अधिक क्रियाशील रहते हैं, कार्य के अन्दर नहीं।

अतएव उपरोक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि खेल और कार्य में भावना और दृष्टिकोण का अन्तर है। जो कार्य स्वेच्छा से स्वतन्त्र वातावरण में किया जाये, वही कार्य खेल हो जाता है।

खेल तथा शिक्षण— शिक्षण की क्रिया को सरल तथा रोचक बनाने के लिये खेल का सहारा लिया जाता है। कोरा शिक्षण बालकों के लिए नीरस बन जाता है। वे कुछ भी सीखते हैं, वह अत्यन्त कठिनता से सीखते हैं। नीरसता को दूर करने के लिये यह आवश्यक है कि शिक्षा इस ढंग से प्रदान की जाये कि बालक खेल समझें तथा बिना भार का अनुभव लिए ज्ञान प्राप्त कर सकें। मनोवैज्ञानिक शिक्षाविदों ने खेल को शिक्षण की प्रणालियों में अपनाया है और किसी सीमा तक उन्हें सफलता भी प्राप्त हुई। किण्डरगार्टन, मॉन्टेसरी, डाल्टन-प्रणाली आदि किसी न किसी रूप में खेल के ऊपर ही आधारित हैं।

खेल के सिद्धान्त—

(1) अतिरिक्त शक्ति का सिद्धान्त— इस सिद्धान्त के प्रतिपादक विद्वान शिलर थे। शिलर के अनुसार, बालक के अन्दर अतिरिक्त शक्ति होती है। कुछ शक्ति का व्यय अन्य कार्यों में किया जाता है तथा शेष अतिरिक्त शक्ति का व्यय तब होता है, जबकि वह खेल खेलता है। दूसरे शब्दों में, खेल द्वारा बालक की अतिरिक्त शक्ति निकल जाती है, परन्तु कुछ विद्वान इस सिद्धान्त का विरोध करते हैं। उनके अनुसार यह सिद्धान्त भ्रमपूर्ण है, क्योंकि बालक पाठशाला से थके हुए आते हैं, इस पर भी वह खेल खेलते हैं।

(2) खोई शक्ति को पुनः प्राप्त करने का सिद्धान्त— यह सिद्धान्त उपर्युक्त सिद्धान्त का उल्टा है। इस सिद्धान्त के अनुसार खेलने में अतिरिक्त शक्ति का व्यय नहीं होता है, वरन् खोई हुई शक्ति की पुनः प्राप्ति होती है। बालक शक्ति से भरे होने पर ही नहीं खेलता, वरन् उस समय भी खेलता है, जबकि वह थका हुआ होता है।

(3) भावी जीवन की तैयारी का सिद्धान्त— कार्ल ग्रूस के अनुसार, खेल का उद्देश्य

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भावी जीवन की तैयारी करना है। उन्होंने पशुओं के विभिन्न खेलों का परीक्षण किया और वे इस परिणाम पर पहुँचे कि खेलों द्वारा भावी जीवन की तैयारी की जाती है। गाय का बच्चा पेड़-पौधों से खेलता है। छोटी-छोटी बालिकाएँ गुड्डे और गुड़ियों से खेलती है। इस प्रकार लड़के सिपाही, दरोगा अथवा जज बनने का अभिनय करते हैं।

(4) **परिष्कार का सिद्धान्त**— इस सिद्धान्त के अनुसार, बालक के अन्दर अनेक प्रकार की दुष्प्रवृत्तियाँ होती हैं। यदि उनका निराकरण या परिष्कार नहीं किया जाता, तो उसके भयंकर परिणाम निकल सकते हैं। खेल के द्वारा बालक अपने अन्दर की दुष्प्रवृत्तियों को दूर कर लेता है। टी० पी० नन के अनुसार, मानव अपनी आदत, बुराई तथा निर्दयता से छुटकारा नहीं पा सकता लेकिन खेल के माध्यम से वह इनका परिष्कार कर लेता है। अतः दूसरे शब्दों में, खेल दुष्प्रवृत्तियों का परिष्कार करने का उत्तम साधन है।

(5) **पुनरावृत्ति का सिद्धान्त**— इस सिद्धान्त के प्रतिपादक स्टेनले हॉल हैं। उनके अनुसार, खेल के माध्यम से बालक जातीत जीवन के अनुभवों की पुनरावृत्ति करते हैं जिससे प्रेरित होकर उनके पूर्वजों ने अपना विकास किया था। विद्वान **रॉस** लिखते हैं— "छिपाना व खोजना, पीछा करना, आखेट करना व मछली मारना, पत्थर फेंकना, सब मानव-जाति के बाल्यकाल के आवश्यक स्मारक हैं।" लेकिन अब प्रश्न यह उठता है कि बालक अपने पूर्वजों की क्रियाओं को किस प्रकार दुहराते हैं। इस प्रश्न का उत्तर स्टेनले हॉल अपने 'परिष्कार के सिद्धान्त' में देते हैं।

खेल विधि एवं अध्यापक— अध्यापक को शिक्षण में खेल विधि का प्रयोग आवश्यकतानुसार अवश्य करना चाहिये। जब बालक किसी पाठ को समझने में उदासीनता दिखा रहे हों तब अध्यापक को खेल विधि का प्रयोग अवश्यक करना चाहिये। कठिन विषयों का सरल रूप से शिक्षण प्रदान करने के लिये यह विधि सबसे उत्तम है। प्राथमिक स्तर पर तो यथा सम्भव खेल विधि का ही प्रयोग करना चाहिये। अध्यापक को चाहिए की बच्चों में खेल के प्रति उत्साह उत्पन्न करें एवं बच्चों में खेल के प्रति प्रेम की भावना जागृत करें। अध्यापक को छात्रों के बीच खेल में भाग लेना चाहिये निष्क्रिय दर्शक ही नहीं बने रहना चाहिये। खेल विधि का प्रयोग करते समय अध्यापक को निम्नलिखित बातों का अवश्य ध्यान रखना चाहिये—

1. अध्यापक को खेल में स्वयं भी सक्रिय रहना चाहिये।
2. खेल बालकों की रुचि के अनुरूप हो।
3. इस प्रणाली का प्रयोग करते समय मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों को भी न भूला जाये। बाल-रुचि, मानसिक विभिन्नताएँ तथा शारीरिक क्षमता आदि का भी ध्यान रखा जाए।
4. पाठ्य-सामग्री की भी अवहेलना न की जाये। खेल-विधि में केवल खेल, खेल ही न हों, वरन् पाठ्य-सामग्री का भी ध्यान रखा जाये। खेलों का संगठन पाठ्य-सामग्री के आधार पर ही किया जाये।

खेल-विधि के लाभ

(1) **इन्द्रियों के लाभ**— खेल बालकों की इन्द्रियों को सुदृढ़ तथा लचकदार बनाते हैं। बालक के इधर-उधर दौड़ने-भागने से माँसपेशियाँ दृढ़ होती हैं। क्रिकेट तथा हॉकी जैसे खेल बालकों की आँखों तथा हाथों का सन्तुलन ठीक कर देते हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

(2) **ज्ञान का विस्तार**— खेल द्वारा बालकों के ज्ञान का विस्तार होता है। परस्पर

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वाद-विवाद, विचार-विमर्श तथा अन्य प्रतियोगिताओं द्वारा बालक अनेक बातें सीखते हैं। नाटक तथा कविता-पाठ भी बालकों के ज्ञान का विस्तार करते हैं। कल्पना-शक्ति तथा तर्क-शक्ति का विस्तार भी खेल विधि के अपनाने से हो सकता है।

(3) मनोवैज्ञानिक प्रणाली— यह प्रणाली अत्यन्त मनोवैज्ञानिक है। इसमें बालक अपनी रुचि, योजना, क्षमता तथा स्वतन्त्रता के अनुसार कार्य करते हैं।

(4) स्वतन्त्रता का महत्व— शिक्षण में इस विधि को अपनाने से बालकों को हर प्रकार की स्वतन्त्रता रहती है। वे बिना किसी बाधा के बन्धक-रहित कार्य करते हैं।

(5) रुचि का विकास— खेल विधि के द्वारा कठिन विषय भी सरल हो जाते हैं। खेल द्वारा बालकों को कठिन विषय भी सरल लगते हैं, जिससे और अधिक रुचि के साथ पाठ में ध्यान लगाते हैं। प्रत्यक्ष पाठ में बालक पाठ के प्रति नीरसता प्रकट करते हैं।

(6) आत्म-विकास की भावना का विकास— इस विधि के अपनाने से अध्यापक का प्रभुत्व बालक से हट जाता है। परिणामस्वरूप, शिक्षा और ज्ञान प्राप्त करने का उत्तरदायित्व बालक के ऊपर आ जाता है, जिससे बालक में उत्तरदायित्व की भावना का विकास होता है। बालक अपने कार्यों को स्वयं करने का प्रयत्न करते हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

21

भाषा शिक्षण में सहायक सामग्री

सहायक सामग्री का अर्थ

विषय को स्पष्ट करने तथा उसे आकर्षक एवं रुचिकर बनाने हेतु, जटिल विषय को सरल तथा बोधगम्य बनाने हेतु जिस वस्तु का भी उपयोग किया जाता है वह सहायक सामग्री कहलाती है।

शिक्षण को प्रभावपूर्ण बनाने के लिये केवल विधियों एवं प्रविधियों का प्रयोग ही पर्याप्त नहीं है, वरन् इसकी उपयुक्त सहायक सामग्रियों का प्रयोग भी आवश्यक है।

एम०पी० मफात के अनुसार— "सहायक-सामग्री अनुभव प्रदान करती है, साथ ही शब्द एवं वस्तु में सम्बन्ध स्थापित करती है। यह छात्र के समय में बचत करती है, सरल एवं विश्वसनीयता सूचना प्रदान करती है, सौंदर्यात्मक ज्ञान का विकास एवं अभिवृद्धि करती है, मनमोहक मनोरंजन प्रदान करती है, जटिल प्रदत्तों को सरलतम दृष्टिकोण प्रदान करती है, कल्पना को उत्तेजित करती है तथा छात्रों की निरीक्षण-शक्ति का विकास करती है।"

सहायक-सामग्री की आवश्यकता

शिक्षण-प्रक्रिया में सहायक साधनों की आवश्यकता निम्न कारणों से है—

1. इनकी सहायता से अमूर्त अवधारणाओं को मूर्त रूप प्रदान किया जा सकता है।
2. इनसे व्यक्तिगत विभिन्नताओं की सन्तुष्टि होती है।
3. इनकी सहायता से शैक्षिक क्रियाओं को अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है।
4. इनसे कक्षा-समय की बचत होती है।
5. प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से उत्तम शिक्षण प्रदान किया जा सकता है।
6. इनसे छात्रों की कल्पना-शक्ति का विकास किया जा सकता है।
7. छात्र सीखी हुई बातों को देर तक स्मरण रख सकते हैं।
8. इनकी सहायता से छात्र रुचिपूर्वक एवं उत्साहपूर्वक सीखते हैं।
9. इनकी सहायता से कक्षा में छात्रों के सीखने में एकरूपता आ जाती है।
10. इनकी सहायता से छात्र ज्ञान के सैद्धान्तिक पक्ष में ही नहीं वरन् व्यावहारिक पक्ष से भी अवगत हो जाते हैं।

ई०बी० वेस्ले के शब्दो में— "दृश्य-श्रव्य साधन अनुभव प्रदान करते हैं। उनमें प्रयोग से शब्दों व वस्तुओं का सम्बन्ध सरलतापूर्वक जुड़ जाता है, बालकों के समय की बचत होती है तथा उनकी सहायता से सरल परन्तु सही-सही बातों का पता चलता है। उनसे जहाँ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बालकों का मनोरंजन होता है, वहाँ वे विभिन्न वस्तुओं की प्रशंसा करना भी सीख जाते हैं। वे जटिल बातों को भी सरल ढंग से पेश करते हैं, बालकों की कल्पना-शक्ति को प्रेरित करते हैं और उनकी निरीक्षण शक्ति को विकसित करते हैं। सम्भव है, ऐसी सहायक सामग्री की व्यवस्था की व्याख्या तो करनी पड़े पर उनके लिये अनुवादक की कोई आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि उनमें प्रकृति, रंग, स्थिति तथा गति सम्बन्धी सर्वत्र पाई-जाने वाली भाषा प्रयुक्त होती है। इस प्रकार के सीखने के लिये राजमार्ग का काम दे सकती है।"

सहायक सामग्री का महत्व—

भाषा-शिक्षण में सहायक सामग्री का अपना विशेष महत्व है। सहायक सामग्री के माध्यम से छात्रों का ध्यान पाठ्य-विषय पर सरलता से केन्द्रित किया जा सकता है। इनमें प्रयोग द्वारा अध्यापक पाठ को सजीव तथा सरस बना देता है। छात्र कक्षा में श्रोता मात्र न रहकर सक्रियता से विषय को समझ जाते हैं।

सहायक सामग्री के महत्व को निम्न प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है—

1. सहायक-सामग्री के प्रयोग के द्वारा जटिल व अरुचिकर विषय को रोचक, सरल व स्पष्ट बनाया जा सकता है।

2. इनकी सहायता से छात्रों के ध्यान को एक बिन्दु पर केन्द्रित किया जा सकता है।

3. इनकी सहायता से शिक्षक एक साथ अनेक छात्रों की समस्याओं का समाधान कर सकता है।

4. इनके माध्यम से छात्रों की शब्दावली में उन्नति होती है।

5. इनके द्वारा छोटी आयु के बालकों के ज्ञान को उन्नत बनाया जा सकता है।

6. इनके प्रयोग से छात्रों को विभिन्न प्रकार की क्रियाओं को करने के अवसर प्राप्त होते हैं, इससे वे कठिन बातों को भी सरलतापूर्वक सीख लेते हैं।

7. ये छात्रों की जिज्ञासा में वृद्धि करती हैं जिससे सीखने में प्रोत्साहन मिलता है।

8. इनके द्वारा छात्रों में प्रत्यक्ष अनुभव का प्रतिनिधित्व सम्भव होता है।

9. इनकी सहायता से प्राप्त ज्ञान स्थायी व निश्चित बन जाता है।

10. विशेष रूप से मन्द बुद्धि बालों को इनके माध्यम से सीखने में बहुत सहायता मिलती है।

सहायक सामग्री को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—

1. मौखिक सामग्री
2. दृश्य-श्रव्य सामग्री।

(1) मौखिक साधन— इसके अन्तर्गत (अ) मौखिक उदाहरण
(ब) प्रश्नोत्तर आते हैं।

(अ) मौखिक उदाहरण— **सिंह तथा शास्त्री** के अनुसार— "मौखिक उदाहरण उस समय प्रस्तुत किये जाते हैं जब किसी विवरण, वर्णन एवं व्याख्या को अधिक स्पष्ट तथा प्रभावशाली रूप देना होता है। जब शिक्षक यह अनुभव करता है कि उसके मस्तिष्क में किसी वस्तु अथवा घटना का जैसा चित्र है वैसा ही विद्यार्थी के मस्तिष्क पर नहीं उतर रहा है, तब वह मौखिक उदाहरणों का सहारा लेता है।" मौखिक उदाहरणों में निम्नलिखित को प्रयोग में लाया जाता है—

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

(i) तुलना— तुलना का प्रयोग इतिहास, भूगोल, साहित्य एवं भाषा में किया जाता है। साहित्य में जैसे सूर तथा कबीर की शैली की तुलना की जाती है। शिक्षक को तुलना का प्रयोग मुक्तहस्त से करना चाहिये। तुलना से विद्यार्थियों की मानसिक शक्ति विकसित होती है और विषय भली प्रकार से समझ में आ जाता है।

(ii) उपमा— जब शिक्षक किसी वस्तु अथवा क्रिया के गुणों का सजीव वर्णन विद्यार्थियों के सामने करना चाहता है, इसके लिये वह उस वस्तु अथवा क्रिया की तुलना किसी अन्य वस्तु से करता है तो उसे उपमा कहते हैं। शिक्षक को इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिये कि तुलना उसी बिन्दु से की जाये जिसे विद्यार्थी भली प्रकार जानते और समझते हों।

(iii) उत्प्रेक्षा— उत्प्रेक्षा का अर्थ उपमेय में उपमान की कल्पना करने से है। उत्प्रेक्षा का प्रयोग मुख्य रूप से वर्णनात्मक पाठों में ही किया जाता है। जैसे विद्यार्थियों के सम्मुख रानी लक्ष्मीबाई की वीरता का वर्णन करना है तो ऐसी स्थिति में शिक्षक को यह उदाहरण देना चाहिये कि— रानी लक्ष्मीबाई अपने दुश्मनों पर इस प्रकार टूट पड़ती थी तो ऐसा लगता था कि जैसे कि सिंह हिरन पर टूट रहा है।

(iv) लोकोक्तियाँ— लोकोक्तियों द्वारा किसी अस्पष्ट स्थल को स्पष्ट किया जा सकता है। इसका प्रयोग शिक्षक को प्रसंगवश करना चाहिये।

(ब) प्रश्नोत्तर— रायबर्न के अनुसार— "शिक्षण में प्रश्नों का महत्व सबसे अधिक होता है। यह कोई अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है कि किसी विशेष पाठ अथवा सामान्य शिक्षण में शिक्षक की सफलता उसके भली-भाँति प्रश्न पूछने की योग्यता पर निर्भर करती है। प्रश्न विद्यार्थियों को उत्प्रेरित करते हैं।" भाषा शिक्षण के आधार पर प्रश्नों को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(i) प्रस्तावनात्मक प्रश्न— प्रस्तावनात्मक प्रश्न शिक्षक पाठ के आरम्भ में करता है। इस प्रकार के प्रश्नों का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान को ज्ञात करना होता है। पूर्व-ज्ञान को ज्ञात कर उनको नवीन ज्ञान से सम्बन्धित किया जाता है।

(ii) विश्लेषणात्मक अथवा विचारात्मक प्रश्न— जो प्रश्न विद्यार्थियों के मस्तिष्क को विचारशील अथवा क्रियात्मक रखने की दृष्टि से पूछे जाते हैं उन्हें विचारात्मक प्रश्न कहते हैं। इन प्रश्नों का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों के मस्तिष्क को क्रियाशील तथा विचारयुक्त बनाना है।

(iii) पुनरावृत्ति प्रश्न— ऐसे प्रश्न पाठ की समाप्ति पर पूछे जाते हैं। यदि विद्यार्थी इन प्रश्नों का उत्तर ठीक-ठीक दे दें तो यह शिक्षण की सफलता का प्रतीक है। इन प्रश्नों का मुख्य उद्देश्य पाठ के प्रमुख तथ्यों की पुनरावृत्ति करना है जिससे कि विद्यार्थियों के मस्तिष्क में पाठ के मुख्य तथ्य स्थिर रह सकें।

(iv) बोधात्मक प्रश्न— ऐसे प्रश्न यह ज्ञात करने के लिये पूछे जाते हैं कि विद्यार्थी ने शिक्षक द्वारा प्रदान की गई शिक्षा को अच्छी प्रकार से आत्मसात किया है अथवा नहीं।

(2) दृश्य श्रव्य साधन— इसे हम दो भागों में बांट सकते हैं—

(i) दृश्य उपकरण।

(ii) दृश्य श्रव्य उपकरण।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

(i) दृश्य उपकरण—

1. श्यामपट— इसका प्रयोग करते रहने से विद्यार्थियों का ध्यान विषय की ओर सरलतापूर्वक केन्द्रित हो जाता है। शिक्षक श्यामपट पर पाठ से सम्बन्धित बातों को लिखता है इसलिये विद्यार्थियों का ध्यान श्यामपट की ओर ही केन्द्रित रहता है। मौखिक शिक्षण में शिक्षक को बोलने के साथ-साथ महत्वपूर्ण अथवा आवश्यक तथ्यों को श्यापट पर लिखना चाहिये, इससे विद्यार्थियों को चक्षु इन्द्रियों तथा श्रवण-इन्द्रियों का प्रयोग करने का अवसर प्राप्त हो सकेगा। श्यापट के महत्व पर प्रकाश डालते हुए पं० सीताराम चतुर्वेदी लिखते हैं— "जिस प्रकार चित्रकार के लिये तुलिका और फलक वांछनीय है, ठीक उसी प्रकार अथवा उससे भी कुछ अधिक अध्यापक के लिये श्यामपट तथा खड़िया के टुकड़े का महत्व है। वे दोनों वस्तुएं सफल अध्यापक की सतत् संगिनी हैं।"

श्यामपट का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इसका प्रयोग करते रहने से बालकों का ध्यान पाठ्य विषय की ओर सरलता से लग जाता है। अध्यापक श्यामपट पर पाठ से सम्बन्धित बातें लखता है, अतः छात्रों का ध्यान उसी की ओर लगा रहता है। दूसरे, मौखिक शिक्षण में यदि अध्यापक बोलने के साथ-साथ आवश्यक या महत्वपूर्ण बातों को श्यामपट पर लिखता जाये, तो बालकों को श्रवणेन्द्रियों और चक्षु-इन्द्रियों दोनों का प्रयोग करने का अवसर प्राप्त हो सकेगा।

कठिन शब्दों की व्याख्या श्यामपट पर ही सरलता से की जा सकती है। श्यापट पर अध्यापक सुन्दर-सुन्दर लिखकर छात्रों के सामने सुलेख का आदर्श रख सकते हैं। समय की बचत के लिए लपेट श्यामपट (रौलर बोर्ड) का प्रयोग किया जा सकता है।

2. वास्तविक पदार्थ— वास्तविक पदार्थों का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इनके देखने से छात्रों को प्रत्यक्ष अनुभव मिलता है। वे प्रत्येक वस्तु को देखकर स्थायी ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। भाषा की पाठ्य-पुस्तकों में विभिन्न विषयों से सम्बन्धित पाठ होते हैं, इसलिये विद्यार्थियों को पाठ से सम्बन्धित वास्तविक पदार्थ अवश्य दिखाये जायें।

3. चित्र— भाषा शिक्षण में चित्रों का बड़ा महत्व है। प्रत्येक पाठ से सम्बन्धित चित्रों का प्रस्तुतीकरण विद्यार्थियों के सामने अवश्य किया जाना चाहिये। जंगल, नदियों, पर्वतों तथा पशु-पक्षियों को देखकर छोटे बालक बहुत प्रसन्न होते हैं। किसी कहानी को सुनाते समय चित्रों का प्रयोग बहुत ही रोचक होता है। चित्रों के माध्यम से विद्यार्थियों की रचना करायी जा सकती है। चित्रों का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इससे विद्यार्थियों में निरीक्षण की भावना का विकास होता है तथा विश्लेषण करने की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है।

4. जादू की लालटेन— जादू की लालटेन में स्लाइड का प्रयोग किया जाता है। विभिन्न क्रियाओं, भवनों, दृश्यों अथवा योजनाओं के स्लाइड्स तैयार करते हैं तथा आवश्यकता के अनुसार विद्यार्थियों के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है। स्लाइड्स दिखाकर विद्यार्थी को निबन्ध लिखने के लिये उत्साहित किया जाता है।

5. मानचित्र— भाषा की पाठ्य-पुस्तकों में ऐतिहासिक, भौगोलिक, तथा यात्रा से सम्बन्धित पाठ होते हैं। ऐसे पाठों को रोचक तथा प्रभावशाली बनाने हेतु ऐतिहासिक, भौगोलिक मानचित्रों का प्रयोग किया जाता है। मानचित्रों के द्वारा विषय सरल तथा स्पष्ट हो जाता है।

6. चार्ट— इसका प्रयोग हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त परिचय और कालविभाजन का प्रदर्शन करने के लिये विशेष रूप से किया जाता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

7. मैजिक लैन्टर्न— इसके अन्दर स्लाइड्स का प्रयोग किया जाता है। विभिन्न दृश्यों, भवनों, योजनाओं तथा क्रियाओं के स्लाइड्स तैयार किये जाते हैं। तथा उनको आवश्यकतानुसार छात्रों के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। गाँव आदि के स्लाइड्स दिखाकर छात्रों को निबन्ध लिखने के लिये उत्साहित किया जा सकता है।

8. चित्र विस्तारक— इस यन्त्र के माध्यम से कोई चित्र या मानचित्र बड़े आकार में दिखाया जा सकता है। बड़े आकार के चित्र खरीदना कठिन कार्य है। इस कारण छोटे-छोटे चित्र खरीदकर रखे जा सकते हैं और इस यन्त्र के माध्यम से विस्तृत करके दिखाया जा सकता है।

(ii) दृश्य-श्रव्य उपकरण— इसे दो भागों में बाँट सकते हैं—

(क) श्रव्यात्मक उपकरण।

(ख) दृश्यात्मक उपकरण।

(क) श्रव्य उपकरण—

(1) रेडियो— शिक्षा के क्षेत्र में रेडियो का प्रयोग अत्यन्त आकर्षक हो सकता है।

आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों से विद्यार्थियों के लिये विभिन्न शिक्षाप्रद कार्यक्रमों का प्रसारण होता है। समय-समय पर विद्यार्थियों के लिये उपयोगी कार्यक्रम प्रसारित किये जाते हैं, जिनमें वाद-वाद और नाटक प्रतियोगिता को भी प्रोत्साहित किया जाता है। देश-विदेश के विद्वानों के महत्वपूर्ण भाषय़ण भी रेडियो पर प्रसारित होते रहते हैं। रेडियो के द्वारा विभिन्न वाक्यों का प्रयोग तथा उच्चारण आदि के अभ्यास का प्रसारण किया जाता है। आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों से संगीत शिक्षा का कार्यक्रम भी प्रसारित किया जाता है। आजकल रेडियो द्वारा प्रौढ़ शिक्षा तथा स्त्री शिक्षा का प्रसार किया जा रहा है।

(2) ग्रामोफोन— यह केवल मनोरंजन का साधन ही नहीं है बल्कि इनके द्वारा शिक्षण कार्यक्रम को रोचक तथा प्रभावशाली बनाया जा सकता है। उसमें अधिक खर्च भी नहीं होता है। इसलिये इसे सभी विद्यालय सरलतापूर्वक खरीद सकते हैं। इसके द्वारा विद्यार्थियों को सुन्दर कविताओं, पद्यांशों एवं गीतों को सुनकर उनका ध्यान साहित्य की ओर केन्द्रित किया जा सकता है। विद्वानों के उपदेशों तथा भाषणों के रिकार्डों को सुनकर विद्यार्थियों को नौतिक शिक्षा प्रदान की जा सकती है। इसमें कहानियों तथा नाटकों के रिकार्डों के सुनाकर कम उम्र के विद्यार्थियों के उच्चारण से सम्बन्धित दोषों को दूर किया जा सकता है।

(3) टेप रिकार्डर— इसमें भाषा अथवा किसी भी कहानी चल रही हो तो उनकी ध्वनि टेप में रिकार्ड हो जाती है। टेप की हुई आवाज को कभी भी सुना जा सकता है। भाषा शिक्षण में इसका प्रयोग बहुत ही लाभदायक है। इसके द्वारा उच्चारण सम्बन्धी दोष शीघ्रता से दूर किये जा सकते हैं। महत्वपूर्ण भाषणों को टेप करके रखा जा सकता है तथा आवश्यकतानुसार विद्यार्थियों को कभी भी सुनाया जा सकता है।

(ख) दृश्यात्मक उपकरण—

(1) सिनेमा— सिनेमा शिक्षण का अमूल्य साधन है। इसके द्वारा पाठ को अधिक रोचक तथा स्पष्ट बनाया जा सकता है। इसके द्वारा विद्यार्थियों की कल्पना शक्ति का विकास किया जा सकता है तथा विद्यार्थियों की निरीक्षण शक्ति का विकास किया जा सकता है। इसके द्वारा स्थायी ज्ञान प्राप्त होता है। सिनेमा देखते समय दर्शक को ऐसा प्रतीत होता है कि वह जो कुछ भी देख रहा है, वह पूर्ण सत्य है। इसके द्वारा विद्यार्थियों के ध्यान को

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विषय वस्तु का केन्द्रित करने में सहायता प्राप्त होती है। संक्षेप में "सिनेमा की सहायता से विभिन्न देशों के रीति-रिवाजों आदि का भली-भाँति परिचय हो जाता है। ये ऐतिहासिक तथा धार्मिक चित्र लोगों को उत्तम मार्ग दिखाते हैं तथा उनके चरित्र-चित्रण में सहायता प्रदान करते हैं। सिनेमा हमारी भावनाओं, प्रवृत्तियों तथा उद्वेगों को शान्त करने में भी सहायता प्रदान करते हैं।"

(2) टेलीविजन— टेलीविजन आधुनिक युग का महानतम् आविष्कार है। रेडियो में तो केवल प्रसारित कार्यक्रमों को सुना जा सकता है परन्तु टेलीविजन के द्वारा प्रसारित कार्यक्रमों को सुनने के साथ-साथ देखा भी जा सकता है। इसके द्वारा सभी घर बैठे ही संसार के दर्शन करते हैं। इनकी सहायता से विद्यार्थी किसी भी चीज को सरलतापूर्वक सीख जाता है। टेलीविजन का सबसे बड़ा लाभ यह है कि किसी बात को सदैव दोष रहित रूप में तथा उसी क्षण प्रस्तुत कर देता है जब वह घटित होती है। **थठ तथा गेरेविच** के अनुसार— टेलीविजन सबसे आशापूर्ण श्रव्य-दृश्य साधन है क्योंकि इस यन्त्र में रेडियो तथा सिनेमा के सभी गुणों का मिश्रण है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

22

हिन्दी में मूल्यांकन

मूल्यांकन का अर्थ एवं परिभाषायें

मूल्यांकन की नवीन धारणा वस्तुतः परीक्षा की परम्परागत धारणा से सर्वथा भिन्न है। इसके द्वारा कक्षा में शिक्षक द्वारा किये गये सीखने के अनुभवों को ज्ञात किया जाता है। इसके माध्यम से छात्र के विकास की जानकारी सम्भव होती है। छात्रों के सम्पूर्ण ज्ञान का सही अनुमान मूल्यांकन प्रणाली द्वारा ही सम्भव है।

आधुनिक शिक्षा का उद्देश्य छात्रों के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन लाना है। उद्देश्यों के अनुरूप सीखने के अनुभवों द्वारा अपेक्षित व्यवहार की जांच मूल्यांकन द्वारा सम्भव है। अतएव मूल्यांकन का स्वरूप अत्यन्त विस्तृत है। इसमें अनेक विधियों, प्रविधियों तथा उपकरणों का प्रयोग किया जाता है।

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रगति एवं सीमा के ज्ञान के लिये मूल्यांकन की आवश्यकता है। इसके अभाव में हमारे समस्त क्रिया-कलाप मूल्यहीन बन जाते हैं। इसके द्वारा हमारी आवश्यकताओं का निर्णय कठिनाइयों आदि का पता लगाया जाता है। मूल्यांकन के द्वारा बालक की भावी जीवन-यात्रा का पथ-प्रदर्शन किया जाता है। मूल्यांकन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक, शिक्षक, शैक्षणिक क्रियाओं आदि की पारस्परिक निर्भरता तथा उसकी उपयोगिता की जाँच की जाती है।

परिभाषायें—

1. **टारगर्सन व एडम्स** के अनुसार— "किस प्रक्रिया या वस्तु के महत्व का निर्धारण ही मूल्यांकन करना है। अतः शिक्षण प्रक्रिया या सीखने के अनुभव की उपयोगिता की मात्रा के सम्बन्ध में निर्णय करना ही शैक्षिक मूल्यांकन है।"

2. **मोफात** के अनुसार— "मूल्यांकन निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है और यह छात्रों की औपचारिक शैक्षिक उपलब्धि की अपेक्षा अधिक है। यह व्यक्ति के विकास में अधिक रुचि रखता है। यह व्यक्ति के विकास को उसकी भावनाओं, विचारों तथा क्रियाओं से सम्बन्धित वांछित व्यवहार-परिवर्तनों के रूप में व्यक्त करता है।"

3. **क्विलन व हन्ना** के अनुसार— "छात्रों के व्यवहार के विद्यालय द्वारा लाये गए परिवर्तनों के विषय में प्रणाली के संकलन और उसकी व्याख्या करने की प्रक्रिया ही मूल्यांकन है।"

4. **माध्यमिक शिक्षा-आयोग (1952-53)** के अनुसार— "मूल्यांकन एक प्रमुख साधन है। जिसके द्वारा समाज इस बात का पता लगाता है कि विद्यालय अपने दायित्वों को उचित

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
प्रकार से पूरा कर रहे हैं और विद्यालय में अध्ययन करने वाले बच्चों को उचित प्रकार से पूरा कर रहे हैं और विद्यालय में अध्ययन करने वाले बच्चों को उचित प्रकार की शिक्षा मिल रही है और वे अपेक्षित स्तरों को प्राप्त कर रहे हैं।"

5. **जेम्स एम० ली** के अनुसार— "मूल्यांकन, विद्यालय, कक्षा तथा स्वयं के द्वारा निर्धारित शैक्षिक उद्देश्यों को प्राप्त के सम्बन्ध में छात्रों की प्रगति की जांच है। मूल्यांकन का मुख्य प्रयोजन छात्रों को सीखने की प्रक्रिया को अग्रसर एवं निर्देशित करता है। इस प्रकार मूल्यांकन एक नकारात्मक प्रक्रिया न होकर सकारात्मक प्रक्रिया है।"

6. **वेस्ले** के अनुसार— "मूल्यांकन एक समावेशित धारणा है जो इच्छित परिणामों के गुण, महत्व तथा प्रभावशीलता का निर्णय करने के लिये समस्त प्रकार के प्रयासों एवं साधनों की ओर संकेत करता है। वह वस्तुगत प्रमाण तथा आत्मगत निरीक्षण का मिश्रण है। यह सम्पूर्ण एवं अन्तिम अनुमान है। यह नीतियों के रूप परिवर्तनों एवं भावी कार्यक्रमों के लिये महत्वपूर्ण एवं आवश्यक पथ-प्रदर्शक है।"

7. **माइकेलिस** के अनुसार— "मूल्यांकन उद्देश्य की प्राप्ति की सीमा का निर्धारण करने वाली प्रक्रिया है। इसमें निर्देश के परिणामों को जाँचने के लिये शिक्षकों, बालकों, प्रधानाचार्य तथा विद्यालय के अन्य कर्मचारियों द्वारा प्रयोग की जाने वाली सब प्रक्रियायें सम्मिलित हैं।"

मूल्यांकन तथा मापन में अन्तर

मूल्यांकन के अर्थ को सुस्पष्ट के लिये मूल्यांकन एवं मापन का अन्तर समझना आवश्य है। यह अन्तर निम्न तालिका में दिया गया है—

मापन	मूल्यांकन
1. मापन द्वारा किसी योग्यता या गुण की मात्रा ज्ञात की जाती है। यह संख्यात्मक तथा गुणात्मक दोनों हो सकती है।	1. मूल्यांकन द्वारा यह निश्चित किया जाता है कि किसी योग्यता या गुण की संख्यात्मक तथा गुणात्मक मात्रा उपयुक्त है या नहीं।
2. मापन एकांगी है।	2. मूल्यांकन बहुमुखी है।
3. मापन यह ज्ञात करने से है— "कितनी मात्रा में है ?"	3. मूल्यांकन का सम्बन्ध इस प्रश्न के उत्तर देने से है— "कितना अच्छा है।"
4. मापन प्रतिशत, अंकों, मध्यमान, मध्यांकों आदि के द्वारा व्यक्त किया जाता है।	4. मूल्यांकन में मापन तथा जाँच (appraisal) दोनों निहित हैं।
5. मापन के अभाव में मूल्यांकन का कार्य वैज्ञानिक नहीं हो सकता।	5. मूल्यांकन के लिये मापन अनिवार्य है, परन्तु मापन का शैक्षिक लाभ मूल्यांकन द्वारा ही सम्भव है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मूल्यांकन के उद्देश्य

(1) शिक्षक के द्वारा प्रदत्त तथ्यात्मक ज्ञान विद्यार्थियों ने कहाँ तक प्राप्त किया है, इसका ज्ञान मूल्यांकन के बिना सम्भव नहीं है।

(2) मूल्यांकन के द्वारा यह ज्ञात किया जा सकता है कि पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति किस सीमा तक हुई है।

(3) विद्यार्थियों की कठिनाइयों, कमियों तथा गुणों की जानकारी प्राप्त करने में सहायता प्रदान करना।

(4) शिक्षक, शिक्षण पद्धति, पाठ्यवस्तु, पुस्तकों तथा अन्य शैक्षिक साधन की उपयुक्तता की जांच करना।

(5) विद्यार्थियों के सर्वांगींण विकास को गतिशील बनाये रखने के लिये सहायता प्रदान करना।

(6) आवश्यकता के अनुसार सफलता की मात्रा के आधार पर पाठ्यक्रम तथा शैक्षिक कार्यों में परिवर्तन लाना।

(7) शिक्षा के उद्देश्यों को स्पष्ट करके, उनकी उपयुक्तता की जाँच करना।

(8) विद्यार्थियों के व्यवहार से सम्बन्धित परिवर्तनों की जाँच करना।

(9) निर्देशन के लिये अवसर प्रदान करना।

(10) निर्देशन अथवा निरीक्षण में सुधार करने के लिये अग्रसर करना।

मूल्यांकन का महत्व— शिक्षा जगत में मूल्यांकन का बहुत महत्व है। मूल्यांकन के द्वारा असफलताओं का निर्णय तथा कठिनाइयों आदि की जानकारी प्राप्त की जा सकती है। मूल्यांकन के द्वारा ही विद्यार्थियों की भावी जीवन यात्रा का पथ प्रदर्शन किया जाता है।

राइस्टोन के अनुसार— "मूल्यांकन एक नवीन प्राविधिक पद है जिसका प्रयोग मापन की धारणा से अधिक व्यापक रूप में किया जाता है। मापन में विषय वस्तु अथवा विषय कौशलों तथा योग्यताओं की उपलब्ध्धि के एकाकी पक्षों पर जोर दिया जाता है। मूल्यांकन में व्यक्ति से सम्बन्धित परिवर्तनों तथा शैक्षिक कार्यक्रम के मुख्य उद्देश्यों पर जोर दिया जाता है। इसमें न केवल पाठ्य-वस्तु की उपलब्ध्धि ही निहित है बल्कि अभिवृत्तियों, रुचियों, आदर्शों, विचार-विमर्श के तरीके, कार्य करने की आदत और व्यक्तिगत तथा सामाजिक अनुकूलन भी निहित है।"

ग्रीन के अनुसार— "शिक्षा में मूल्यांकन एक नवीन अवधारणा है। इसका प्रयोग विद्यालय में कार्यक्रम, पाठ्यक्रम, शैक्षिक सामग्री, विद्यार्थीय तथा शिक्षक की जांच के लिये किया जाता है।"

शिक्षा आयोग के अनुसार— "मूल्यांकन सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली का एक अंग है। शिक्षा के उद्देश्यों से इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। इससे विद्यार्थियों की अध्ययन की आदतों तथा शिक्षण विधियों पर बहुत प्रभाव पड़ता है। यह केवल शैक्षिक उपलब्ध्धि के मापन में ही सहायता प्रदान नहीं करता बल्कि उनमें सुधार भी करता है।"

मूल्यांकन की विशेषतायें

(1) मूल्यांकन निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। इसमें प्रश्नों द्वारा योग्यता, ज्ञान तथा कौशल एवं उसकी सीमाओं का ज्ञान प्राप्त होता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

(2) मूल्यांकन एक निर्णयात्मक प्रक्रिया है । इसके अन्तर्गत विषय-वस्तु की उपयोगिता का निर्णय किया जाता है ।

(3) मूल्यांकन के अन्तर्गत उसके निर्णय को प्रभावित करने वाले सभी पहलुओं पर ध्यान दिया जाता है ।

(4) मूल्यांकन का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है वह सम्पूर्ण व्यक्तित्व की जांच करता है ।

(5) शिक्षा को उद्देश्य केन्द्रित बनाना ही मूल्यांकन का अर्थ है ।

(6) मूल्यांकन व्यवहार का तुलात्मक अध्ययन करने वाली एक सुव्यवस्थित प्रणाली है ।

मूल्यांकन की प्रविधियाँ

मूल्यांकन की प्रविधि का तात्पर्य उस रीति से है जिसके माध्यम से विद्यार्थी की ज्ञान की उपलब्धि तथा व्यवहार में हुये परिवर्तनों तथा उसकी व्यक्तिगत विशेषताओं का मूल्यांकन करते हैं। मूल्यांकन की प्रविधियाँ निम्नलिखित हैं—

बी०एस० ब्लूम के अनुसार— "एक अच्छी मूल्यांकन प्रविधि यह है जो व्यवहार के वांछित परिवर्तन के वैध प्रमाणों को प्राप्त करने में समर्थ है।"

(1) साक्षात्कार प्रविधि

(2) क्रम निर्धारण मान प्रविधि

(3) अभिलेख प्रविधि

(4) निरीक्षण प्रविधि

(5) प्रश्नावली प्रविधि

(6) समाजमितिक प्रविधि

(7) लेखा पत्र

(8) **परीक्षा प्रविधि**— इस विधि के निम्नलिखित रूप प्रचलित हैं—

(i) मौखिक परीक्षा— मौखिक परीक्षा में विद्यार्थी शिक्षक के प्रश्नों का उत्तर मौखिक रूप से देता है। मौखिक परीक्षा द्वारा विद्यार्थियों के वैयक्तिक गुणों एवं अवगुणों का ज्ञान प्राप्त क़िया जाता है। इसके अतिरिक्त इस परीक्षा के द्वारा विद्यार्थियों के सूचनात्मक ज्ञान, उच्चारण तथा पढ़ने की योग्यता आदि की जांच की जाती है।

(ii) प्रायोगिक परीक्षा— प्रायोगिक परीक्षा में विद्यार्थी अपने कार्य का नमूना शिक्षक के समक्ष प्रस्तुत करता है। इसकी के आधार पर विद्यार्थी की प्रयोगात्मक तथा हस्तकौशलपूर्ण कौशलों की जाँच की जाती है।

(iii) लिखित परीक्षा— अधिकतर, विद्यालयों में लिखित परीक्षा की ही प्रयोग किया जाता है। लिखित परीक्षा के अन्तर्गत प्रतिवेदन लिखना, कार्य समर्पण तथा कागज-पेंसिल परीक्षायें आती हैं। कागज-पेन्सिल परीक्षार्थ शिक्षक द्वारा प्रमापीकृत अथवा निर्मित दोनों ही प्रकार की हो सकती है। इन परीक्षाओं के दो रूप निम्नलिखित हैं—

(1) निबन्धात्मक परीक्षा।

(2) वस्तुनिष्ठ परीक्षा

(1) **निबन्धात्मक परीक्षा**— इस प्रकार की परीक्षा में परीक्षार्थी को कुछ प्रश्नों के उत्तर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
निश्चित अवधि में अपने शब्दों में देने होते हैं। इस परीक्षा में विद्यार्थियों को प्रश्नों के उत्तर कई पृष्ठों में देने की छूट होती है। **सिम्स** के शब्दों में, "निबन्धात्मक परीक्षा समस्यामूलक स्थिति का सापेक्षिक रूप से स्वतन्त्र एवं विस्तृत प्रत्युत्तर है, जो विद्यार्थी के मानसिक अनुभवों की संरचना गतियों एवं कार्य प्रणाली से सम्बन्धित सूचना देती है।"

निबन्धात्मक परीक्षा के गुण

(1) निबन्धात्मक परीक्षा पाठ्यवस्तु के विस्तृत पक्षों का वर्णन करने, उन पर तार्किक क्रम के निबन्ध लिखने, उसको आत्मसंगत करने, उसकी आलोचना तथा मूल्यांकन की योग्यता की जांच करने के लिये बहुत महत्वपूर्ण है।

(2) निबन्धात्मक परीक्षा शिक्षक को यह जानने में सहायता प्रदान करती है कि विद्यार्थी अपने विचारों को स्पष्टतः तथा शुद्ध भाषा में प्रकट कर सकता है अथवा नहीं।

(3) निबन्धात्मक परीक्षा के विद्यार्थी को प्रश्नों के उत्तर देने की पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है।

(4) निबन्धात्मक परीक्षा द्वारा शिक्षक को यह पता चल जाता है कि विद्यार्थी किस प्रकार अपने ज्ञान, तर्क, तथा विचारों को क्रमबद्ध एवं प्रकट करता है।

निबन्धात्मक परीक्षा के दोष

(1) निबन्धात्मक परीक्षा केवल पुस्तक के ज्ञान की ही जाँच कर पाती है। इसके द्वारा विद्यार्थियों के सभी वैयक्तिक पहलूओं की जाँच नहीं हो पाती है।

(2) इस परीक्षा के द्वारा पाठ्यक्रम की सम्पूर्ण विषय-वस्तु के बहुत कम भाग का प्रतिनिधित्व किया जाता है।

(3) इस परीक्षा प्रणाली के कारण शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य केवल परीक्षा में पास होा रह गया है।

(4) इस परीक्षा का विशेष योग विद्यार्थियों का नैतिक स्तर गिराने में रहा है। विद्यार्थी परीक्षा में पास होने के लिये अनुचित साधनों का प्रयोग करते हैं।

(5) इस परीक्षा के आधार पर विद्यार्थियों के भविष्य के सम्बन्ध में कोई निश्चित निर्णय नहीं किया जा सकता है।

(6) इस परीक्षा में विषयवस्तु की अपेक्षा शिक्षक के दृष्टिकोण अथवा विचारों पर बहुत जोर दिया जाता है।

(7) इस परीक्षा में यदि एक ही प्रश्न को दो भिन्न-भिन्न शिक्षक जाँचें तो प्राप्ताँकों में अन्तर पाया जाता है।

(8) विद्यार्थी परीक्षा के समय में अधिक परिश्रम करते हैं जिससे उनका स्वास्थ्य खराब हो जाता है।

(9) इस परीक्षा में स्मरण पर आवश्यकता से अधिक बल दिया जाात है तथा इससे विद्यार्थियों के वास्तविक ज्ञान की जाँच नहीं हो पाती है।

(10) इस परीक्षा के परीक्षण के अंकन में बहुत विविधता पायी जाती है तथा अंकन में समय अधिक लगता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

निबन्धात्मक परीक्षा प्रणाली में सुधार के उपाय

वर्तमान परीक्षा प्रणाली के दोषों को दूर करने के लिये विभिन्न विद्वानों द्वारा दिये गये सुझाव निम्नलिखित हैं—

(1) परीक्षकों का चयन सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिये। जिन शिक्षकों ने किसी विषय को कम से कम पाँच वर्ष तक पढ़ाया हो, उन्हीं को निरीक्षक नियुक्त किया जाना चाहिये।

(2) विद्यार्थियों को प्रश्न में से अपनी इच्छा के अनुसार प्रश्न छांटने की स्वतन्त्रता नहीं देनी चाहिये बल्कि विद्यार्थियों के सभी प्रशनों को हल करवाना चाहिये।

(3) उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं में लिखित परीक्षाओं के साथ ही साथ मौखिक परीक्षणों को स्थान मिलना चाहिये।

(4) निबन्धात्मक परीक्षाओं में अंकन के लिये प्रत्येक प्रश्न का एक प्रमापीकृत उत्तर पहले से ही तैयार करना चाहिये।

(5) परीक्षा का स्वरूप केवल निबन्धात्मक ही न हो तथा प्रश्नों के स्वरूप में परिवर्तन किया जाना चाहिये।

(6) उत्तरों का अंकन उसी परीक्षक द्वारा कराया जाये जिसने प्रश्न-पत्र बनाया हो।

(7) निबन्धात्मक परीक्षा में परीक्षक को अशुद्ध भाषा, भद्दे लेख तथा वाक्यों की अशुद्ध रचना के लिये अंक कम नहीं करने चाहियें तथा न ही इसके लिये अधिक अंक देने चाहियें।

(8) प्रश्न-पत्र का निर्माण सम्पूर्ण पाठ्यक्रम को ध्यान में रखकर ही करना चाहिये तथा न ही प्रश्नों को कठिनता के रूप में व्यवस्थित करना चाहिये।

(9) प्रश्नों को कठिनता के क्रम में व्यवस्थित किया जाना चहिये।

(10) बाह्य परीक्षायें कम हों तथा आन्तरिक अभिलेखों (Records) को कक्षोन्नति का आधार बनाया जाये।

वस्तुनिष्ठ परीक्षा का अर्थ

वस्तुनिष्ठ परीक्षा वह परीक्षा है जिसमें पदों अथवा प्रश्नों की स्वतन्त्रतापूर्वक जांच करने पर समस्त निरीक्षक समान अंक प्रदान करें। किसी भी परीक्षण की वैधता तथा विश्वसनीयता पर वस्तुनिष्ठ परीक्षा का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ने के कारण उसका वस्तुनिष्ठ होना अत्यन्त आवश्यक है। मूल्यांकन के साथ-साथ विद्यार्थी द्वारा परीक्षा के प्रश्नों का निर्वचन भी वस्तुनिष्ठ होना आवश्यक है।

जे० एम० राइस ने वस्तुनिष्ठ परीक्षणों का विकास किया। उसने वस्तुनिष्ठ परीक्षणों की रचना, प्रयोग व अंकन आदि के विषय में अध्ययन किया। परन्तु उसके द्वारा चलाये गये इस आन्दोलन को स्टार्ट एवं इलियट के अध्ययनों ने बहुत बल दिया। सी० वी० गुड के अनुसार, "वस्तुनिष्ठ परीक्षण प्रायः एकान्तर-प्रत्युत्तर, बहुनिर्वचन, तुल्य या रिक्त स्थान पूर्ति रूप के प्रश्नों पर आधारित होता है और सही उत्तरों की कुंजी के द्वारा अंकित किया जाता है। यदि कोई उत्तर कुंजी के विपरीत है तो उसे अशुद्ध माना जाता है।"

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वस्तुनिष्ठ परीक्षा की विशेषतायें

(1) अंकन में सरलता— राइटस्टोन के अनुसार— "संक्षिप्त उत्तरों वाली परीक्षा में अंकन कुंजी की सहायता से होता है, इसमें सही उत्तरों की तालिका ही रहती है। इसलिये इसमें किसी प्राविधिक कुशलता की आवश्यकता नहीं होती है।"

(2) विभेदीकरण— विभेदीकरण का अर्थ उत्तम तथा निम्न विद्यार्थियों में अन्तर स्पष्ट करना है। इसलिये एक अच्छी परीक्षा का यह गुण है कि वह प्रभावशाली तथा निम्न वर्ग के विद्यार्थियों के अन्तर को स्पष्ट करें।

(3) विश्वसनीयता— रेमर्स तथा रोज के अनुसार— "वस्तुनिष्ठ परीक्षा अथवा संक्षिप्त उत्तर वाली परीक्षा के द्वारा समान अंक प्रदान किये जायेंगे, चाहे उसका कोई भी व्यक्ति अंकन क्यों न करे और चाहे उस व्यक्ति के द्वारा विभिन्न अवसरों पर अंकन क्यों न किया जाये।"

(4) व्यावहारिक— एक उत्तर परीक्षा का प्रयोग निर्माण, अकन तथा प्राप्त प्रदत्तों की व्याख्या करना बहुत ही सुगम होता है। किसी भी परीक्षा की रचना का प्रमुख उद्देश्य विद्यार्थियों की अधिगम उपलब्धियों की जांच करना होता है। इसलिये परीक्षा का व्यावहारिक होना अत्यन्त आवश्यक है।

(5) अल्प समय— वस्तुनिष्ठ परीक्षा की प्रमुख विशेषता यह है कि इस परीक्षा में विद्यार्थी अल्प समय में ही अनेक प्रश्नों का उत्तर देने में समर्थ होते हैं और परीक्षक भी अल्प समय में ही अनेक प्रश्नों को जाँचने में समर्थ होता है।

वस्तुनिष्ठ परीक्षा के प्रकार—

1. अभिज्ञान रूप
2. प्रत्यास्मरण रूप

(क) अभिज्ञान रूप— इस रूप में प्रश्न के अन्तर्गत अनेक सम्भाविक उत्तर दिये जाते हैं। विद्यार्थियों को उनमें से सही उत्तरों को चुनना होता है। इससे विद्यार्थियों के पहचानने की शक्ति की परख होती है तथा विद्यार्थी अनुमान के आधार पर भी सही उत्तर का चुनाव कर सकता है। ये प्रश्न चार प्रकार के होते हैं—

(1) एकान्तर अनुक्रिया रूप— इस रूप में कतिपय कथन दिये जाते हैं जिनमें से कुछ सही तथा कुछ गलत होते हैं। विद्यार्थियों को सत्य/असत्य दो विकल्पों में से एक पर चिन्ह अंकित करना होता है।

उदाहरण—

निर्देश— निम्नलिखित कथनों में 'सही' हो तो सत्य तथा गलत हो तो 'असत्य' को सही (√) से तथा गलत को (×) से चिन्हित कीजिए—

(i) बिहारी रीतिकाल के कवि थे।
(ii) रसखान हिन्दी के मुसलमान कवि थे।
(iii) द्रुत पाठ गहन अध्ययन का पर्याय है।
(iv) सरदार श्रृंगार रस के प्रमुख कवि थे।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

(v) मृगनयनी प्रेमचन्द की प्रमुख रचना है।

(vi) सौन्दर्यानुभूति हिन्दी गद्य शिक्षण की महत्वपूर्ण प्रणाली है।

(2) बहुनिर्वचन रूप पद— इस प्रकार के प्रश्नों में एक कथन के लिये अनेक उत्तर दिये हुए होते हैं। इन विभिन्न उत्तरों में से विद्यार्थी को सही उत्तर को चुनना होता है।

उदाहरण—

निर्देश— निम्नलिखित कथनों के कई उत्तर दिये हुए हैं। इनमें एक उत्तर सही है; सही उत्तर को (√) कीजिए।

(i) सुरदास ने प्रियप्रवास, सूरसागर, ध्रुवस्वामिनी, रामचरितमानस की रचना की।

(ii) तुलसीदास ने प्रियप्रवास, सूरसागर, ध्रुव स्वामिनी, रामचरितमानस की रचना की।

(iii) मैथलीशरण गुप्त ने सूरसागर, रामायण, रंगभूमि, पल्लव लिखा।

(iv) प्रेमचन्द ने गबन, कामायनी, मृगनयनी, साकेत नाम से उपन्यास की रचना की।

(3) मिलान रूप पद अथवा क्रमबद्धकरण रूप पद— इस प्रकार के प्रनों में दो खण्ड होते हैं। प्रथम खण्ड में कुछ अधूरे कथन दिये होते हैं तथा द्वितीय खण्ड उन कथनों के अपूर्ण अंशों को अव्यवस्थित रूप में प्रकट करता है। विद्यार्थियों से इन्हें व्यवस्थित रूप में प्रकट के लिये कहा जाता है।

उदाहरण—

निर्देश— निम्नलिखित कथनों में खण्ड 'क' के अधूरे कथन खण्ड 'ख' में दिये गये हैं जो कि अव्यवस्थित हैं। इन खण्डों के व्यवस्थित कथनों की संयुक्त कर व्यवस्थित रूप में लिखिए—

खण्ड 'क'	खण्ड 'ख'
तुलसीदास	सूर सागर
वृन्दावन वर्मा	कामायनी
प्रेमचन्द	पल्लव
सुमित्रा नन्दनपन्त	रंगभूमि
जयशंकर प्रसाद	रामचरित मानस
सूरदास	साकेत
	ध्रुव स्वामिनी

(4) वर्गीकरण रूप पद— इस प्रकार के प्रश्नों के अतर्गत कतिपय ऐसे शब्दों का समूह विद्यार्थियों के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है जिसमें से एक शब्द असंगत होता है। विद्यार्थी ने इस असंगत शब्द को रेखांकित करने के लिये कहा जाता है।

उदाहरण—

निर्देश— प्रत्येक प्रश्न में कुछ शब्द दिये गये हैं। इनमें प्रत्येक प्रश्न में एक ऐसा शब्द है जिसे अन्य शब्दों की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है। प्रत्येक प्रश्न के ऐसे शब्दों को रेखांकित कीजिए।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

महादेवी वर्मा, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पन्त, इन्दिरा गाँधी, मैथिलीशरण गुप्त।

रामचरित मानस, कामायनी, साकेत, प्रियप्रवास, मृगनयनी।

(ख) प्रत्यास्मरण रूप— इस रूप में प्रश्न पूछे जाते हैं या अपूर्ण कथन दिये जाते हैं। विद्यार्थी अपनी स्मरण शक्ति के आधार पर इन प्रश्नों के उत्तर देता है। प्रत्यास्मरण रूप दो प्रकार के होते हैं—

(1) सामान्य प्रत्यास्मरण— इस रूप में विद्यार्थी विषय से सम्बन्धित सूचनाओं को प्रत्यास्मरण करके उत्तर देता है। प्रश्न में केवल एक ही विशेष उत्तर होता है।

उदाहरण के लिये—

निर्देश— निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर उनके सामने दिये गये कोष्ठक में लिखिए—

(i) कामायनी की रचना किसने की? ( )

(ii) सूरसागर की रचना किसने की? ( )

(iiii) साकेत के रचियता कौन थे? ( )

(iv) रामचरित मानस की रचना किसने की थी? ( )

(v) हिन्दी भाषा किस लिपि में लिखी गयी है? ( )

(vi) आधुनिक काल के किस कवि को राष्ट्र कवि के नाम से पुकारा जाता है? ( )

(2) रिक्त स्थान की पूर्ति प्रश्न— इसमें प्रश्नों को अपूर्ण कथनों अथवा वाक्यों के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। विद्यार्थियों को उन रिक्त स्थानों की पूर्ति करनी पड़ती है।

निर्देश— इन रिक्त स्थानों की पूर्ति उपयुक्त शब्दों द्वारा कीजिए—

(i) प्रेमचन्द का प्रमुख उपन्यास........है।

(ii) दो शब्दों के........में जुड़ने वाले शब्दांश को कहा जाता है।

(iii) वाक्य........से बनते हैं, मात्र शब्दों से नहीं।

(iv) तुलसी का जन्म........नामक स्थान पर हुआ था।

(v) मैथलीशरण गुप्त की जन्म शताब्दी सन्........ई० में मनायी गई।

वस्तुनिष्ठ परीक्षा के गुण

(1) विद्यार्थियों की विभिन्न मानसिक योग्यताओं की जाँच केवल इन परीक्षाओं के द्वारा ही की जा सकती है।

(2) इन परीक्षाओं के द्वारा विस्तृत पाठ्यक्रम की परीक्षा सुगमतापूर्वक ली जा सकती है।

(3) इन परीक्षाओं के द्वारा विद्यार्थियों को लेखन शक्ति के विकास का पूर्ण अवसर प्राप्त होता है।

(4) इन परीक्षाओं के प्रश्नों का प्रत्येक शिक्षक सरलतापूर्वक निर्माण कर सकता है।

(5) इन परीक्षाओं में समय, धन तथा श्रम की दृष्टि के कम खर्च होता है।

(6) इन परीक्षाओं में अंकन में सरलता रहती है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

(7) इन परीक्षाओं में विभेदीकरण में सरलता पायी जाती है।

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वस्तुनिष्ठ परीक्षा के दोष

(1) इन परीक्षाओं के निर्माण में अधिक कठिनाई का सामना करना पड़ता है तथा इनके निर्माण में अधिक समय लगता है।

(2) इन परीक्षाओं के द्वारा विद्यार्थियों की मौलिक, चिन्तन, तर्क और विश्लेषणात्मक शक्तियों की जाँच नहीं हो पाती है।

(3) इन परीक्षाओं के द्वार केवल तथ्यात्मक ज्ञान पर ही अधिक जोर दिया जाता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

परिशिष्ट

पाठ योजना

पाठ योजना का सामान्य प्रयोजन है कक्षा में प्रवेश करने से पूर्व पाठ सम्बन्धी बातों का विधिवत ब्यौरा तैयार करना। मौखिक शिक्षण में तथ्यों का संतुलन नहीं रहता और भूलों की सम्भावना बनी रहती है। पाठ योजना के माध्यम से पाठ वैज्ञानिक क्रम से बढ़ता है। कब, क्या, कैसे, कितने समय में प्रस्तुत करना है, इसका ज्ञान शिक्षक को पाठ योजना के माध्यम से होता है।

बासिग (Bossing) ने पाठ योजना की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि पाठ योजना उस कथन को शीर्षक प्रदान करता है, जो इसका वर्णन करता है कि क्या उपलब्धियाँ प्रदान करना है और किन साधनों द्वारा उनको कक्षा की प्रक्रियाओं के फलस्वरूप प्राप्त करती है। **भाटिया तथा भाटिया** के अनुसार— "पाठ योजना से पता चलता है कि बच्चों ने क्या पढ़ लिया, आगे किस दिशा में उनके पथ प्रदर्शन का कार्य किया जाये और तत्काल क्या पढ़ाया जाये।" इस प्रकार जो कुछ भी प्राप्त या अर्जित करना है, उसका विवरण पाठ योजनाओं में निहित रहता है। पाठ योजना में आलक के अर्जित ज्ञान, नवीन ज्ञान, प्रश्न विधि, साधन आदि का वर्णन रहता है।

पाठ योजना तथा उसकी उपयोगिता

पाठ योजना शिक्षक के लिये मार्गदर्शक का कार्य करती है। विद्यार्थियों का किस मार्ग से ले जाकर विकास किया जा सकता है, इसकी जानकारी पाठ योजना ही देती है।

वासिंग महोदय के अनुसार— "पाठ-योजना उन उपलब्धियों की सूची अथवा शीर्षक है जिन्हें शिक्षक कक्षा में प्राप्त करना चाहता है। इसमें वे सभी साधन तथा क्रियायें भी आ जायेंगी जिनकी सहायता से वे उपलब्धियाँ प्राप्त की जाती हैं।"

डॉ० रामशुक्ल पाण्डेय जी के अनुसार— "पाठ-योजना से पहले विद्यार्थियों के पूर्व पठित पाठ तथा सम्प्रति शिक्षण विषय के साथ मार्गदर्शन का बोध होता है।"

योकम तथा सिम्पसन के अनुसार— "शिक्षक अपनी विषय-सामग्री तथा अपने विद्यार्थियों के विषय में जो कुछ भी जानता है, उन सबका प्रयोग पाठों की योजना में किया जाना आवश्यक है।"

पाठ-योजना की आवश्यकता— (1) **योकम तथा सिम्पसन** के अनुसार— "सभी शिक्षकों द्वारा किसी न किसी प्रकार की पाठ-योजना अवश्य तैयार की जानी चाहिये। इसके कुछ निश्चित कार्य हैं जो अच्छे शिक्षण के लिये अनिवार्य हैं।"

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

(2) पाठ-योजना, पाठ्य विषय को सुव्यवस्थित रूप देकर पाठ्यक्रम विधिवत् संचालित करने में योगदान देती है।

(3) दैनिक पाठ्यचर्या, शिक्षा सामग्री चयन तथा विद्यार्थियों की क्रियाओं के विषय में शिक्षक विचारशील बनते हैं।

(4) पाठ-योजना शिक्षण कार्य को नियमित तथा नियोजित करने के लिये आवश्यक होता है।

(5) पाठ-योजना समय तथा शक्ति को नष्ट करने से बचाती है।

पाठ योजना का महत्व—

(1) पाठ-योजना द्वारा विद्यार्थियों का ज्ञानात्मक, कौशलात्मक तथा भावात्मक विकास होता है।

(2) शिक्षक शिक्षण विधियों का चयन कर उनका सही उपयोग कर सकता है।

(3) पाठ-योजना पाठ का अध्ययन सभी प्रकार की प्रक्रियाओं के द्वारा करती है।

(4) पाठ-योजना पूर्व ज्ञान-प्रशिक्षण के आधार पर नवीन शिक्षण को क्रियाशील बनाती है।

(5) पाठ-योजना के द्वारा दृश्य-श्रव्य सामग्री के उपयोग की कला का विकास होता है।

(6) पाठ-योजना कला कार्य को व्यवस्थित रूप प्रदान कर शिक्षण प्रक्रिया में सहयोग देती है।

(7) पाठ-योजना के द्वारा विद्यार्थियों की अभिवृत्तियों, रुचियों एवं योग्यताओं का ज्ञान होता है।

(8) पाठ-योजना विषय सामग्री तथा विद्यार्थियों की क्रियाओं को व्यवस्थित रूप प्रदान करती है।

(9) पाठ-योजना शिक्षण क्रिया को व्यवस्थित रूप प्रदान करती है।

(10) शिक्षक अपने उद्देश्यों तथा लक्ष्यों को पाठ योजना द्वारा प्राप्त करता है।

(11) पाठ-योजना द्वारा ज्ञान का परीक्षण सुगमता से हो जाता है।

(12) पाठ-योजना द्वारा विभिन्न प्रकार के पाठों का ज्ञान प्राप्त होता है।

(13) पाठ-योजना द्वारा मूल्यांकन-मापन सरलतापूर्वक किया जाता है।

(14) पाठ-योजना द्वारा त्रुटियों का संशोधन हो जाता है।

(15) पाठ-योजना द्वारा आत्म-विश्वास उत्पन्न किया जाता है।

ठ योजना की विशेषतायें—

(1) गद्य-पद्य रचना, कहानी, निबन्ध, नाटक तथा पत्र व्याकरण की पाठ-योजनायें अलग-अलग होती हैं। विषय अथवा पाठ के अनुरूप योजना को आयोजित किया जाना चाहिये।

(2) सहायक उपकरण सामान्य तथा विशिष्ट दोनों ही स्पष्ट रूप से अंकित होने चाहियें।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

(3) विचार विश्लेषणात्मक, बोधात्मक, पुनरावृत्यात्मक आदि प्रश्नों का वर्गीकरण विधिवत् किया जाना चाहिये ।

(4) पाठ-योजना विद्यार्थियों के आर्थिक ज्ञान शिक्षण में किस प्रकार सहयोगी हो सकती है, इसका ध्यान देना चाहिये ।

(5) पाठ-योजना में विद्यार्थियों का अधिगम विकास महत्वपूर्ण होना चाहिये ।

(6) पाठ-योजना में सहयोगी ग्रन्थों का उल्लेख भी आवश्यकता के अनुसार किया जाना चहिये ।

(7) पाठ-योजना में प्रत्येक खण्ड के लिये समय निश्चित किया जाना चाहिये ।

(8) पाठ-योजना में विषय के पूर्ण विकास की सम्भावना होनी चाहिये ।

(9) पाठ-योजना में कक्षा कार्य तथा अभ्यास कार्य की विधिवत् व्यवस्था की जानी चाहिये ।

(10) विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान एवं नवीन ज्ञान में परस्पर सम्बन्ध होना चाहिये ।

(11) पाठ-योजना में पाठ की पूरी रूपरेखा होनी चाहिये ।

(12) पाठ-योजना लिखित तथा व्यवस्थित होनी चाहिये ।

(13) पाठ-योजना में व्याख्या का स्वरूप व्यवस्थित होना चाहिये ।

(14) पाठ-योजना में प्रस्तावना प्रभावशाली तथा पूर्व ज्ञान पर आधारित होनी चाहिये ।

(15) पाठ-योजना में समय तथा उपकरण पर प्रयोग किया जाना चाहिये ।

(16) पाठ-योजना की विधियाँ, विधिवत् व्यवस्थित तथा मनोवैज्ञानिक होनी चाहियें ।

(17) पाठ-योजना के उद्देश्यों को वर्गीकृत करके बिल्कुल स्पष्ट किया जाना चाहिये ।

(18) पाठ-योजना में विषय को संगठन की दृष्टि से सुदृढ़ रखना चाहिये ।

(19) पाठ-योजना परिवर्तनशील होनी चाहिये ।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पाठ योजना का नमूना

पाठ-योजना (1)

हिन्दी गद्य शिक्षण

दिनांक 15-3-93
संस्था— बी० ए० वी० इण्टर कालिज, मेरठ
कक्षा— 9
विषय— हिन्दी (गद्य)
प्रस्तुत पाठ— भारतीय संस्कृति की विशेषतायें
छात्राध्यापक— रामपाल सिंह

कालाँश— द्वितीय
अवधि— 40 मिनट

सामान्य उद्देश्य—

(1) विद्यार्थियों में क्षमता उत्पन्न करना कि वे पाठ को उचित प्रकार से समझकर दूसरों को भली प्रकार से समझा सकें।

(2) विद्यार्थियों में प्राप्त ज्ञान को उवित प्रकार से अभिव्यक्त करने की योग्यता उत्पन्न करना।

(3) विद्यार्थियों में ऐसी क्षमता उत्पन्न करना कि वे स्पष्ट अर्थ को समझ सकें।

(4) विद्यार्थियों को स्पष्ट वाचन तथा शुद्ध उच्चारण का अभ्यास कराना।

(5) विद्यार्थियों की कल्पना तथा निरीक्षण शक्ति का विकास करना।

विशेष उद्देश्य—

विद्यार्थियों को भारतीय संस्कृति की विशेषतायें बताना।

सहायक सामग्री—

श्यामपट, डस्टर और चाक आदि।

पूर्व-ज्ञान—

विद्यार्थी राजेन्द्र प्रसाद का लेख, 'भारतीय संस्कृति' पढ़ चुके हैं।

प्रस्तावनात्मक प्रश्न—

विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान के आधार पर अग्रलिखित प्रश्न किये जायेंगे—

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

1. संस्कृति किसे कहते हैं ?
2. संस्कृति तथा समाज में परस्पर क्या सम्बन्ध है ?
3. संस्कृति का मूल स्रोत क्या है ?

उद्देश्य कथन— आज हम भारतीय संस्कृति के विषय में अध्ययन करेंगे तथा देखेंगे कि भारतीय संस्कृति की कौन-कौन सी प्रमुख विशेषतायें हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पाठ-योजना (2)

हिन्दी पद्य शिक्षण

दिनांक 10-2-93
संस्था— डी० एन० इण्टर कालिज, मेरठ
कक्षा— 8
विषय— हिन्दी (पद्य)
प्रस्तुत पाठ— 'मैं सुमन हूँ'

कालाँश— तृतीय
अवधि— 40 मिनट
छात्राध्यापक— दीपचन्द

सामान्य उद्देश्य—

(1) छात्र कविता को शुद्ध उच्चारण के साथ हाव-भाव एवं लय-सुर सहित वाचन कर सकें।

(2) छात्र कविता का भाव ग्रहण करके उसको अपने शब्दों में व्यक्त कर सकें।

(3) छात्र कविता में निहित भावों एवं सौंदर्य की अनुभूति करके उसकी सराहना एवं रसास्वादन कर सकें।

(4) छात्रों में काव्य के प्रति रुचि उत्पन्न हो।

विशिष्ट उद्देश्य—

छात्रों को कवि नरोत्तम दास जी द्वारा रचित 'सुदामा चरित्र' नामक काव्य के एक अंश के भावों एवं सौंदर्य का रसास्वादन कराना।

सहायक सामग्री—

श्यामपट, चाक, डस्टर, समान्तर उदाहरण आदि।

पूर्व-ज्ञान—

(1) छात्र कृष्ण सुदामा की मैत्री से परिचित हैं।

(2) छात्र जानते हैं कि सुदामा जी एक गरीब ब्रह्मण थे और वे कृष्ण जी से सहायता लेने द्वारिका जी गए।

प्रस्तावना— निम्नलिखित पंक्तियों को पढ़कर इस प्रकार प्रश्न किये जायेंगे—

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

व्योम के नीचे खुला आवास मेरा,
ग्रीष्म, वर्षा, शीत का अभ्यास मेरा,
झेलता हूँ मार मारुत की निरन्तर
खेलता यों जिन्दगी का खेल हँसकर।
शूल का दिन रात मेरा साथ
किन्तु प्रसन्न मन हूँ
मैं सुमन हूँ॥

प्रश्न— 1. पंक्तियाँ किसके विषय में कही गई हैं?
2. फूल का निवास कहाँ है?
3. फूल किसका अभ्यास है?
4. फूल किन कष्टों को झेलता है?
5. फूल अपना जीवन व्यापन किस प्रकार करता है?
6. फूल प्रत्येक क्षण किसके साथ रहता है?
7. फूल प्रसन्न क्यों है?
8. इन पंक्तियों में कवि ने किसको संकेत किया है?

उद्देश्य कथन— आज आप कवि श्री द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी द्वारा रचित 'मैं सुमन हूँ' नामक कविता पढोगे, जिसमें कवि ने फूल को माध्यम मानकर हमें यह बताया है कि हमें दुःख-सुख दोनों को समान भाव से सहकर जीवन यापन करना चाहिये।

आदर्श पाठ— शिक्षक द्वारा कविता का सस्वर एवं हाव-भाव सहित आदर्श पाठ किया जायेगा।

अनुकरण (सस्वर) वाचन— छात्र कविता का सस्वर वाचन करेंगे, आरम्भ में अच्छा वाचन करने वाले छात्रों को सस्वर वाचन का अवसर किया जायेगा।

शब्दार्थ— व्योम=आकाश, आवास=निवास स्थान, मारुत=हवा, शूल=काँटा, सुमन=फूल।

भाव व्याख्या— प्रस्तुत कविता में कवि ने फूल के जीवन के विषय में स्वयं फूल की ही भाषा में विचार प्रकट किया है कि मैं इस खुले आकाश के नीचे रहता हूँ। गर्मी, वर्षा तथा शीत ऋतु के कष्टों को सहन करना मेरी आदत बन गई है। मैं तेज हवा के थपेड़ों की मार को झेलता रहता हूँ इस प्रकार मैं जीवन के दुःख-सुख दोनों को हंसकर व्यातीत करता हूँ। यद्यपि मैं दिन-रात कांटों के बीच ही रहता हूँ फिर भी मैं प्रसन्नता से हंसता-खिलता ही रहता हूँ क्योंकि मैं एक फूल हूँ।

श्यामपट सार अनुलेखन— छात्र श्यामपट से शब्दार्थ आदि अपनी लिपिकाओं में उतारेंगे।

पुनरावृत्ति (रसास्वादन एवं आनन्दानुभूति)— छात्रों को कविता का रसास्वादन और उसमें निहित भावों की आनन्दानुभूति कराने का अवसर दिया जायेगा। इस हेतु छात्रों से कविता का सस्वर वाचन उनके पसन्द की पंक्तियों का वाचन, सबसे अधिक प्रभावित करने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
वाले भावों की पंक्तियों का वाचन कराया जायेगा। शिक्षक भी छात्रों के साथ बीच-बीच में स्वयं भी कुछ विशेष पंक्तियों का सस्वर वाचन आवश्यकतानुसार कर सकते हैं।

गृह कार्य— छात्रों से कविता को या उसमें सबसे अधिक प्रभावित करने वाली पंक्तियों को कंठस्थ का आदेश दिया जायेगा। कुछ विशेष पंक्तियों का भावार्थ लिख कर लाने का आदेश दिया जायेगा।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पाठ-योजना (3)

व्याकरण शिक्षण

दिनांक 4-3-93
संस्था— बी० ए० वी० इण्टर कालिज, मेरठ
कक्षा— 8
विषय— हिन्दी व्याकरण
प्रकरण— क्रिया विशेषण

कालाँश— चतुर्थ
अवधि— 40 मिनट
छात्राध्यापक— अशोक कुमार

सामान्य उद्देश्य—

(1) व्याकरण के व्यावहारिक पक्ष पर बल देना।

(2) वाक्यों में विभिन्न शब्दों का स्थान, कार्य एवं पारस्परिक सम्बन्ध आदि का ज्ञान करना।

(3) छात्रों में शुद्ध अभिव्यक्ति और सृजनात्मकता का विकास करना।

(4) छात्रों में शुद्ध भाषा के प्रयोग हेतु व्याकरण के अध्ययन और रुचि उत्पन्न करना।

(5) छात्रों में भाषा के शुद्ध रूप के प्रयोग की आदत डालना।

विशिष्ट उद्देश्य—

छात्रों को क्रिया विशेषण का ज्ञान करना।

पूर्वज्ञान—

छात्र वाक्यों में क्रिया पहचानते हैं।

सहायक सामग्री—

श्यापट, उदाहरण आदि।

प्रस्तावना— श्यामपट पर निम्नलिखित वाक्य लिखकर प्रश्न किये जायेंगे—

(1) राम तेज दौड़ता है।

(2) श्याम बहुत अधिक खाता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

(3) हरी सुन्दर लिखता है।

(4) वह नट बहुत अच्छी कलाबाजी करता है।

(5) मीना अच्छा भोजन बनाती है।

उपर्युक्त बच्चों को छात्रों से पढ़वाकर निम्नलिखित प्रश्न किये जायेंगे—

(1) पहला वाक्य पढ़िये।

(2) इसमें क्रिया क्या है? (दौड़ता है)

(3) राम किस प्रकार दौड़ता है? (तेज)

(इसे रेखांकित किया जायेगा)

(4) दूसरा वाक्य पढ़िये।

(5) इसमें क्रिया क्या है? (खाता है)

(6) श्याम कितना खाता है? (बहुत अधिक)

(इसे रेखांकित किया जायेगा)

इसी प्रकार अन्य वाक्यों को पढ़वाकर प्रश्न किये जायेंगे और अन्तिम समस्यात्मक प्रश्न इस प्रकार किया जायेगा—

ये शब्द 'तेज', 'बहुत अधिक', 'सुन्दर' व्याकरण से क्या कहलाते हैं?

उद्देश्य-कथन— अब आप यही सीखेंगे कि वाक्य में क्रिया से सम्बन्धित इस प्रकार के शब्दों को व्याकरण में क्या कहते हैं?

प्रस्तुतिकरण— उपर्युक्त वाक्यों में आगमन विधि द्वारा इस प्रकार सम्बन्ध निष्कासन कराया जायेगा—

(1) प्रथम वाक्य में क्या कार्य हो रहा है?

(2) दौड़ने का कार्य किस प्रकार हो रहा है?

(3) 'तेज' शब्द किसकी विशेषता बता रहा है?

(4) दूसरे वाक्य में क्रिया क्या है?

(5) श्याम कितना खाता है?

(6) 'बहुत अधिक' शब्द किसकी विशेषता बताता है?

(7) तीसरे वाक्य में क्या क्रिया है?

(8) लिखने का कार्य क्या क्रिया है?

(9) 'सुन्दर' शब्द किसकी विशेषता बता रहा है?

सामान्यीकरण—

(1) इन सभी वाक्यों में ये रेखांकित शब्द 'तेज', 'बहुत अधिक सुन्दर' किसकी विशेषता बताते हैं?

(2) इस प्रकार क्रिया की विशेषता बताने वाले शब्दों को व्याकरण में क्या कहते हैं?

शिक्षक कथन— क्रिया की विशेषता बताने वाले शब्दों को व्याकरण में 'क्रिया विशेषण' कहते हैं?

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कई छात्रों से क्रिया विशेषण की परिभाषा दोहरवा कर श्यामपट पर भी लिख दी जायेगी।

श्यामपट सार अनुलेखन— छात्र श्यापट पर लिखे वाक्यों तथा परिभाषा आदि को अपनी लिपिकाओं में लिखेंगे और शिक्षक उनके कार्य का निरीक्षण करेगा कि वे स्वच्छतापूर्वक कार्य करें।

पुनरावृत्ति एवं अभ्यास—

क्रिया विशेषण किन शब्दों को कहते हैं?

(कआी छात्रों से परिभाषा दोहरवा कर श्यापट पर लिखे निम्नलिखित वाक्यों को प्रस्तुत करके छात्रों से क्रिया विशेषण छँटवाए जायेंगे)

(1) सीता धीरे-धीरे चलती है।

(2) हिरन उछल कर दौड़ता है।

(3) चींटी बहुत कम खाती है।

(4) नट ध्यानपूर्वक खेल दिखाता है।

(5) जादूगर चालाकी से जादू दिखाता है।

छात्रों से एक-एक वाक्य पढ़वा कर उसमें क्रिया-विशेषण छँटवा कर मौखिक अभ्यास कराया जायेगा और छात्रों को भी श्यामपट पर बुलाकर क्रिया विशेषण शब्दों को रेखांकित कराया जायेगा।

गृह कार्य— छात्रों को घर से क्रिया विशेषण की परिभाषा लिखकर लाने को कहा जाये तथा उन्हें कुछ वाक्यों में रिक्त स्थानों की पूर्ति उपयुक्त क्रिया विशेषण से करके लाने हेतु वाक्य दिये जायें।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पाठ-योजना (4)

हिन्दी निबन्ध शिक्षण

दिनांक 24-2-93

संस्था— राम सहाय इण्टर कालिज, मेरठ

कक्षा— 8

विषय— हिन्दी निबन्ध

प्रकरण— होली का त्योहार

कालाँश— पंचम

अवधि— 40 मिनट

छात्राध्यापक— श्री कृष्ण शर्मा

सामान्य उद्देश्य—

(1) बालकों में ऐसी क्षमता विकसित करना कि वे प्रभावोत्पादक भाषा में अपने विचार प्रकट कर सकें।

(2) बालकों की तार्किक, विवेचनात्मक एवं निरीक्षण शक्ति का विकास करना।

(3) हिन्दी में प्रचलित मुहावरों, लोकोक्तियों आदि को समझने एवं उन्हें प्रयुक्त करने की क्षमता प्रदान करना।

(4) बालकों की रचनात्मक व सृजनात्मक शक्ति व शैली का विकास करना।

(5) बालकों की शब्दावली में वृद्धि करना।

(6) बालकों का व्यावहारिक ज्ञान बढ़ाना।

(7) बालकों के लिखित एवं मौखिक भाव प्रकाशन की क्षमता में वृद्धि करना।

विशिष्ट उद्देश्य

(1) छात्रों को होली नामक उत्सव से परिचित कराना।

(2) होली से सम्बद्ध अन्तर्कथाओं का परिचय कराना।

सहायक सामग्री—

(1) होली खेलते हुए युवक एवं युवतियों का चित्र।

(2) अन्तर्कथायें एवं उद्धरण।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रस्तावना—

(1) भारतवर्ष के कुछ प्रमुख उत्सवों के नाम बताओ।

(2) फाल्गुन मास में हम किन उत्सवों को मनाते हैं?

(3) होली की महत्ता के सम्बन्ध में तुम क्या जानते हो?

उद्देश्य कथन— आज हम 'होली' का उत्सव नामक निबन्ध तैयार करेंगे, जिसमें होली मनाने के कारण, महत्व आदि के बारे में विचार-विमर्श होगा।

प्रस्तुतीकरण

पाठन विधि	पाठ्य-वस्तु	छात्र-कार्य	श्यामपट कार्य
	भूमिका		
1. हमारे देश में कौन-कौन से प्रमुख त्यौहार मनाये जाते हैं?	भारत में दशहरा, दीपावली, रक्षा बंधन, होली आदि अनेक त्यौहार मनाये जाते हैं। होली इन उत्सवों में प्रमुख उत्सव है।	हमारे देश में दीपावली, होली, दशहरा, रक्षा-बन्धन आदि त्यौहार मनाये जाते हैं।	दीपावली, होली, दशहरा, रक्षा-बन्धन आदि।
2. होली का त्यौहार कब मनाया जाता है?	यह त्यौहार फाल्गुन मास में बड़े हर्ष एवं उल्लास के साथ मनाया जाता है। बच्चे, जवान, युवक, युवतियाँ वृद्ध सभी इसे हर्ष एवं उल्लास के साथ मनाते हैं।	होली फाल्गुन मास में मनायी जाती है।	होली फाल्गुन मास में पड़ती है।
	मनाने के कारण		
3. होली नामक त्यौहार क्यों मनाया जाता है?	पौराणिक किंवदन्ती है कि प्राचीनकाल में हिरण्यकश्यक नामक एक निर्दयी नास्तिक राजा था, उसका पुत्र प्रह्लाद ईश्वरभक्त था परन्तु हिरण्यकश्यप ईश्वर को नहीं मानता था। प्रह्लाद की ईश्वर-भक्ति का वह विरोधी था। इसीलिए उसको मारना	होली नामक त्यौहार होलिका के जलने और प्रह्लाद के बचने के संदर्भ में मनाया जाता है।	होली होलिका नामक राक्षसी के जल मरने एवं प्रह्लाद के बच निकलने की खुशी में मनायी जाती है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

	चाहता था। सहायतार्थ उसने अपनी बहन होलिका को बुलवाया, जिसे आग में न जलने का वरदान प्राप्त था। होलिका ने निर्दोष ईश्वर-भक्त प्रह्लाद को गोद में लेकर जलती अग्नि में प्रवेश किया, पर ईश्वर की अनुकम्पा से होलिका अग्नि में जल गयी और प्रह्लाद बच गये। उसी स्मृति में होली नामक त्यौहार मनाया जाता है।		
4. होली का त्यौहार और किन कारणों से मनाया जाता है ?	होली मनाने का दूसरा कारण यह है कि उस समय फसल पकने लगती है। किसान के लिये खुशी की बात है। वे फसल देखकर फूले नहीं समाते। इस खुशी में वे एक-दूसरे पर रंग-गुलाल डालकर हर्षित भावों का प्रदर्शन करते हैं।	पकी फसल की खुशी में भी यह त्यौहार मनाया जाता है।	किसान पकी फसली की खुशी में भी यह त्यौहार मनाते हैं।

समय

5. होली का त्यौहार किस समय मनाते हैं ?	होलिकोत्सव फाल्गुन मास में पूर्णिमा को मनाया जाता है।	होलिकोत्सव फाल्गुन मास की शुक्ल-पूर्णिमा को मनाया जाता है।	होली फाल्गुन मास की शुक्ल पूर्णिमा को मनायी जाती है।
6. उस दिन सन्ध्या समय क्या होता है ?	सन्ध्या-समय होली की पूजा की जाती है।	सन्ध्या समय होली की पूजा होती है।	सन्ध्या समय पूजन होता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

7. होलिका-दहन कब होता है ?	रात्रि के समय होलिका-दहन होता है।	रात्रिक के समय होलिका-दहन होता है।	रात्रि के समय होलिका-दहन होता है।
8. होलिका-दहन के बाद क्या किया जाता है ?	इस अवसर पर नये अन्न की बालों को भून कर खाते हैं। तदोपरांत लोग आपस में गले मिलकर बन्धुत्व एवं प्रेम-भाव का प्रदर्शन करते हैं।	होलिका-दहन के उपरान्त लोग आपस में गले मिलते हैं।	होलिका-दहन के बाद लोग आपस में हिलते-मिलते हैं।
मनाने का ढंग			
9. होली भारत में कहाँ-कहाँ मनायी जाती है ?	होली भारत के कोने-कोने में मनायी जाती है। विभिन्न भागों होली विभिन्न प्रकार से मनायी जाती है। यों तो होली एकादशी से ही मनानी प्रारम्भ हो जाती है।	होली भारत के प्रत्येक भाग में मनायी जाती है।	होली भारत में सर्वत्र मनायी जाती है।
10. होली हमारे यहाँ कैसे मनायी जाती है ?	लोग एक-दूसरे के ऊपर रंग-गुलाल डालना प्रारम्भ कर देते हैं। गली-गली, सड़क-सड़क रंग में सराबोर हो जाती है। यह खुशी एवं मस्ती के आलम का त्यौहार है। एक-दूसरे के शरीर पर रंग डालना, मुँह पर लाल, काला, पीला आदि रंग मलना तथा अन्य प्रकार की मस्ती जाहिर करना इस त्यौहार की विशेषता है।	लोग एक-दूसरे पर रंग फेंकते हैं, गुलाल फेंकते हैं। कपड़े एवं चेहरे रंग से सराबोर हो जाते हैं। लोग होली गाते हैं तथा नृत्य करते हैं।	एक-दूसरे पर रंग गुलाल फेंकते हैं। होली गाते हैं तथा नृत्य करते हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

11. यह त्यौहार किस भावना का द्योतक है ?	लोग होली एवं कबीर भी मस्ती में गाते हैं भंग छान कर नृत्य भी करते हैं। स्त्री-पुरुष, बाल, युवा एवं वृद्ध खुशी एवं उमंग के साथ मनाते हैं।	यह त्यौहार मस्ती एवं उमंग का द्योतक है।	होली मस्ती एवं उमंग का त्यौहार है।
		हानि एवं बुराइयाँ	
12. होली के त्यौहार को मनाते समय कौन-कौन सी गंदी बातें देखने को मिलती हैं ?	मस्ती के इस त्यौहार में अब कुछ बुराइयाँ भी आ गयी हैं। लोग भंग-शराब पीते हैं। एक-दूसरे को गाली देते हैं। इससे स्वास्थ्य एवं संस्कार खराब होता है। लोक एक-दूसरे पर कीचड़, पेन्ट या तारकोल फेंक कर शरीर चेहरे एवं कपड़े गंदा करते हैं। यह बेहद बुरी बात है।	लोग शराब एवं भंग पीते हैं। एक दूसरे पर कीचड़, पेन्ट एवं तारकोल लगाते हैं। इससे शरीर एवं कपड़ा बर्बाद होता है।	लोग शराब एवं भंग पीते हैं, एक दूसरे को गाली देते हैं। कीचड़ एवं तारकोल फेंक कर कपड़ा एवं चेहरा खराब करते हैं।
13. इन बुराइयों के प्रति तुम्हारा क्या दृष्टिकोण है ?	इन बुराइयों को तत्काल रोकना चाहिये यथा समाज पर बुरा प्रभाव पड़ेगा।	इन बुराइयों को तत्काल रोकना चाहिए।	इन बुराइयों को रोकना आवश्यक है।
		उपसंहार	
14. यह त्यौहार वर्ष में कितनी बार मनाया जाता है ?	होली वर्ष में एक बार मनाया जाने वाला त्यौहार है। यह हर्ष, उल्लास एवं उमंगों का त्यौहार है। एक-दूसरे से मिलकर खुशी प्रदर्शित का त्यौहार है।	होली वर्ष में एक बार आती है।	होली वर्ष में एक बार मनायी जाती है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

15. यह किस प्रकार का त्यौहार है ?	इसमें समा गई बुराइयों को दूर करना हमारा कर्त्तव्य है। इन त्यौहार को बुराइयों से दूर करना चाहिये।	यह खुशी एवं उमंगों का त्यौहार है।	यह उमंगों का त्यौहार है।
16. इस त्यौहार में घुसी बुराइयों के प्रति हमारा क्या कर्त्तव्य है ?	एक-दूसरे पर कीचड़ या तारकोल फेंकना गंदी बात है; शराब पीने और गाली देने में त्यौहार की महत्ता घटती है।	इस त्यौहार में घुसी बुराइयों को दूर करना चाहिए।	इस त्यौहार में घुसी बुराइयों को दूर करना हमारा कर्त्तव्य है।

G.M. College of Education
Raipur, Bantalab
Jammu.
Acc No. 8649
Dated 23/9/2009

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

OUR OTHER PUBLICATIONS

शिक्षा तकनीकी के मूल तत्व निर्देशन एवं प्रबन्धन
आर० ए० शर्मा

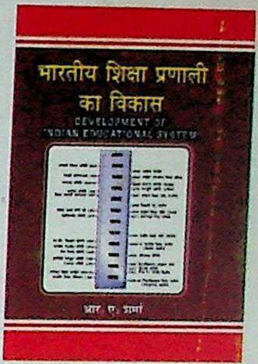

भारतीय शिक्षा प्रणाली का विकास
आर० ए० शर्मा

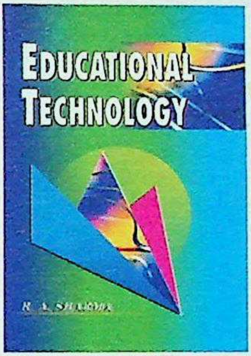

Education Technology
R. A. Sharma

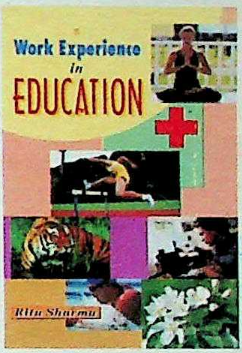

Work Experience in Education
Ritu Sharma

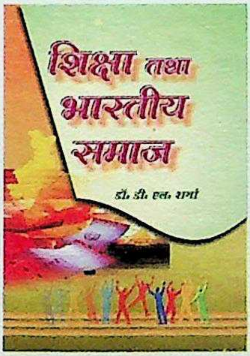

शिक्षा तथा भारतीय समाज
डॉ० डी० एल० शर्मा

आधुनिक भारतीय शिक्षा और उसकी समस्यायें
सुरेश भटनागर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हिन्दी शिक्षण

OUR PUBLICATIONS

1.	यू०जी०सी० शिक्षाशास्त्र प्रश्न बैंक	शर्मा एवं सक्सेना
2.	मूल्य शिक्षा	रामशकल पाण्डेय
3.	अध्यापक शिक्षा	एन० आर० सक्सेना, सी० के० मिश्रा
4.	अध्यापक शिक्षा प्रणाली	डॉ० आर० ए० शर्मा
5.	शिक्षा के तकनीकी आधार	डॉ० आर० ए० शर्मा
6.	पर्यावरण शिक्षा	डॉ० आर० ए० शर्मा
7.	दूरवर्ती शिक्षा	डॉ० आर० ए० शर्मा
8.	अभिक्रमित अधिगम	डॉ० आर० ए० शर्मा
9.	शिक्षा अनुसंधान	डॉ० आर० ए० शर्मा
10.	शिक्षण तकनीकी	डॉ० आर० ए० शर्मा
11.	अनुदेशात्मक एवं शिक्षण तकनीकी	डॉ० आर० ए० शर्मा
12.	शिक्षण अधिगम में नवीन प्रवर्तन	डॉ० आर० ए० शर्मा
13.	भावी शिक्षकों के आधारभूत कार्यक्रम	डॉ० आर० ए० शर्मा
14.	शिक्षण की तकनीकी	एन०आर० स्वरूप सक्सेना, डॉ० एस० सी० ओबराय
15.	पाठ्यक्रम, शिक्षण कला तथा मूल्यांकन	डॉ० आर० ए० शर्मा
16.	शिक्षा-मनोविज्ञान	डॉ० रामशकल पाण्डेय
17.	शिक्षा-मनोविज्ञान	प्रो० सुरेश भटनागर
18.	शिक्षण अधिगम का मनोविज्ञान	प्रो० सुरेश भटनागर
19.	अधिगम एवं विकास के मनोवैज्ञानिक आधार	डॉ० आर० ए० शर्मा
20.	शिक्षण-अधिगम का मनोविज्ञान	डॉ० आर० ए० शर्मा
21.	शिक्षण अधिगम का मनोवैज्ञानिक	डॉ० ए० बी० भटनागर
22.	शिक्षा और मनोविज्ञान में प्रारम्भिक सांख्यिकी	डॉ० आर० ए० शर्मा
23.	शिक्षा तथा मनोविज्ञान में परा एवं अपरा सांख्यिकी	डॉ० आर० ए० शर्मा
24.	भारत में शिक्षा का विकास	प्रो० सुरेश भटनागर, संजय कुमार
25.	आधुनिक भारतीय शिक्षा और उसकी समस्यायें	प्रो० सुरेश भटनागर
26.	शैक्षिक प्रबन्ध और शिक्षा की समस्याएँ	प्रो० सुरेश भटनागर, कमला वशिष्ठ, ए० के० सिंह
27.	कोठारी कमीशन : विवेचनात्मक अध्ययन	प्रो० सुरेश भटनागर
28.	शिक्षा सिद्धान्त	एन०आर० स्वरूप सक्सेना
29.	शिक्षा के दार्शनिक एवं समाज-शास्त्रीय सिद्धान्त	एन०आर० स्वरूप सक्सेना
30.	शिक्षा दर्शन तथा महान शिक्षा शास्त्री	एन०आर० स्वरूप सक्सेना
31.	शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार	एन०आर० स्वरूप सक्सेना
32.	शिक्षा तथा भारतीय समाज	डॉ० डी० एल० शर्मा
33.	वर्तमान भारतीय समाज में शिक्षा	एन०आर०एस० सक्सेना, शिखा चतुर्वेदी
34.	पर्यावरण और मानव मूल्यों के लिये शिक्षा	बी० एल० शर्मा
35.	शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन तथा परामर्श	डॉ० आर० ए० शर्मा
36.	मनोविज्ञान और शिक्षा के मापन एवं मूल्यांकन	डॉ० ए० बी० भटनागर, डॉ० मीनाक्षी भटनागर
37.	भारतीय शिक्षा की नई दिशा	डॉ० के० के० वशिष्ठ, डॉ० डी० एल० शर्मा
38.	कम्प्यूटर विज्ञान शिक्षण	हेमन्त कुमार गोयल
39.	विद्यालय प्रबन्ध	जे० पी० वर्मा
40.	शिक्षा प्रशासन	डॉ० आर० ए० शर्मा
41.	विद्यालय प्रबंध	बी० एल० शर्मा
42.	विद्यालय संगठन एवं शैक्षिक प्रशासन	डॉ० आर० ए० शर्मा
43.	अर्थशास्त्र शिक्षण	डॉ० रामपाल सिंह वर्मा
44.	नागरिक शास्त्र शिक्षण	डॉ० रामपाल सिंह वर्मा
45.	इतिहास शिक्षण	डॉ० रामपाल सिंह वर्मा
46.	संस्कृत शिक्षण	डॉ० संतोष मित्तल
47.	जीव विज्ञान शिक्षण	डॉ० बी० के० माहेश्वरी
48.	गणित शिक्षण	डॉ० ए० के० कुलश्रेष्ठ
49.	विज्ञान शिक्षण	ए० बी० भटनागर
50.	सामाजिक अध्ययन शिक्षण	डॉ० डी० एल० शर्मा, बी० एस० सक्सेना
51.	हिन्दी शिक्षण	डॉ० शिखा चतुर्वेदी
52.	विज्ञान शिक्षण	डॉ० ए० के० कुलश्रेष्ठ
53.	भौतिक विज्ञान शिक्षण	ए० बी० भटनागर
54.	रसायन विज्ञान शिक्षण	बी० एल० शर्मा, बी० एस० सक्सेना, डॉ० भटनागर
55.	भूगोल शिक्षण	जे० पी० वर्मा
56.	नागरिक शास्त्र शिक्षण	के० क्षत्रिय
57.	हिन्दी शिक्षण	बी० एल० शर्मा
58.	जनसंख्या शिक्षा	डॉ० आर० ए० शर्मा
59.	विशिष्ट शिक्षा का प्रारूप	डॉ० आर० ए० शर्मा
60.	शिक्षा तकनीकी के तत्व एवं प्रबन्धन	डॉ० आर० ए० शर्मा
61.	शिक्षा तकनीकी एवं प्रबन्धन	डॉ० आर० ए० शर्मा
62.	शिक्षा तकनीकी के तत्व एवं प्रबन्धन	एन०आर०एस० सक्सेना
63.	शिक्षा तकनीकी	डॉ० आर० ए० शर्मा
64.	छात्र का विकास एवं शिक्षण	डॉ० आर० ए० शर्मा
65.	शिक्षा तकनीकी के तत्व एवं प्रबन्ध	सक्सेना एवं ओबराय
66.	शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का विकास	डॉ० सुरेश भटनागर
67.	अधिगमकर्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया	डॉ० ए०बी० भटनागर, मीनाक्षी भटनागर, अनुराग भटनागर
68.	शिक्षा मनोविज्ञान	डॉ० ए०बी० भटनागर, अनुराग भटनागर
69.	प्राथमिक शिक्षा	बी०एल० शर्मा
70.	भारत में शिक्षा व्यवस्था का विकास	प्रो० सुरेश भटनागर
71.	आधुनिक भारतीय शिक्षा	प्रो० सुरेश भटनागर, अनामिका सक्सेना
72.	आधुनिक भारतीय शिक्षा और उसकी समस्यायें	प्रो० सुरेश भटनागर
73.	विश्व के श्रेष्ठ शैक्षिक चिंतक	डॉ० रमन बिहारी लाल
74.	पाश्चात्य तथा भारतीय शिक्षा दर्शन	डॉ० राम शकल पाण्डेय
75.	धर्म दर्शन और शिक्षा	डॉ० राम शकल पाण्डेय
76.	शिक्षा का सिद्धान्त	एन०आर० स्वरूप सक्सेना
77.	शिक्षा के दार्शनिक आधार	डॉ० एन०पी० सिंह
78.	शिक्षा तथा भारतीय समाज	डॉ० डी०एल० शर्मा
79.	वर्तमान भारतीय समाज में शिक्षा	एन०आर० स्वरूप सक्सेना
80.	वर्तमान भारतीय समाज में शिक्षक	शिखा चतुर्वेदी
81.	वृत्तिक निर्देशन एवं रोजगार सूचना	डॉ० आर०ए० शर्मा
82.	शैक्षिक एवं मानसिक मापन	डॉ० बी०एल० शर्मा, नरेश प्रताप
83.	मानसिक मापन एवं मूल्यांकन	डॉ० आर०ए० शर्मा
84.	शैक्षिक एवं मानसिक मापन	डॉ० ए०बी० भटनागर, डॉ० मीनाक्षी भटनागर, अनुराग भटनागर
85.	शैक्षिक प्रशासन एवं प्रबन्धन	डॉ० आर०ए० शर्मा
86.	पंजाबी शिक्षण	शर्मा एवं सक्सेना
87.	गणित शिक्षण	डॉ० ए०बी० भटनागर
88.	गणित शिक्षण	नरेश प्रताप
89.	सामाजिक विज्ञान शिक्षण	डॉ० आर०ए० शर्मा
90.	सामाजिक विज्ञान शिक्षण	डॉ० बी०एल० शर्मा, डॉ० बी०के० माहेश्वरी
91.	विज्ञान शिक्षण	ए०बी० भटनागर
92.	सामाजिक अध्ययन शिक्षण	डॉ० बी०एल० शर्मा, बी०एस० सक्सेना
93.	बाल विकास एवं बाल मनोविज्ञान	प्रो० सुरेश भटनागर
94.	गृह विज्ञान शिक्षण	बी०एल० शर्मा
95.	शारीरिक शिक्षा	डॉ० बी०एल० शर्मा
96.	वाणिज्य शिक्षण	बी०एल० शर्मा
97.	सूर्या नर्सरी टीचर ट्रेनिंग मैनुअल (7 पेपर)	शर्मा एवं सक्सेना
98.	सूर्या नर्सरी टीचर ट्रेनिंग मैनुअल (5 पेपर)	शर्मा एवं सक्सेना
99.	सूर्या नर्सरी टीचर ट्रेनिंग मैनुअल (पंजाबी संस्करण)	शर्मा एवं सक्सेना
100.	गुरु, शिष्य एवं ज्ञान (भारतीय परिप्रेक्ष्य)	डॉ० आर०ए० शर्मा

Exclusively Distributed by

R. LALL BOOK DEPOT

NEAR GOVT. INTER COLLEGE, MEERUT. Ph.: 2666235, 2643623

HINDLOCK. 9897606040

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant